



OF  
THE 'SANSKRIT TEACHER'

BY

ADUP VIDYĀDHUŚANA, KAMALĀŚANKARA PRĀNAŚANKARA  
TRIVEDI, B A,

RETIRED PRINCIPAL P R TRAINING COLLEGE, AHMEDĀBAD  
(HONORARY FELLOW OF THE UNIVERSITY OF BOMBAY

AND

IN SANSKRIT (BOMBAY AND THE PANJAB UNIVERSITIES)  
translated into Hindi

BY

LAKSHMANA ŚĀSTRĪ TAILANGA, ŚĀHITYĀCHĀRYA,  
PROFESSOR OF SANSKRIT, QUEEN'S COLLEGE BENGALURU

MACMILLAN & CO, LIMITED

LONDON, BOMBAY, CALCUTTA, AND MADRAS

1917

Price 2/-

All rights reserved



# संस्कृतशिक्षिका

अर्थात्

ववहादुर विद्याभूषण कमलाशङ्कर प्राणशङ्कर त्रिवेदी, बी ए,

रिटापर्ड्, प्रिन्सिपल्, पी आर् ट्रेनिंग्, कालेज, अमदाबाद,

सुबर्ब विद्यालयके आनररी फेलो, बवई तथा पञ्जाब

विद्यालयके संस्कृत परीक्षक विरचित

‘संस्कृत टीचर’का

हिन्दी रूपान्तर ।

---

अनुवादक

पण्डित लक्ष्मणशास्त्री तैलङ्ग, साहित्याचार्य,

संस्कृत प्रोफेसर, क्वीन्स कालेज,

बनारस ।

प्रकाशक

स्याक्समिलन् एण्ड कम्पनी लिमिटेड्,

लण्डन्, वावे, कलकत्ता, और मद्रास ।

---

१९१७

मूल्य २)

सर्व हक स्वाधीन ।



## भूमिका ।

—०—

संस्कृत भाषा प्राचीन साहित्यका एक अमूल्य निधि है और वह प्रबलतत्त्वशास्त्र, भाषाशास्त्र, तथा इतर शास्त्रोंकी दृष्टिसे सब जातियोंको लाभदायक है, विशेषतः हिन्दुओंकी, जिनका जीवन धर्ममय है। मातृभाषाके यथार्थ ज्ञान तथा परिपाकके लिये और धार्मिक तथा आध्यात्मिक साहित्यके—जो सभ्य जगत्का एक आश्चर्य है—बोधके लिये संस्कृत भाषाका अभ्यास अत्यन्त आवश्यक है। इसकी लालसा लोगोंमें अवश्य उत्पन्न होनी चाहिये। जर्मन्, अंग्रेज, अमेरिकन् इत्यादि जातियां इस पर मुग्ध होकर इसके अभ्यासके लिये अपना जीवन समर्पण करते हैं।

मैं जब स्कूलों तथा कॉलेजोंमें कार्य करता था तब मेरे ध्यानमें यह बात आयी कि विद्यार्थियोंमें रुचि न होनेसे संस्कृतकी बड़ी हानि हो रही है। इसमें सन्देह नहीं कि उनमें संस्कृतका अनुराग उत्पन्न हो सकता और वह स्थिर भी हो सकता है यदि योग्य दिशासे उसका निरूपण किया जाय और साहित्यके उद्भूत खजाने उनके सामने रखे जाय। 'संस्कृत शिक्षिका' कुछ नयी रीतिपर बनायी गयी है और इसका उद्देश्य यह है कि संस्कृतमें विद्यार्थियोंका अनुराग उत्पन्न हो और उसका अभ्यास सुकर हो।

इस ग्रन्थमें विशेष बातें ये हैं —

(अ) प्रति पाठमें विद्यार्थियोंके लिये सस्कृतसाहित्यका साराश दिया गया है। वाक्य, प्रबन्ध, तथा श्लोकोंके चुनावमें बड़ा ध्यान दिया गया है। वे महाकवियोंके प्रबन्धोंसे, महापुराणोंसे, तथा उपनिषदोंसे लिये गये हैं। इनमें कई लोकोक्तियाँ हैं जो प्रतिदिनके जीवन तथा बातचीतके लिये उपयुक्त हैं (जैसे—गतानुगतिको लोको न लोकः पारमार्थिकः, अयमपरो गण्डस्थीपरि स्फोटः, आम्नान् पृष्टः कोविदारान् व्याचष्टे, क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूप रमणीयतायाः, महदपि परदुःख-शीतल सम्यगाहुः), तथा कई ऐसे श्लोक हैं जो उपदेश तथा उपयोगितासे पूर्ण हैं। इनसे चित्तपर उदात्त शील, अज्ञा, उत्तमोंके प्रति आदर तथा विनय, विद्याका अनुराग, शक्ति, तथा प्रभूताका आदर, तथा परमेश्वरकी भक्ति, इत्यादिके सस्कार दृढ़ होंगे।

(आ) इसमें गद्यपद्यमय कविताओंका बड़ा समूह है। गद्य-भाग पञ्चतन्त्र, दशकुमारचरित, कादम्बरी, तथा श्रीशङ्कराचार्यके ग्रन्थोंसे लिया गया है। इनमें विद्यार्थियोंकी हिरीतियोंके नमूने मिलेंगे। पद्यभाग चणक्य, भर्तृहरि, कालिदास, भवभूति, इत्यादिके ग्रन्थों तथा रामायण, महाभारत, तथा अन्य ग्रन्थोंसे चुना गया है।

(इ) भाषाका उत्तम अभ्यास काव्योंसे हो सकता है जिनमें उत्तम विचार मनोहर रचनामें प्रकाशित किये गये हैं। ऐसे ऐसे सुभाषितरत्नोंके कण्ठस्थ कर लेनेसे भाषापर अधिकार तथा गाढ

अनुराग उत्पन्न होगा। पाठोंमें तथा ग्रन्थके अन्तमें दिये श्लोकोंके चुनावमें, जो लगभग २०० के हैं, इस बातपर विशेष दृष्टि दी गयी है।

(इ) विद्यार्थियोंका सस्कृतके छन्द तथा अलङ्कारोंमें प्रवेश करानेका यत्न किया गया है। गणोंके तथा मालिनी, वसन्त-तिलका, हरिणी, शिखरिणी, इत्यादि प्रचलित छन्दोंके लक्षण दिये गये हैं। उपमा, रूपक, अर्थान्तरन्यास, अन्योक्ति, इत्यादि प्रसिद्ध अलङ्कारोंके लक्षण पाठोंमें तथा पुस्तकान्तकी टिप्पणियोंमें स्पष्ट किये गये हैं।

(उ) विद्यार्थियोंका ध्यान पहिले साहित्यकी ओर आकृष्ट किया गया है और व्याकरण उसका अङ्ग बनाया गया है, और ऐसा ही होना चाहिये। यह उद्देश अधोलिखित मार्गसे सिद्ध हुआ है। प्रतिपाठके आरम्भमें कुछ वाक्य दिये गये हैं जिनका हिन्दीमें अनुवाद किया गया है। इनमें नये व्याकरणके रूप मोटे टाइप्समें दिये गये हैं जिसमें विद्यार्थियोंका ध्यान उनकी ओर आकृष्ट हो। इसके बाद तैयार रूपावली है। सबके अन्तमें नियम हैं जो उन रूपोंसे निकाले गये हैं। इस प्रकार अनुसृत पद्धति तुलनात्मक है। यह स्कूलके लड़कोंसे लेकर सस्कृतके जिज्ञासु वृद्ध पुरुषोंतक सभीकी शिक्षामार्ग तथा मनोरञ्जक होगी। स्कूलके विद्यार्थियोंको पहिले रूपोंका पहिचानना सीखना चाहिये और इसके बाद उनका अभ्यास करना चाहिये। जिज्ञासु वृद्धोंके लिये केवल उनका पहिचानना पर्याप्त है।



(क) इसमें सचेपसे प्राय वे सब व्याकरणके विषय आ गये हैं जिनका जानना संस्कृत साहित्यके अभ्यासके लिये, अत्यन्त आवश्यक है। अप्रयुक्त रूप जान बूझकर छोड़ दिये गये हैं। अध्यापक तथा परीक्षकके नातेसे सुभे इस बातका अनुभव हुआ है कि विद्यार्थी लोग अनियत रूपोंको केवल परीक्षाके लिये रट लेते हैं और परीक्षासे छुटकारा पाते ही उनको भूल जाते हैं। वे लोग भाषामें प्रचलित शब्दरूप तथा धातुरूपोंके साधारण नियमोंको नहीं समझते। इस चूटिके दूर करनेके लिये साहित्यमें साधारणतः प्रचारमें आनेवाले रूपोंपर विद्यार्थियोंका ध्यान आकृष्ट किया गया है। इसी उद्देशसे सन्धिके नियमोंका, जो विविध रूपोंके बनानेमें लगते हैं, बड़ी सावधानीसे निरूपण किया गया है और वे उदाहरणों से स्पष्ट किये गये हैं।

(ए) जो विषय अधिक सुगम तथा प्रचलित हैं वह पहिले दिया गया है और पीछेसे अधिक दुर्गम तथा कम प्रचलित विषय। समास तथा भूत कदन्तो का प्रयोग संस्कृत साहित्यमें बहुत आया करता है, इसलिये उनका पहिले प्रकरणोंमें समावेश किया गया है। भविष्यत् कालोका परीक्षभूतके पूर्व तथा सामान्य भूतकालके चतुर्थ तथा षष्ठम, प्रकारोंका निरूपण अन्यप्रकारोंके पूर्व किया गया है।

(ऐ) अन्तिम पाठमें क्त तथा तद्धित प्रत्ययोंका वर्णन है जो प्राय भाषामें मिलते हैं।

(ओ) संस्कृत व्याकरणके पारिभाषिक शब्दोंमें यह,

विशेषता है कि वे अभिप्रायगर्भित हैं । यदि यह बात विद्यार्थियों-को भेलीभाति समझायी जाय, तो उनका कार्य बहुत कुछ सुगम होगा । मुझे यूनीवर्सिटीके परीक्षकके सम्बन्धसे यह कहते खेद होता है कि यह बात योग्य रीतिसे विद्यार्थियोंके ध्यानमें नहीं नायी जाती । यही कारण है कि विद्यार्थी लोग 'बहुव्रीहि' इत्यादि शब्दोंके लिखनेमें अनेक प्रकार की गलतियाँ किया करते हैं—जैसे कोई 'बहुरि' लिखते है, जो अत्यन्त उपहामास्यद है । इस आपत्तिको दूर करने के लिये इस पुस्तकमें प्रत्येक व्याकरणके पारिभाषिक शब्दोंका व्याख्यान किया गया है जिससे विद्यार्थियोंके मन पर उनका सस्कार दृढ होगा । जब विद्यार्थियोंको यह मालूम हो जाता है कि 'बहुव्रीहि' शब्द स्वयं बहुव्रीहि समास है और उस समासके लक्षणको बताता है, जब वह यह समझ लेता है कि 'तत्पुरुष' शब्दका विग्रह दो प्रकारोंसे ही सकता है और यह दोनों प्रकारके समासोंके लक्षणोंको सूचित करता है, जब उसे इस बातका ज्ञान हो जाता है कि वर्तमान तथा भूत ये शब्द स्वयं क्रमसे वर्तमान तथा भूतकृदन्त है, जब उसके समझमें यह बात आ जाती है कि छन्दोका लक्षण प्रायः उस छन्दके पादमें कहा जाता है जिनका लक्षण बताता हो, तब उसका याद करनेका काम अत्यन्त सुकर तथा मनोरञ्जक होता है और उसका ज्ञान दृढ़ और चिरस्थायि होता है ।

( औ ) ज्ञानमें कुछ उन्नति होनेतक विद्यार्थियोंको अनुवादके लिये वाक्य नहीं दिये गये हैं । इसके बाद अनुवादके लिये

संस्कृत वाक्य दिये गये हैं । उत्तरोत्तर पाठोंमें ये वाक्य अधिक होते गये हैं परन्तु इतने अधिक नहीं वि विद्यार्थी उकता जाय । संस्कृतमें अनुवादके लिये थोड़े भाषाके वाक्य दिये गये हैं ।

( अ ) विद्यार्थियोंमें स्वावलम्बनकी आदत—जिसके बिना इस जीवनमें कोई बड़ा उद्देश सिद्ध नहीं हो सकता—डालनेके लिये पुस्तकान्तमें दिये हुए गद्यपद्यसग्रहोका शब्दकोश नहीं दिया गया है । तथापि कठिन स्थलोंमें टिप्पणिया दी गयी हैं तथा आवश्यक स्थानों पर प्रकरण समझाया गया है ।

( अ ) बुद्धिमान् विद्यार्थियोंके लिये परिशिष्ट दिया गया है । हमको आशा है कि यह उनके लिये उपकारक होगा जो पाणिनीय व्याकरणमें प्रवेश चाहते हैं और इससे आवृत्ति करते समय अच्छे विद्यार्थियोंका कार्य सुकर होगा ।

सुरत ।

कमलाशङ्कर प्राणशङ्कर त्रिवेदी ।

## विषयसूची ।

विषय	पृष्ठ
पाठ १—वर्ण	१—२
पाठ २—वर्तमानकाल	२—३
पाठ ३—वर्तमानकाल	३—६
पाठ ४—वर्तमानकाल	६—८
पाठ ५—उपसर्ग	८—१२
पाठ ६—अकारान्त शब्द	१२—१५
पाठ ७—अकारान्त शब्द	१६—२०
पाठ ८—इकारान्त, उकारान्त, तथा दकारान्त शब्द	२०—२६
पाठ ९—आत्मनेपद वर्तमानकाल तथा आकारान्त शब्द	२६—३१
पाठ १०—सर्वनाम	३२—३६
पाठ ११—इन्द्र और तत्परूप, ईकारान्त } तथा ऊकारान्त शब्द }	३७—४३
पाठ १२—बहुव्रीहि और अव्ययीभाव, } सकारान्त शब्द, भूतकृदन्त }	४३—५१
पाठ १३—इदम्, त्, च्, तथा ज् में } समाप्त होनेवाली शब्द }	५१—६०
पाठ १४—इकारान्त तथा उकारान्त स्त्रीलिङ्ग } शब्द, लोट् लकार (आज्ञार्थक) के रूप }	६०—६८

विषय	पृष्ठ
पाठ १५—विधिलिङ् (विध्यर्थ), अदस्	६६—७६
पाठ १६—लङ्लकार वा अनद्यतन भूत, अस्मद् और युष्मद्	७७—८३
पाठ १७—ऋकारान्त शब्द	८४—९१
पाठ १८—इ, उ, तथा ऋकारान्त नपु सक शब्द	९०—९५
पाठ १९—नकारान्त शब्द	९६—१०३
पाठ २०—कर्मणि प्रयोग और भावे प्रयोग	१०४—१११
पाठ २१—वर्तमान क्तदन्त	११२—११९
पाठ २२—वस् तथा ईयस्में समाप्त होनेवाले शब्द	११९—१२५
पाठ २३—सख्यावाचक (१ से १० तक)	१२५—१३२
पाठ २४—अनियत सज्ञावाचक	१३२—१४०
पाठ २५—स्वादि तथा तनादिगणके धातु	१४०—१४९
पाठ २६—क्रादिगणके धातु	१४९—१५६
पाठ २७—अदादिगणके धातु	१५७—१६७
पाठ २८—अदादिगणके धातु	१६७—१८१
पाठ २९—रुधादि तथा अदादिगणके धातु	१८१—१८४
पाठ ३०—जुहोत्यादिगण	१८४—२०६
पाठ ३१—विशेषण तथा क्रियाविशेषण	२०६—२१८
पाठ ३२—समाम—अव्ययीभाव तथा तत्पुरुष	२१८—२२७
पाठ ३३—बहुव्रीहि तथा इन्द्रसमास	२२७—२३४
पाठ ३४—कारक	२३४—२४५

विषय

पृष्ठ

पाठ ३५—भविष्यत् तथा क्रियातिपत्ति	२४६—२५८
पाठ ३६—परोक्षभूत वा लिट्	२५८—२६८
पाठ ३७—परोक्षभूत	२६८—२७७
पाठ ३८—कुछ अनियत रूप	२७८—२८७
पाठ ३९—तद्धित और क्त प्रत्यय	२८७—२९७
पाठ ४०—सामान्यभूतकाल	२९८—३०८
पाठ ४१—आशीर्निङ्, इच्छार्थक, अतिशयार्थक, नामधातु	३०८—३१७
पाठ ४२—स्त्रीप्रत्यय तथा पत्रलेखनका प्रकार	३१७—३२६
१। चटकदम्पत्योः	३२७—३२८
२। वामदेवशिष्यकथिता कुमारवार्ता	३२८—३३०
३। सिंहशशकयो	३३०—३३२
४। सर्पमण्डूकयो.	३३२—३३५
५। मान्याद्वृत्तान्त	३३५—३३६
६। कुमार चन्द्रापौड प्रति महाराजाज्ञा	३३६—३३७
७। चन्द्रापौड प्रति शुकनासोपदेश	३३७—३३८
८। ब्रह्मज्ञानविषयक गुरुशिष्यसवाद	३३८—३३९
९। नीति.	३४०—३४१
१०। राजभक्ति	३४१—३४२
११। अराजक राष्ट्रम्	३४२—३४३
१२। पञ्चवटी	३४३—३४४

विषय	पृष्ठ
१३। श्रीनिवासस्थानानि	३४४—३४५
१४। दम्पतीसूत्रेह.	३४५—३४७
१५। संयमः	३४७—३४८
१६। प्रापदि शोकत्यागः	३४८
१७। सन्तोषः	३४८
१८। आत्मज्ञानम्—कर्तव्यज्ञानम्	३५०—३५१
१९। अजविलाप	३५१—३५२
२०। प्रकीर्णानि सुभाषितपद्यानि	३५२—३६२
२१। स्तुतिपद्यानि	३६२—३६३
उद्धृत गद्यपद्योपर टिप्पणी	३६५—३६३
परिशिष्ट (क) क्त धातुके रूप	३६४
परिशिष्ट (ख) पाणिनीय पद्धति	३६५—४००
परिशिष्ट (ग) क्तदन्तरूप	४०१—४०७
शुद्धिपत्र	४०७—४०८

## प्रशंसापत्र ।



**सूचना**—बाबे गवर्मेण्टने 'संस्कृत टीचर्स' और उसके गुजराती अनुवाद 'संस्कृत शिक्षिका का स्कूलों तथा ट्रेनिंग कालिजोंमें पाठ्य पुस्तककी तरह उपयोग किया जाना मजूर किया है। मध्यप्रदेशकी गवर्मेण्टने 'संस्कृत टीचर्स का द्वितीय श्रेणीके स्कूलोंमें तथा अलहाबाद यूनीवर्सिटीने सन् १९१९ की म्याट्रिक् परीक्षामें पाठ्यपुस्तक की तरह उपयोग किया जाना मजूर किया है।

**माननीय न्यायमूर्ति सर् एन् जी चन्दावरकर, एम् ए, एल् एल् वी** महाशय लिखते हैं —  
मैंने आपकी पुस्तक (संस्कृत टीचर्स) को पढ़ा और उसे अत्यन्त उपयोगी पाया। पाठोंका रचनाक्रम, टिप्पणियां, और उद्धृत गद्यपद्यसंग्रह अत्युत्तम हैं।

**प्रो० ए ए मक्डानल, आक्सफोर्ड** —

आखिर हमकी आपकी पुस्तक पढ़नेका अवसर मिला। जहाँतक मेरा अनुभव है भारतवर्षके विद्यार्थियोंकी संस्कृतविद्यामें प्रवेश करानेके लिये इससे उत्तम पुस्तक भारतवर्षमें कहीं नहीं है। नवीन विद्यार्थियोंकी संस्कृतविद्या बहुत रोचक बनायी जा सकती है यदि यह योग्य मार्गसे पढ़ाई जाय। परन्तु मे समझता हूँ, आजकल भारतवर्षमें बनी हुई पुस्तकोंमें, जिनको मैंने देखा है, यह बात नहीं पायी जाती। वे विशेषतः रटनिके लिये बनायी गयी हैं। उनमें मनीहर टिप्पणियोंके रूपमें बहुत कम ज्ञातव्य विषय होता है और उनसे अनावश्यक नियम तथा अप्रयुक्त रूप बहुत होते हैं। आपका व्याख्याकार, संस्कृत साहित्यसे सावधानीके साथ जुने हुए गद्यपद्य, छन्द तथा अलङ्कारों पर टिप्पणियां, तथा पाणिनीय व्याकरणपद्धति, ये सब विषय मेरी समझमें अत्युत्तम हैं।

मैं समझता हूँ भारतवर्षीय यूनीवर्सिटीयोंकी एग्जैम्स परीक्षाके लिये यह ग्रन्थ अत्यन्त उपकारक होगी।



महामहोपाध्याय प हरप्रसाद शास्त्री, एम् ए, प्रिन्सिपल्,  
गवमेंट् सस्कृत कालेज, कलकत्ता —

अच्छा होता यदि आपकी पुस्तक इस प्रान्तमें भी चलायी जाती। यहां पर अभी तक वही पुराना नीरस संस्कृत पढ़ानेका ढर्रा चला जाता है, जिससे विद्यार्थी घबडा जाते हैं। संस्कृत व्याकरणके नियम अत्यन्त क्लिष्ट और नीरस होनेके कारण विद्यार्थी लोग संस्कृतकी छोड इतर भाषाओंका पढना पसन्द करते हैं। सचमुच ही आपने संस्कृत व्याकरणकी एक सरस और विद्यार्थियोंके चित्तकी अपनी ओर खींचनेवाली चीज बना डाला। इसकी सुन्दरता और सुगमता बहुत चित्तकी लुभानेवाली है। लोग संस्कृतभाषाकी, जिसमें १६०० पाणिनिके और लगभग ५,००० काव्यायनके नियम हैं, शब्दके छत्तेकी उपमा दिया करते हैं, जो अपने शब्दकी बचाता रहता है। जिस प्रकार मधुमक्खियां काटकर लीगोंकी शब्द तक पहुँचने नहीं देती उसी प्रकार क्लिष्ट नियम और उनकी सड़ीणता लीगोंकी संस्कृत साहित्यके सौन्दर्य और साधुर्य तक पहुँचनेमें बाधा देते हैं। परन्तु आपने मधुमक्खिया पालनेवाले चतुर पुरुषके कुशल हस्तसे सब मधुमक्खियोंको उडा दिया और शब्द हमारे बच्चोंके लिये सुलभ कर दिया है। यह बात निश्चयपूर्वक कही जा सकती है कि आपके परिश्रमसे आपका प्रान्त अच्छी तरह लाभ उठायगा। आपने यह सिद्ध कर दिया कि संस्कृत भी एक भाषा है जो किसी भाषासे कम नहीं। साथ साथ आपने यह भी सिद्ध कर दिया कि व्याकरणसे भाषाका अभ्यास अधिक उपयोगी है, भाषाका जाननेवाला स्वयं व्याकरणके नियम बना ख सकता है। सबसे उत्तम बात तो यह है कि नियमोंके उदाहरणोंमें आपने आधुनिक संस्कृत न देकर प्राचीन काव्योंसे गद्य पद्य चुने। मेरी यह इच्छा है कि इस कार्यमें आपको पूर्ण सफलता प्राप्त हो। मैंने अपने लडकोंसे आपकी पुस्तकका पूर्ण उपयोग लेनेके लिये कहा है।

श्रीयुत रेवरेंड प्रो० ए० हेग्लिन्, सस्कृत प्रोफेसर, भेवियर्स  
कालेज बवई —

संस्कृतकी धिक्तियां, अनेक शब्दरूप, तथा धातुरूप विद्यार्थियोंकी धृतिशक्तिपर बड़ा  
धीमं डालते हैं। आपने बड़ी चतुराईसे विशेष प्रचलित रूपोंमें  
सीमाबद्ध कर इस कामको हलका बना डाला है। नियमोंकी  
योग्य रचना और क्रमिक पाठोंका सनिवेश इस कामको और  
हलका करते हैं। आपी (उदाहरणार्थ) दिये हुए वाक्य तथा -पुनकके अन्तमें  
दिये हुए गद्य पद्य उत्तम रीतिसे चुने हुए, भिन्न भिन्न विषयोंके, मनो-  
रञ्जक, तथा कार्योंसे उद्धृत हैं।

विद्यार्थियोंको यह देखकर बड़ी प्रसन्नता होगी कि प्रति पाठमें दिये हुए भाषाके  
वाक्य कम और छोटे हैं। टाइप् मीटा तथा स्पष्ट और पुनकका आकार छोटा है।  
पुनककी सम्पूर्ण रचना मनोहर है। मेरी रायमें 'संस्कृत टीचर्' स्कूलोंमें प्राथमिक  
व्याकरण और पाठ्य पुस्तककी तरह उपयुक्त होनेके योग्य है।

प्रो० वी एस् घाटे, एम् ए, सस्कृत प्रोफेसर, डेकन कालेज,  
पूना .—

मैंने आपके 'संस्कृत टीचर्' के कुछ अंश पढ़े हैं। मैं प्रसन्नतासे इसे स्कूलों-  
में चलाये जानेकी शिफारिस करता हूँ।

पहिले संस्कृत वाक्य लेकर उनपर व्याकरणनियमोंके बैठानेकी आपकी रीति अधिक  
स्वामाविक है और मुझे विश्वास है कि यह संस्कृतकी पढाईकी अधिक मनो-  
रञ्जक बनायगी।

गद्यपद्योंका साथ ही उत्तम और मनोरञ्जक है। व्याकरणके  
भिन्न भिन्न विषय योग्य रीतिसे व्यवस्थित किये गये हैं, जैसे पुस्तकके पूर्व भागमें  
सवनाम तथा साधारण समासोंका वर्णन, तथा परीक्षभूतके पूर्व नीनों भविष्यत् कार्मोंका

वर्णन, निश्चय योग्य दिशाका सूचक है। आपका संस्कृत व्याकरणके प्रचलित पारिभाषिक शब्दोंका जहाँ तहाँ व्याख्यान करनेका उद्योग अत्यन्त सुख्य है। आपने अनियत रूपके व्याख्यानसे पुस्तकका मोक्ष नहीं बढ़ाया है जिससे विद्यार्थियोंके मार्गमें एक बड़ा विघ्न दूर हुआ। विशेषतः आपका आशीर्लिङ्ग तथा इच्छायुक्तोंका वर्णन वैसा है जैसा कि होना चाहिये। मैं बड़ी प्रसन्नतासे कह सकता हूँ कि 'संस्कृत टीचर्' का यत्न योग्य दिशासे हुआ है और यह संस्कृतके पढ़ानेमें बहुत उपकारी होगा, क्योंकि यह इन दो उत्तम सिद्धान्तोंपर बना है, 'व्याकरणके पूर्व साहित्य' और 'उतना व्याकरण जितना साहित्यके लिये आवश्यक है।'

प्रो० एच्. एम्. भडकमकर, बी. ए., संस्कृत प्रोफेसर, विल्सन कालेज, बम्बई :—

उत्तम नई रीतियोंकी दृष्टिसे, जो अब स्कूलोंमें संस्कृत पढ़ानेमें चलाई जानेवाली हैं, मैं समझता हूँ कि आपकी पुस्तक बहुत उपयुक्त होगी। अध्यापकके नातेसे आपकी विद्यार्थियोंकी अपेक्षाएँ तथा शक्ति जाननेका मुझसे अच्छा अवसर मिला है। मुझे विश्वास है कि आपकी पुस्तक स्कूलोंके विद्यार्थियोंके लिये बहुत उपयोगी होगी। मुझे आशा है इससे संस्कृतके पढ़ानेकी मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद बनानेका आपका उद्देश अच्छी तरह सिद्ध होगा। मैं जानता हूँ कि यूनीवर्सिटीके परीचामें जानेके पूर्व विद्यार्थियोंकी अधिक पढ़नेकी आवश्यकता होगी, परन्तु इसमें मन्देह नहीं कि आपकी सुगम तथा सक्षिप्त व्याकरणरीतियोंकी अच्छी तरह अभ्यास कर चुकनेपर उनकी बुद्धि संस्कृत साहित्यमें प्रवेश करनेमें समर्थ होगी। विद्यार्थियोंकी इसकी यथाप तथा व्यावहारिक उपयोग, होनेके विषयमें, मैं समझता हूँ, आप मुझसे अच्छा समझते हैं।

महामहोपाध्याय डा० गङ्गानाथ भा, एम् ए, सस्कृत प्रोफेसर,  
योर सेड्रल् कालेज, अलहाबाद —

मुझे विश्वास है कि आपकी पुस्तकका आदर हीगा। जो कुछ थोड़ासा मैंने देखा  
है उस पर से यह मालूम होता है कि डा० भाडारकरकी सीरीज से यह  
उत्तम हुई है।

यह पुस्तक स्कूलोंमें चलायी जाने योग्य है। मैं यथाशक्ति  
इसके प्रचारका उद्योग करूंगा।

---

डा० वेनिम्, एम् ए, प्रिन्सिपल्, गवर्मेण्ट् सस्कृत कालेज,  
बनारस —

जहांतक मुझे आपकी पुस्तक पढ़नेका अवसर मिला, मैं यह कह सकता हूँ कि  
इससे आपने अपनी प्रस्तावनामें लिखे हुए उद्देश सिद्ध हुए। आपने  
भारतवर्षके अंग्रेजी पढ़नेवाले विद्यार्थियोंके ह्याथ सस्कृत व्याकरण-  
की सक्षिप्त और विश्वसनीय एक पुस्तक दी। मेरी इच्छा है कि  
आपकी पुस्तकका उचित आदर हो।

---

प्रिन्सिपल् पी एस् श्रीनिवास ऐयङ्गार, एम् ए, प्रिन्सिपल्-  
मिसेस् ए वी नरसिंह राव कालेज, विजगापटम् —

आपकी पुस्तक प्रचलित सस्कृत व्याकरण तथा पाठ्य पुस्तकोंमें  
बहुत उत्तम है। मैं पहिले रूप और बाद इसके विवेचनकी आपकी पद्धति  
बहुत पसन्द करता हूँ। धातुबोधे रूप बनानेकी हरिम रीतिसे यह रीति बहुत अच्छी  
है, जिसमें लोग घडीसान धड़ियाँकी तरह उन उन अवयवोंकी जोड़-भंग तैयार  
करने हैं।

ए महादेव शास्त्री, बी. ए, संस्कृत पुस्तक निरीक्षक तथा मैसोर  
संस्कृत सीरीजके सम्पादक —

आप विश्वास रखें कि आपने पढानेकी रीतिमें बड़ी उन्नति  
कर दिखायी है। पढानेकी इस अत्यन्त स्वाभाविक रीतिसे संस्कृतका पढाना  
अधिक मनोरञ्जक होगा। उदाहरणवाक्य, जो संस्कृत कार्योंसे लिये गये हैं,  
साहित्यमें लीगोकी रुचि उत्पन्न करेंगे।

ए अनन्ताचार्य शास्त्री, मैसोर प्रवृत्तत्वविभाग, बंगलोर —

मैंने आपकी पुस्तक पढ़ी। आपकी रीति उत्तम है। अंग्रेजी विभागके संस्कृत  
विद्यार्थियोंके लिये यह पुस्तक अच्छी सहायक होगी। दूसरी पुस्तकें उन्हीं विद्यार्थियोंकी  
सहायता दे सकती हैं जिनकी पहिले ही से संस्कृत भाषाकी अच्छी व्युत्पत्ति है। पहिले  
वाक्य देकर बाद उनके शब्दोंकी निष्पत्ति निरूपण करनेकी रीति विद्यार्थियोंकी साहित्य  
पढनेमें सहायता देती है। आपने उदाहरणार्थ चुने हुए गद्य पद्य केवल उपदेश-  
पर ही नहीं है किन्तु वे स्मरण रखने योग्य तथा भाषा जीवनमें  
उपयोगी भी है।

— प्रो०. राजराज वर्मा, एम् ए, संस्कृत प्रोफेसर, महाराजा  
कालेज, त्रिवाड्रम् :—

मैंने आपकी पुस्तक देखी। मैं देखता हूँ कि इसकी योजना बड़ी योग्यता-  
से कल्पित और बड़ी कुशलतासे रची गयी है। इसमें सज्जेप और  
सुगमताका योग हुआ है जिसके लिये आप धन्यवादार्ह हैं। नये  
विद्यार्थियोंके लिये यही पुस्तकमें संयोगमक रीतिसे तुलनात्मक रीतिका अवलम्बन  
करना एक नयी बात है। इस नयी रीतिका अवलम्बन उन विद्यार्थियोंमें रुचि जागृत तथा  
स्थिर करनेमें उपयुक्त होगी, जिनके हाथमें यह पुस्तक दी जायगी। इसके गद्य पद्योंके  
विषयमें मुझे निश्चय है कि उनकी विचित्रता और उत्तमता सर्वत्र आदृत

होगी। सर्वथा इसमें यदि मतभेद हो सकता है तो वह कदाचित् इसके परिमाणके विषयमें। सम्भव है कि इसे कुछ लोग नये विद्यार्थियोंके लिये अपभ्रंश समझे। इसी प्रकार संस्कृतमें अनुवादके लिये वाक्य कदाचित् बहुत कम समझे जायेंगी सम्भव है। परन्तु मुझे पूर्ण निश्चय है कि नये विद्यार्थियोंके लिये बनाइ गयी ऐसी पुस्तकमें कुछ सीमा भी होती है। पुस्तकके अन्तमें दिये हुए गद्य पद्य भलीभांति चुने गये हैं और सदाचार के अच्छे निदर्शक हैं। वे एड्वेन्स पग्रीचाकी एक वर्षकी पढाइके लिये पर्याप्त हैं। मैं अपने विद्यार्थियोंमें इसका प्रचार करूंगा और सामान्यतः स्कूलोंमें इसके उचित उपयोगकी शिफारिस करूंगा।



प्रो० वीरेश्वर शास्त्री टुविड, मस्कृत प्रोफेसर, महाराजा कालेज,  
जयपुर -

स्कूलों तथा भारतवर्षीय युनीवर्सिटियोंके म्याट्रिक्युलेशन परीक्षाके छात्रोंकी अपेक्षाये पूर्ण करनेमें यह पुस्तक अत्यन्त उपयुक्त है। अपने परित्यक्त संस्कृतमें प्रवेग चाहनेवालोंके लिये तो यह अमूल्य है। आपने अबलम्बन की हुई तुलनात्मक पद्धति नूतन विद्यार्थियोंकी उस नीरसताकी कम करेगी जिसका उनको प्रायः अनुभव हुआ करता है। चुने हुए वाक्य सुगम तथा सुव्यवस्थित हैं और प्रकृत व्याकरण नियमों को अच्छी तरह स्पष्ट करते हैं। पुस्तकके अन्तमें दिये हुए विविध विषयोंके गद्य पद्य इस पुस्तकमें अपूर्व हैं। उनका बार बार पढना विद्यार्थियोंको संस्कृत भाषाकी रचना और मर्म समझने में बहुत उपकार करेगा।



टी गणपति शास्त्री, संस्कृतपुस्तकनिरोद्धक तथा त्रिवाङ्म संस्कृत सीरिजके सम्पादक -

आप ऐसे लोग लोगोंके अनेक प्रकारके उपकार करनेमें समर्थ हैं। उन्हें अपने किये

हुए अनेक उपकारोंसे तृप्ति नहीं। वे ऐसी दिशासे फिर भी लोगोंका उपकार करनेकी इच्छा करते रहते हैं। सर्वथा यह नयी पुस्तक गुणगोमं अवश्य प्रवेश पावेगी।

नारायण शास्त्री, जेड्मास्टर, सस्कृत पाठशाला, त्रिवाड्रम् तथा भूतपूर्व सस्कृत प्रोफेसर, महाराजा कालीज, त्रिवाड्रम्.—

मैंने सावधानतासे सायन्त आपकी पुस्तक पढ़ी। मुझे इसमें कहीं कोई भी चीज दुष्ट वा असुन्दर देखनेमें न आयी। वाक्योंसे उद्धृत कर पदोंकी निष्पत्ति प्रतिपादन करनेकी आपकी शैली गणितिक किस वैधाकरणकी हृदयकी सुग्ध न करेगी? सबसे बढ़कर प्रशंसाकी बात तो यह है कि इसमें प्राचीन उत्तम काव्योंसे सगृहीत वाक्य, गद्य, तथा पद्य मधुर, कीमल, तथा सदुपदेशपर हैं। अधिक क्या लिखें? आपकी पुस्तक सम्प्रदायभिमानीयोंके मनके 'अर्थोंकी फैलनेसे सस्कृतका प्रचार संकुचित हो रहा है' इस कण्टकके दूर करनेमें रामबाण औषध है यही मेरा नियत मत है।

आपने प्रस्तावनामें जो लिखा है कि यह पुस्तक स्कूलके विद्यार्थियों तथा अधिक ज्ञानवान् अर्थोंकी विद्वानोंकी, जो संस्कृत जाननेकी अभिलाषा रखते हैं, शिचापद तथा मनीरञ्जक होगी, इससे मैं सहमत हूँ। ऐसा आदमी न मिलेगा जो इस विषयमें विवाद करे कि यह पुस्तक स्कूलोंमें उत्तम पाठ्यपुस्तकका स्थान पावे योग्य है। सच्चेप यह है कि इस प्रकारका आपका उद्योग मुझ ऐसे लोगोंकी बहुत आनन्द देता है। पाठशालाओंमें पाठ्यपुस्तकोंका विचार करनेके अवसरपर कौन 'सस्कृत टीचर' की भूमिका? सस्कृत में अपना हर्ष प्रकट करते हैं।

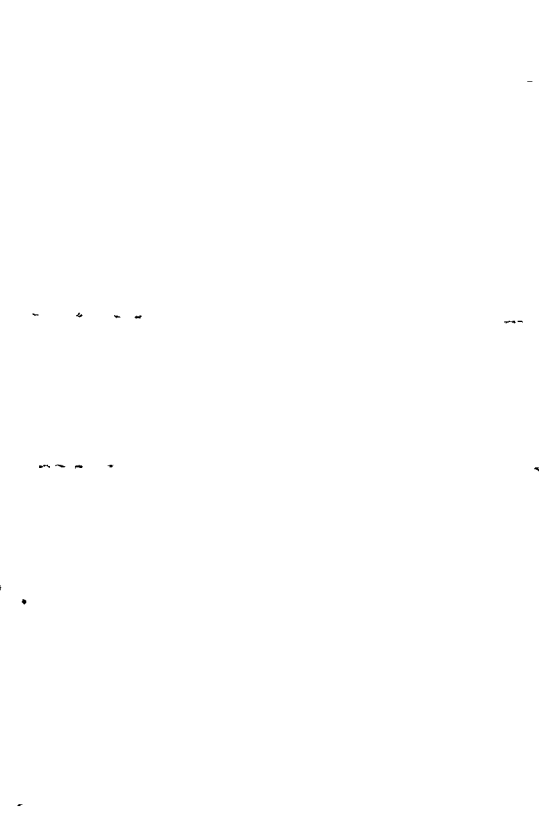
शास्त्री केदारनाथ दुर्गाप्रसाद, महामहोपाध्याय, काव्यमालाके सम्पादक, जयपुर—

आपका 'सस्कृत टीचर' नामका सस्कृतशिक्षक एकवारगी व्याकरण, कोश, तथा साहित्यमें उत्तम व्युत्पत्ति करनेमें समर्थ है।

इसमें सन्देह नहीं कि सस्कृत साहित्यमें प्रवेश करनेकी इच्छा रखनेवालोंकी यह अत्यन्त

उपयोगी तथा नवीन शैलीकी पुस्तक बहुत उपकारी होगी। सम्कृतानुरागी सहृदयोंसे भीरी सादर यह मायना है कि केवल सम्कृत जाननेकी इच्छा रखनेवालोंके लिये ही लीग द्रष्टी रीतिपर सरख संस्कृत अथवा हिन्दीमें यन्त्र शीघ्र बनावे। पदानिमें किस परिपाटोका श्लोकार करना चाहिये यह बात 'संस्कृत टीचर' अच्छी तरह सिखाता है। संस्कृतमें हम इसे टीचर नहीं, चीतर कहते हैं। क्योंकि प्राणिनि, कात्यायन, तथा पतञ्जलि यह सुनिश्चय केवल व्याकरणमें व्युत्पत्ति करा सकता है और यह एक ही में कीग, व्याकरण, तथा काव्य सिखाता है। इसी प्रकार यह मोक्षमूलर—कालि—आपटे—इनकी पुस्तकोंसे भी निराला है। इस कारणसे भी यह चीतर है। इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि यह संस्कृतसाहित्यमें प्रवेश तथा व्युत्पत्ति चाहनेवालोंका उपकार करेगा। यह संस्कृत चीतर-चन्द्र योग्य समयपर उदित हुआ। प्रतिदिन बढनेवाली इसकी कलाये संस्कृत व्युत्पत्ति चाहनेवालोंकी अपनी गिद्याक्षपी चन्द्रिका दे।





---

---

# संस्कृत-शिक्षिका ।

एक नये ढंगकी संस्कृत पाठ्यपुस्तक ।

---

---

गर्जति शरदि न वर्षति वर्षति वर्षासु निःस्वनो मेघ' ।  
नीचो वदति न कुरुते न वदति सुजन, करीत्येव ॥

कल्याणाना त्वमसि महसां भाजनं विश्वमूर्ते  
धुर्यां लक्ष्मीमथ मयि भृशं घेहि देव प्रसीद ।  
यदात्पाप प्रतिज्ज्ञि जगन्नाथ नम्रस्य तन्मे  
भद्रं भद्रं वितर भगवन् भूयसे मङ्गलाय ॥

शरणं करवाणि कामदं ते चरणं वाणि चराचरोपजीव्यम् ।  
करुणामसृणौ, कटाक्षपातौ कुरु मामन्व ह्यतार्थसार्थवाहम् ॥

# संस्कृतशिक्षिका

पाठ १ ।

वर्ण ।

संस्कृतमें अधोलिखित वर्ण होते हैं —

(अ) अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ए, ऐ, ओ, औ ।

(ब) क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, श, ष, स, तथा ह् ।

(अ) से चिह्नित वर्णोंको स्वर कहते हैं, क्योंकि और किसी वर्णको सहायताके बिना वे उच्चारण किये जा सकते हैं ।

(ब) से चिह्नित वर्णोंको व्यञ्जन कहते हैं, क्योंकि वे अपने उच्चारणमें स्वरोंकी अपेक्षा रखते हैं, क्, ख्, इत्यादि वर्णोंका बिना किसी स्वरके मिलाये उच्चारण नहीं हो सकता, व्यञ्जन शब्द वि + अञ्ज् + अन् के जोड़ने से घना है और उसका अर्थ मिलना है । उदाहरण—क = क् + अ, का = क् + आ, को = क् + ओ ।

आ, ई, ऊ, और ऋ, ऐ, अ, इ, उ, तथा ऋ इनको दीर्घत्व है, तृको दीर्घ नहीं होता । —

स्वरोंके ऊपर जो बिन्दु दिया जाता है उसे अनुस्वार तथा उको वाङ्गो जो बिन्दु दिये जाते हैं उनको विसर्ग कहते हैं । जैसे—, , क, क ।

दो या अधिक व्यञ्जन उच्चारण मिले रहते हैं उनको सयुक्ताक्षर कहते हैं । जैसे क्त = क् + त्, फ्र = र् + फ्, छ् = च् + छ्, म् = म् + म्,



स्मृ का, तरति=त् + अ + ति ( तृ + अ = तर् + अ ) तृ का,  
 वोधति=वोध् + अ + ति ( जुध् + अ = वोध् + अ ) जुध् का रूप है ।

५। ऊपरके षोडशे यह मालूम होगा कि अन्तिम स्वर तथा उपान्ता  
 ( अथवा समीपका ) ह्रस्व स्वरोंमें गणचिह्न अ के पहिले कुछ परिवर्तन  
 होता है । ( इ, वा इ का ए, उ, जा ऊ का ओ, श्रु वा श्रु का अर,  
 तथा ए का अल हो जाता है ) ।

६। ए, ओ, अर्, तथा अल इ वा इ, उ वा ऊ, श्रु, वा श्रु, और नृ  
 के यथाक्रम प्रादेश है और इनको गुण प्रादेश कहते हैं ।

- जे + अ = जप् + अ, न + अ = नप् + अ, भो + अ = भव् + अ —

७। मङ्कृतमें जब एक साथ दो स्वर आते हैं तो वे विशेष परि-  
 वर्तनसे मिल जाते हैं । इसको मन्धि कहते हैं ।

८। जब ए तथा ओ के बाद कोई स्वर आता है तो वे यथात्म अर्  
 तथा अर् में बदल जाते हैं ।

नाटयति, चालयति, चोरयति, धारयति इत्यादि चुरादिगणके धातु  
 रूप हैं ।

नट् + अर् + ति = नाटयति, चल—चालयति; कथ्—कथयति, चुर्—  
 चोरयति, पीड्—पीडयति, स्पृह्—स्पृहयति, धृ—धारयति—

९। उपान्ता ( अन्तर्के समीपका ) अ प्राय, इसकी वृद्धि आमें  
 बदल जाता है, परन्तु कथ्, गण, इत्यादिमें नहीं बदलता ।

१०। स्पृह् इत्यादि लोढ़ कर अ के सिया दूसरे उपान्ता ह्रस्व स्वरकी  
 गुण होता है ।

११। अन्त्य स्वरकी वृद्धि होती है । अ की वृद्धि आ, इ तथा  
 ई की वृद्धि ए, उ तथा ऊ की वृद्धि ओ, श्रु तथा श्रु की वृद्धि अर,  
 और न के बाद आल है ।

१२। अन्त्य स्वरकी वृद्धि होती है । अ की वृद्धि आ, इ तथा  
 ई की वृद्धि ए, उ तथा ऊ की वृद्धि ओ, श्रु तथा श्रु की वृद्धि अर,  
 और न के बाद आल है ।

१२ । जिस प्रकार भ्यादिगणके धातुओंमें श्र को पहिले गुण होता उस प्रकार तुडादिगणके धातुओंमें नही होता ।

शब्दसंग्रह ।

भ्यादिगण ।

चर्—चलना  
 लि—लीतना  
 तृ—प्रार करना  
 दृष्ट्—जलाना  
 नी—ले जाना  
 षट्—षट्ना  
 पत्—गिरना  
 पुष्—जानना  
 भू—छोना  
 वृष्ट्—जोलना  
 वम्—रचना  
 म्—भारण करना

चुरादिगण ।

कय्—कटना  
 क्षल्—छोना  
 गण्—गिनना  
 चुर्—चुराना  
 घृ—घकड़ना वा छठाना  
 नट्—नाचना  
 षोड्—कष्ट देना  
 पूज्—पूजा करना  
 रच्—रचना  
 सूच्—सूचन करना वा सुनाना  
 लीष्—लेना (अपठनीय, सुश्री, अर्थ)

पाठ ४ ।

वर्तमान काल ।

कृष्यमि—( कृ ) कृष करता है ।  
 मथ्यमि ( मृ ) मथु होता है ।  
 द्रव्य ( द्रुम हो ) से खाते हो ।  
 मथ्य ( मृम हो ) में खाते हो ।  
 मथ्य ( मृम माग ) मथ्यते हो ।  
 मथ्य ( मृम मीम ) मथ्यते जात है ।

सयामि ( सै ) नाश करना ।  
 रज्यामि ( र्जै ) रज्जु करना ।  
 मृश्याय ( मृश्र हो ) मृश्रते ।  
 मथ्याय ( मथ्र हो ) मथ्यते ।  
 यश्याय ( यश्र हो ) यश्रते ।  
 यश्याय ( यश्र हो ) यश्रते ।  
 मृश्याय ( मृश्र हो ) मृश्रते ।

उपरके उदाहरणोंसे ये नियम निकलते हैं —

१। मि, य, और थ यथाक्रम वर्तमानकालिक क्रियाके मध्यम पुंस्यके एकवचन, द्विवचन, तथा बहुवचनके प्रत्यय हैं, और मि, व, म वर्तमानकालिक क्रियाके उत्तम पुंस्यके एकवचन, द्विवचन, तथा बहुवचनके यथाक्रम प्रत्यय हैं ।

२। स्पृष्टयामि, स्पृष्टाव, वराम —मि, व, म के पूर्व अ को दीर्घ हो जाता है ।

शान्म्यामि—मैं शान्त होता हूँ ।	क्लाम्पयति—वह मुर्झाता है ।
शान्म्याम —हम लोग शकते हैं ।	क्लाम्पयन्ति—वे घूमते हैं ।
क्लाम्प्याव —हम दो सप्ताह करते हैं ।	क्लाम्पयति—वह घूमता है ।
माह्यमि—मैं मत्त होता हूँ ।	क्लाम्पयि—तू घूमता है ।

इन उदाहरणोंसे ये नियम सिद्ध होते हैं —

३। शम्, अम्, क्षम्, मद्, और क्त्वं इन धातुओंके अ को दीर्घ होता है ।

४। भ्रम्, भ्र्वादि तथा दिव्यादि दोनों गणोंमें पढ़ा हुआ है । और दिवादिमें अ को विकल्पसे दीर्घ होता है । इस प्रकार इसके तीन रूप होते हैं —भ्रमति, अमति, आमति ।

गच्छामि—तू जाता है ।	पृच्छाम —हम लोग पूछते हैं ।
इच्छामि—मैं चाहना हूँ ।	पृच्छथ—तुम लोग देखते हो ।
तिष्ठन्ति—वे गढ़े रहते हैं ।	पिबत —वे पी पीते हैं ।

५। गणविद् ( विकरण ) के पहिले कुछ धातुओंके खानमें दूसरे आदेश हुआ करते हैं । जैसे—गम् के खानमें गच्छ, इप् से गच्छ, खा के खानमें तिष्ठ, पृच्छ के खानमें पृच्छ, दृ- के खानमें दृष्य, और पा के खानमें पिब आदेश होता है ।



गच्छाम — हम लोग जाते हैं ।

नयथ — तुम दो ले जाते हो ।

आगच्छाम — हम लोग आते हैं ।

आनयथ — तुम दो ले आते हो ।

वचामि — मैं रचता हूँ ।

तराम — हम लोग पार करते हैं ।

निवचामि — मैं रचता हूँ ।

अवतराम — हम लोग उतरते हैं ।

६ । धातुश्रीके पहिले लगे हुए आ, नि, अत्र इत्यादि उपसर्ग कहते हैं । वे बहुधा धातुश्रीके अर्थको बदल देते हैं ।

साध — हम दो नहाते हैं । । यान्ति — वे जाते हैं ।

साव — सा धातुका रूप है, और यान्ति या धातुका । ये अदादिगणके धातु हैं ।

७ । अदादिगणके धातुश्रीमें कोई गणचिह्न नहीं होता । धातुश्रीके बाद ही प्रत्यय लगाये जाते हैं ।

शब्दसंग्रह ।

भवादि ।

गम् ( गच्छ् ) जाना

आगम् — ( गच्छ् ) आना

त्ति — नाश करना

अत्र वृ — उतरना ( अत्र = नीचे )

त्यज् — छोड़ना

दृष् ( पश्य् ) — देखना

आ नी — गाना

पा ( पिप् ) — पौना

अम् — घूमना

नि अम् — रचना

स्था ( तिष्ठ् ) — पड़ा रचना

हृ — धरम ज्ञाना ।

दिवादि ।

क्लाम् ( क्लाम् ) — यकना

क्षाम् ( क्षाम् ) — क्षमा करना

क्षुम् — क्षोभ करना

अम् ( आम् वा भ्रम् ) — घूमना

मद् ( माद् ) — मत्त होना

शम् ( शाम् ) — शान्त होना

शुष् — सूखना

हृन् ( ग्राम् ) — यकना

तुदादि ।

इप् ( इच्छ् ) — चाहना

पृच्छ् ( पृच्छ् ) — पूछना

अदादि ।

या — जाना

सा — नष्टा

पाठ ५ ।

उपसर्ग ।

अपनयति—वह हटाता है ( अय = हूर ) ।	प्रतिवदाम — हम लोग उत्तर देते । ( प्रति = बदलेमें ) ।
अनुसरति—वह पीछे चलता या अनुकरण करता है । ( अनु = पीछे ) ।	उपगच्छत — वे दो समीप आते हैं ( उप = समीप ) ।
उत्पतामि—मैं कूदता हूँ ( उट् = ऊपर ) ।	अवगच्छाय — हम दो जानते हैं । ( यहापर अव का अर्थ 'नीचे' नहीं है । )
विनश्यति—तुम दो नष्ट होते हो ( वि = पूर्ण रूपसे ) ।	प्रचरसि—तुम चलते हो ( प्र = आगे ) ।

गम—भ्वादि ।

	ए व ।	द्दि व ।	व व ।
प्रथम पुरुष	गच्छति	गच्छत	गच्छन्ति
मध्यम ,,	गच्छसि	गच्छथ	गच्छथ
उत्तम ,,	गच्छामि	गच्छाव	गच्छाम

पुष्—डिवादि । योषण करनी, पा ११

प्र पु	पुष्यति	पुष्यत	पुष्यन्ति
म पु	पुष्यसि	पुष्यथ	पुष्यथ
उ पु	पुष्यामि	पुष्याव	पुष्याम

इष्—तुदादि ।

प्र पु	इच्छति	इच्छत	इच्छन्ति
म पु	इच्छसि	इच्छथ	इच्छथ
	इच्छामि	इच्छाव	इच्छाम

## चुर्—चुरादि ।

प्र पु	चोरयति	चोरयत	चोरयन्ति
म पु	चोरयसि	चोरयथ	चोरयथ
उ पु	चोरयामि	चोरयाव	चोरयाम

## स्ना—श्नादि ।

प्र पु	स्नाति	स्नात	स्नान्ति
म पु	स्नासि	स्नाथ	स्नाथ
उ पु	स्नामि	स्नाव	स्नाम

उद् + पतामि = उत्पतामि, यहा द् को त् हुआ है ।

यह जानना आवश्यक है कि अपने २ स्थानोंके अनुसार स्वर श्रोत्र ध्वनि किन वर्गों में विभक्त है ।

अ, आ, कु, ( क्, ख्, ग्, घ्, ङ् ), छ्, और विसर्ग—कण्ठस्थानीय ।

इ, ई, उ, ( च्, छ्, ज्, झ्, ञ् ), य्, और श्—तालुस्थानीय ।

ऋ, ॠ, ( ढ्, ढ्ह्, ढ, ढ्ह, ण् ), र्, और ष्—मूर्धस्थानीय ।

लृ, लृ, ( ल्, ल्ह्, ल, ल्ह, न् ) ल्, और स्—दन्तस्थानीय ।

उ, ऊ, पु, ( प्, फ्, ब्, भ्, म् )—श्रोत्रस्थानीय ।

ए और ऐ—कण्ठतालुस्थानीय ।

ए=अवर्ण ( अ वा आ ) + इवर्ण ( इ वा ई ), ऐ=अवर्ण ( अ वा आ ) + ए ।

ओ तथा औ—कण्ठोष्ठस्थानीय ।

ओ=अवर्ण ( अ वा आ ) + उवर्ण ( उ वा ऊ ), औ=अवर्ण ( अ वा आ ) + औ ।

य्—दन्तोष्ठस्थानीय ।

ह्, ङ्, ण्, न्, और म्—इनका ऊपर लिखे हुए स्थानोंके शिक्षिका स्थान भी है और वे अनुनासिक कहाते हैं ।

य्, व्, और ल् अननुनासिक भी हैं और अनुनासिक भी । क् से म-  
तकके पाचो वर्गोंके ( कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, और पवर्ग ) वर्ण  
स्पर्श कहाते है, यथा कि इन वर्णों के उच्चारण करनेमें जिह्वाका अग्र,  
उपाग्र, मध्य, और मूल इनमे उच्चारण स्थानोंको ( कण्ठ, तालु, मूर्द्धा,  
दन्त, और श्रोष्ठ्रोंको ) स्पर्श करता है ।

पाचो वर्गोंके प्रथम, तृतीय, तथा पञ्चम वर्ण और य्, र्, ल्, व्, अल्प-  
प्राण कहाते है । क्योंकि उनको उच्चारणमें कम श्वासकी अपेक्षा है और  
उनका उच्चारण सुगमता से हो सकता है । इनको सिवा अन्य वर्ण महाप्राण  
कहाते है, क्योंकि उनको उच्चारणमें अधिक श्वासकी अपेक्षा है और  
इनका उच्चारण कठिनतासे होता है ।

वर्णोंके प्रथम और द्वितीय वर्ण तथा, ञ्, घ्, ष्, अघोष ( हजोर  
व्यञ्जन ), और य्, र्, ल्, व्, तथा ह् घोष ( कोमल व्यञ्जन ) कहाते है ।

य्, र्, ल्, और व् अन्त स्य या अन्त स्या ( अट्ट स्वर ), और ञ्, घ्,  
ष्, तथा ट् ऊष्मन् कहाते है ।

उद् + पतति = उत्पतति, उद् + तरति = उत्तरति, उद् + पात =  
उत्पात, उद् + साह = उत्साह, उद् + तेजनम् = उत्तेजनम् ।

नियम—अनुनासिक वा अन्त स्य को छोड़ कर और कोह व्यञ्जन, जब  
उनको बाद कोई अघोष वर्ण हो, अपने वर्गके प्रथम वर्णमें बदल जाता है ।

शब्दसङ्ग्रह ।

अनु ए ( भ्वादि ) पीढ़े जाना, अनुकरण करना ।

अपि णी ( भ्वादि ) ले जाना ।

अथ गम् ( भ्वादि ) जानना ।

उद् पात ( भ्वादि ) कृदना ।

उद् गम् ( भ्वादि ) पास जाना ।

पु-चर ( भ्वादि ) आगे चलना ।

प्रति वद् ( भ्वादि ) धिक्छ घोलना , उत्तर देना ।

वि नश् ( दिव्यादि ) पूर्णरूपसे नष्ट होना ।

### पाठ ६ ।

अकारान्त शब्द ।

बाल क्रीडति—लडका खेलता है ।

अश्व चरति=अश्व्यश्चरति—घोड़ा चलता है ।

जन, तरति=जनस्तरति—आदमी तरता है ।

चौरौ चोरयत —दो चोर चुराते है ।

वृक्षी पतत —दो पेड गिरते है ।

बुधा पठन्ति—पण्डित लोग पढ़ते है ।

देवा जयन्ति=देवा क्षयन्ति—देव लोग जीतते हैं ।

पर्णम् शुष्यति=पण शुष्यति—पत्ता सूखता है ।

नवने पश्यत —दो आँखें देखती है ।

पापानि नशन्ति—पाप नष्ट होते है ।

दुःखानि गच्छति—दुःख गलते है ।

धर्मम् उपदिशामि=धर्ममुपदिशामि—मे धर्मका उपदेश करता हूँ ।

असत्यम् वदय =असत्य वदय—तुम लोग झूठ बोलते हो ।

बालौ ताडयति—बच दो लडकोंको मारता है ।

वेदान् पठाम —हम लोग वेदोंको पढ़ते है ।

पुस्तकानि लिपन्ति—ये लोग पुस्तकोंको लिखते है ।

वक्ष, मुष्टु भणसि—तहको, तू अच्छा कहता है ।

सात विभक्तिया है ।

पथमा—यह प्रातिपदिकार्थमे लगती है ।

द्वितीया—यह क्रियाके कर्मको दिव्याती है ।

तृतीया—यह किसी क्रियाके कर्ता या करणको दिव्याती है ।

चतुर्थी—यह उसको दिखाती है जिसको कोई वस्तु दी जाय सम्प्रदान ), किंवा जिसके लिये कोई काम किया जाय ( ताटर्थ्य ) ।

पञ्चमो—अपादान वा हेतुको दिखाती है ।

षष्ठी—सम्बन्धका बोध कराती है ।

सप्तमौ—यह किमौ क्रियाके अधिकरणको उताती है ।

सम्बोधन कोई श्राठवां कारक नहीं है वह केवल प्रयमाका बोध कराती और किसीको पुकारनेमें इसका प्रयोग किया जाता है जैसे—हे वत्स, पु मणसि ।

योध शरो क्षिपति, शरो क्षिपति योध, वा क्षिपति शरो योध = शर दी बाणां को फेकता है ।

सङ्कृतमें वाक्यके शब्दोंके क्रमके लिये कोई नियम नहीं है ।

इस पाठमें श्रकारान्त शब्दोंके प्रयमा, द्वितीया, और सम्बोधनके प दिये गये हैं ।

राम—पु लिङ्ग ।

ए व ।

द्वि व ।

व व ।

प्रयमा

राम

रामो

रामा

द्वितीया

रामम्

रामोऽम्

रामान्

सम्बोधन

हे राम

हे रामम्

हे रामा

फल—नपु सक वि

प्र

फलम्

फले

फलानि

द्वि

”

”

ष

हे फल

”

अश्व + चरति = अश्वचरति, जन + तरति = जनस्तरति ।

नियम—

१ । जिसमें कोई वाक्य लक्ष् च् वा ह् आदि तो यह श्र में उद्गम जाता और पञ्चमके बाद त तथा य आदि तो यह ष में उद्गम जाता है ।

२ । यदि विसर्गको पहिले आ हा और उसके बाद कोई स्वर वा कामल व्यञ्जन हो तो उसका लोप हो जाता है ।

३ । विसर्गका लोप होने पर पास पास रहनेवाले स्वरोंमें सन्धि काय नहीं होता ।

(अ) पुष्पम् + हरति = पुष्प हरति—

(ब) वनम् + गच्छति = वन गच्छति वा वनङ्गच्छति—

(क) पुस्तकम् लिखति = पुस्तक लिपति वा पुस्तकंलिपति—  
नियम—

४ । विभक्तियोंके सहित शब्दोंको पद कहते हैं जैसे—राम, फले, गच्छत ।

५ । (अ) पुष्प हरति—जब किसी पदको अन्तमें म् हो और उसके बाद श, प, स, ह्, वा र् हो तो वह अनुस्वारमें बदल जाता है ।

(ब) वन गच्छति, वा वनङ्गच्छति—जब म् को बाद कोई अन्य व्यञ्जन हो तो वह अनुस्वारमें अथवा जिस वर्गका वह व्यञ्जन हो उसके अनुनासिकमें बदल जाता है ।

(क) पुस्तक लिपति—वा—पुस्तकंलिपति—जब म् को बाद य्, व्, वा ल् हो तो वह अनुस्वारमें अथवा अनुनासिक य्, व्, वा ल् में बदल जाता है ।

शब्दसंग्रह ।

अकारान्त पुलिङ्ग शब्द ।

अश्व — घोड़ा  
 चोर — चोर  
 जन — मनुष्य  
 देव — देवता  
 धर्म — धर्म  
 पर्वत — पहाड़  
 वाण — टाड़फा  
 बुध — पण्डित

योध — सिपाही  
 वत्स — प्रिय बालक  
 वीर — वीर  
 वृक्ष — पेड़  
 वेद — वेद  
 शर — तीर  
 छैन — घोर

नपुंसक ।

अन्तम् — झूठ  
 अक्षयम् — ठूठ  
 दुःखम् — दुःख  
 नयनम् — नेत्र

पर्णम् — पत्ती  
 पापम् — पाप  
 पुस्तकम् — पुस्तक  
 जलम् — जल

धातु ।

अस् ( अश्नति ) द्विवादि — फेंकना ।

उपदिश ( उपदिशति ) तुददि — उपदेश करना ।

क्रीड ( क्रीडति ) म्वादि — खेलना ।

गल ( गलति ) म्वादि — गलना ।

तड ( ताडयति ) चुरादि — पीटना, मारना ।

भण ( भणति ) म्वादि — बोलना ।



## पाठ ७ ।

अकारान्त शब्द ।

रथेन आगच्छति—रथेनागच्छति—वह रथसे आता है ।

पाटाभ्या चलति—वह दो पैरोंसे चलता है ।

अक्षराणि गणयति बाल—लड़का अक्षरोंको गिनता है ।

बालं घट क्रीडामि—म लड़कोंको घाघ खेलता हूँ ।

रामाय नम—रामको नमस्कार ।

क्रोधाद् भवति समोह—क्रोधसे अज्ञान होता है । (क्रोधात्+भ  
भी क्रोधाद् भवति ये बराबर है ) ।

चक्र रथस्य अङ्गम्—चक्र रथस्याङ्गम्—चक्र रथका एक भाग है ।

व्याघ्रेभ्य भयम्—व्याघ्रेभ्यो भयम्—व्याघ्रोंसे भय ।

चन्द्रो नक्षत्राणां भूषणम्—चन्द्रमा ताराश्रीकां भूषण है ।

आकाशे शुक्ल उत्पतति—आकाशे शुक्ल उत्पतति—आकाशमें  
उड़ता है ।पुरुषेषु उत्तम—पुरुषेषूत्तम पुरुषोत्तम—पुरुषोत्तम वा  
पुरुषोंमें उत्तम है ।

हस्तयोः प्रहरति—हाथों पर मारता है ।

इम पाठमें अकारान्त शब्दोंकी प्रथमासे सप्तमीतक सब विभ  
द्वी गयी हैं ।

		राम—पु ।	
	ए ष ।	द्वि ष ।	व व ।
प्र०	रामः	रामो	रामा
द्वि०	रामेभ्य	"	रामान्
तृ	रामेभ्य	रामाभ्याम्	रामै
च	रामाय	रामाभ्याम्	रामेभ्य
प	रामात्	"	

ऋषर्ण = अर , और अवरुण + लृ = अल् । वार्धभ्य + भयम् = व्याघ्रभ्य  
 + उ + भयम् = व्याघ्रभ्यो भयम् ।

नियम— शुक + उत्पतति = शुक उत्पतति ।

९ । विसर्गके पहिले अ हो, और उसको बाद अ के सिवा कोई स्वर हो, तो उसका लोप होता है ।

नमो देवेभ्य ।

शरीर क्षयति ।

नरा दुर्गाणि तरन्ति ।

भद्राणि पश्यन्ति जना ।

शृङ्गाणि प्रविशन्ति ।

पुत्रेण सह धावति ।

अश्वत्थवतरति योध ।

वनेषु व्याघ्रा भ्रमन्ति ।

हृत्ताडृक्ष पतति शुक ।

बालस्य चित्तं क्षुम्पति ।

अकारान्त पुलिङ्ग शब्द ।

आकाश — आकाश

क्रोध — क्रोप

चन्द्र — चन्द्रमा

दुग् — कृठिनाई

नर — मनुष्य

पाद — पैर

— लड़का

१ पुंस्य , २ आत्मा

पुरुषोत्तम — विष्णु

रथ — रथ

राम — राम

व्याघ्र — व्याघ्र

शुक — तोता

समोह — अज्ञान

हृत् - हृत्

अकारान्त नपुंसक शब्द ।

५। क्रोधात् + भवति = क्रोधाद्भवति—पदके अन्तमें आनेवाला अनुनासिक कि वा अन्त स्थाने सिवा कोई व्यञ्जन अपने वर्गके तृतीय वर्णमें बदल जाता है, यदि उसके बाद कोई स्वर वा घोष वर्ण हो ।

स्व + अर्थ = स्वार्थ , देव + आलयम् = देवालयम् , रथेन + आगच्छति = रथेनागच्छति , कवि + ईश्वर = कवीश्वर , रघु + उत्तम = रघूत्तम , पुष्पेषु + उत्तम = पुष्पेषूत्तम—अधोलिखित नियमके अनुसार होते हैं—

६। जव अ, इ, उ, ऋ ( दृस्व वा दीर्घ ) , तथा लृ के बाद वही दृस्व वा दीर्घ स्वर आते है तो उन दोनों स्वरोंके स्थानमें दीर्घ होता है ।

एष प्रकार अवर्ण + अवर्ण = आ , इवर्ण + इवर्ण = ई , उवर्ण + उवर्ण = ऊ ; ऋवर्ण + ऋवर्ण = ऋ , लृ + लृ = लृ । ( क्योंकि लृ को ऋ नहीं होता, शौर ऋ तथा लृ सवर्ण वा एकसे है । )

व्याघ्रेभ्य + भयम्—यहा पर विसर्गको उ हुश्रा, शौर उसके पहिले अ तथा उ मिलकर अधोलिखित नियमके अनुसार ओ हो गया —

७। मन + रथ = मनोरथ , मन + भाव = मनोभाव , मन + वृत्ति = मनोवृत्ति , मन + हर = मनोहर , ग्राम + अस्ति = ग्रामो अस्ति ( अन्तमें ग्रामोऽस्ति, पाठ ८, नियम ४ )—जव विसर्गके पहिले अ हो ओ उसके बाद अ वा कोई घोष वर्ण हो तो उस विसर्गका उ हो जाता है ।

यह उ तथा उसके पहिला अ मिलकर अधोलिखित नियमके अनुसार ओ हो जाता है ।

८। परम + ईश्वर = परमेश्वर , चन्द्र + उदय = चन्द्रोदय , गङ्गा + उदकम् = गङ्गोदकम्—

जव अ वा आ के बाद इ, उ, ऋ ( दृभ्य क्तिवा दीर्घ ) , वा लृ आते है तो उन दोनोंके स्थानमें इ, उ, ऋ, तथा लृ के गुण अर्थात् ए, ओ, आ, तथा अल् आदेश होते हैं ।

इस प्रकार अवर्ण + इवर्ण = ए , अवर्ण + उवर्ण = ओ ; भय

मनो अपत्यानि मानवा = मनोरपत्यानि मानवा — मनुके लङ्के मानव ( कर्त्ता है ) ।

बहव जन्तव, बहून् जन्तून्, इत्यादि—

विशेष्य तथा विशेषणका लिङ्ग, वचन, तथा विभक्ति एक होती है ।

• जिगी अपि प्रहरति मूर्ख = जिशावपि प्रहरति मूर्ख — मूर्ख लङ्के पर भी प्रहार करता है ।

विपटि धैर्य रक्षति धीरा — धीर लोग विपदमें भी धैर्यको रक्षा करते हैं ।

भानु दिनस्य मणि — भानुर्दिनस्य मणि — सूर्य दिक्का रत्न है ।

मुहृटाम् वचन नातिक्रामन्ति = मुहृडा वचन नातिक्रामन्ति — वे लोग मित्रोंको बातको उल्लङ्घन नहीं करते ।

इस पाठमें इकारान्त, उकारान्त, तथा ञकारान्त शब्द दिये गये हैं ।

हरि—पुलिङ्ग ।

	ए व ।	त्वि लाप	व व ।
प्र	हरि	हरो	हरय
द्वि	हरिस्य	,	हरीन्
तृ	हरिणा	हरिभ्याम्	हरिभि
च	हरये	हरिभ्याम्	हरिभ्य
प	हरे	,	,
प	,	हर्या	हरीणाम
म	हरी	”	हरिणु
म	हरे	हरी	हरय

भानु—पुलिङ्ग ।

प्र	भानु	भानू	भानव
द्वि	भानुस्य	”	भानून्
तृ	भानुणा	भानुभ्याम्	भानुभि

## विशेषण ।

उत्तम—सबसे अच्छा ।

अव्यय ।

सह—साथ ( यह वा इसी अर्थके ) नम—नमस्कार ( यह चतुर्थीके  
दूसरे शब्द जैसे धाकम् सार्द्धम्, साथ प्रयोग किया जाता है  
चतुर्थीको साथ आते हैं )

धातु ।

चत् ( चलति ) भ्वादि—चलना ।  
प्रविश् ( प्रविशति ) तृदादि—घुसना ।  
प्रहृ ( प्रहरति ) भ्वादि—मारना वा प्रहार करना ।  
घृ [ घात्र ] ( घाघति ) भ्वादि—दौडना ।

## पाठ ८ ।

इकारान्त, उकारान्त, तथा इकारान्त शब्द ।

रवि उदय याति—रविकश्य याति—सूर्य उदय को जाता है—सूर्य  
उदित होता है ।

राम कपिभि रावण जयति—राम कपिभी रावण जयति—राम  
बन्दरोसे रावणको जीतता है ।

कावय भूपतीनाम् चरित वर्णयन्ति—कवयो भूपतीना चरित वर्ण-  
यन्ति—कवि लोग राजाओंको चरित्को वर्णन करते हैं ।

गुरवे नम—गुरुको नमस्कार ।

वीर अरीन् जयति—वीरोऽरीञ्जयति—वीर शत्रुओंको जीतता है ।

हरये शक्ति—हरिको जयलक्षकार ।

अग्नये श्राद्धा—अग्निको श्राद्धा ( श्राद्धति ) ।

शिखा वृक्षमारोहत—शे लहने पेड़पर चढ़ते हैं ।

मनोः अपत्यानि मानवा = मनोरपत्यानि मानवा — मनुको लड़के मानव ( कहाते हैं ) ।

वहव जन्तव, वड्डून् जन्तून्, इत्यादि—

विशेष्य तथा विशेषणका लिङ्ग, वचन, तथा विभक्ति एक होती है ।

१६ • शिशोः अपि प्रहरति मूर्ख = शिशोः अपि प्रहरति मूर्ख — मूर्ख लड़के अपि भी प्रहार करता है ।

विपदि धैर्य रक्षन्ति धीरा — धीर लोग विपदमें भी धैर्यकी रक्षा करते हैं ।

भानु दिनस्य मणि — भानुर्दिनस्य मणि — मूर्य्य दिनका रत्न है ।

सुहृदाम् वचन नातिक्रामन्ति = सुहृदा वचन नातिक्रामन्ति — वे लोग मित्रोंको बातको उलझन नहीं करते ।

इस पाठमें इकारान्त, उकारान्त, तथा ऋकारान्त शब्द दिये गये हैं ।

हरि—पुलिङ्ग ।

	ए व ।	ऋ ऌाप	व व ।
प्र	हरि	हरी	हरय
द्वि	हरिम्	”	हरीन्
तृ	हरिया	हरिभ्याम्	हरिभि
च	हरये	हरिभ्याम्	हरिभ्य
प	हरौ	”	”
स	”	हर्यां	हरीभ्याम्
म	हरी	”	हरिषु
न	हरे	हरी	हरय

भानु—पुलिङ्ग ।

	भानु	भानू	भानव
प्र	भानु	भानू	भानव
द्वि	भानुम्	”	भानून्
तृ	भानुता	भानुभ्याम्	भानुभि

च,	भानवे	भानुभ्याम्	भानुभ्या
पं	भानो	”	”
प	”	भान्वो	भानुनाम
स,	भानी	”	भानुषु
स	भानो	भानू	भानव

हरि श्रीर भानु शब्दके रोगोंके मिलानेपर यह मालूम होगा कि इन दोनोंमें एकसा परिवर्तन हुआ है ।

विपद—स्त्रीविद्ग ।

	ए व ।	द्वि व ।	व व ।
प्र	विपद्	विपदो	विपद
द्वि,	विपदसु	”	”
तृ,	विपदा	विपदभ्याम्	विपर्द्गा
च	विपदे	”	विपदभाय
पं	द्वि	”	”
प	”	विपदो	विपदास
स	विपदि	”	विपत्सु
स	विपद	विपदो	विपद

इन तथा इनके पहिले दिये हुए शब्दरूपोंसे ये प्रत्यय सुगमतासे मालूम होते हैं —

	ए व ।	द्वि व ।	व व ।
प्र	सु	श्री	असु
द्वि	श्रम्	”	”
तृ	श्रा	भ्यास	भिसु
च,	ए	”	भ्यसु
पं	श्रसु	”	”

प	अस्	ओस्	आम्
स	इ	”	सु
स	स्	ओ	अस्

१। विपश् + स् = विपद् — व्यञ्जनान्त शब्दोंका प्रत्यय स का लोप हो जाता है ।

अब हम लोग इस पाठमें द्विपे हुए वाक्योंमें सन्धिके नियमोंका विचार करें ।

रवि + उदयम् = रविउदयम्, कपिभि + रावणम् = कपिभिर्  
 रावणम् = कपिभी रावणम्, मनो + श्रपत्यानि = मनोरपत्यानि, भानु +  
 दिनस्य = भानुर्दिनस्य, निर् + रस = नीरस, निर् + रोग = नीरोग —

नियम —

२। जब विसर्गके पहिले अ वा आ के सिया कोई स्वर आवे और उसके बाद कोई स्वर वा घोष व्यञ्जन हो तो वह र् में बदल जाता है ।

३। जब र् के बाद र् हो तो उसका लोप होता है, और उसके पहिलेका स्वर, यदि वह द्रस्व हो, दीर्घमें बदल जाता है ।

वीर + अरौन् = वीरोरौन् —

जब विसर्गके पहिले और वाद अ हो तो वह उ में बदल जाता है ( पाठ ७ नियम ७ ) अ + उ = ओ ( पाठ ७ नियम ८ ) ।

४। जब क्लिषी पदके अन्तमें रहनेवाले ए वा ओ के वाद अ आता है तो वह अ उनमें मिल जाता है, और यह उसका मिलना ऽ चिन्हके दिखाया जाता है, जिसको अबग्रह कहते हैं ।

गुरो + अपि = गुरावपि, नी + अक = नी १ + अक = नायक, पौ + अक = पावक ।

— १। अक ( जो धातुमें जीने वाला एक प्रत्यय है और कताका बोध कराता है ) के पहिले धातुके प्रथम स्वरकी वृद्धि आदेश होता है ।



## नियम —

५। ए, ऐ, ओ, तथा औ के वाङ् जत्र कोई स्वर होता है तो क्तों के अय, अयव, आय, तथा आव् में बदल जाते हैं ।

हरये और विष्णवे—इनके इ तथा उ को गुण होनेके बाद—इस नियम के अनुसार बने हैं ।

हरि + ए = हरि + ए = हरय् + ए = हरये ।

गुरु + ए = गुरु + ए = गुरुव् + ए = गुरुवे ॥

६। गुरौ + अपि = गुरावपि और गुरा अपि—

जब ए, ऐ, ओ, तथा औ, किसी पदके अन्तमें होते हैं और उनके वाङ् कोई स्वर रहता है, तो उनके स्थानमें होनेवाले अय, अयव, आय, तथा आव् के य तथा व का विकल्पसे लोप होता है, और इस प्रकार उनका लोप होनेपर एक साथ आये हुए स्वर आपसमें नहीं मिलते ।

हरि + ए = का केवल हरये होता है, क्योंकि हरि का ए पदके अन्तमें नहीं है ।

अरीन् + जयति = अरीञ्जयति, सत् + चरितम् = सच्चरितम्—  
नियम —

७। जत्र स् वा त्वर्गका कोई वर्ण श वा चवर्गके किसी वर्णके साथ आता है, तो स् को श होता है, और त्वर्गके वर्णको उसी मर्यादा का चवर्गका वर्ण होता है । इस प्रकार अरीञ्जयति में वर्गके पञ्चम स् के स्थानमें वर्गका पञ्चम ज् हुआ, और सच्चरितम् में प्रथम वर्ण त के स्थानमें प्रथम वर्ण च् हुआ ।

८। अतिक्रामन्ति वा अतिक्रामन्ति—क्राम् भ्वादि तथा दिवादि ज्ञानमें है, और उनके उपान्त अ को दीर्घ होता है ।

कुत्रो निधीनामोश्च ।

मातरिरिन्द्रस्य सारथि ।

अराय कुसुमाना गन्ध हरन्ति ।

साधवो विपत्सु धैर्य न त्यजन्ति ।

वाता पापुभिः क्लीडन्ति ।

### सज्ञाशब्द ।

पि ( पु )—आग  
 पय ( न )—सन्तान  
 रि ( पु )—ग्रन्थ  
 लि ( पु )—भ्रमर  
 इन्द्र ( पु )—इन्द्र, धर्मका राजा  
 रथ ( पु )—स्वामी  
 इधि ( पु )—समुद्र  
 उदय ( पु )—उदय, उन्नति  
 कपि ( पु )—उन्दर  
 कधि ( पु )—कधि  
 कुत्रे ( पु )—कुत्रे, धनका प्रभु  
 कुसुम ( न )—फूल  
 गन्ध ( पु )—सुगन्ध  
 गुरु ( पु )—श्रद्धापक  
 चरित ( न )—चरितु  
 प्राण ( पु )—प्राणी  
 दिन ( न )—दिन  
 धीर ( प )—गम्भीर पुरुष

धैर्य ( न )—धीरज  
 निधि ( पु )—खजाना  
 पापु ( पु )—धूल  
 भूपति ( पु )—राजा  
 मानु ( पु )—सूर्य  
 सथि ( पु )—रथ  
 मनु ( पु )—मनु  
 मातलि ( पु )—इन्द्रका सारथि  
 मानव ( पु )—मनुष्य  
 रवि ( पु )—सूर्य  
 रावण ( पु )—रावण  
 वचन ( न )—वचन  
 विपद् ( स्त्री )—विपद्  
 शिशु ( पु )—राहुका  
 साधु ( पु )—ध्यान  
 सारथि ( पु )—सारथि  
 सुहृद् ( पु )—मित्र  
 हरि ( पु )—१. कृष्ण, २. किसी  
 पुरुषका नाम

## वृध्—भ्वा आत्मन ।

	ए व ।	द्वि व ।	व व ।
प्र पु	वधन्ते	वधन्ते	वधन्ते
म पु	वधन्म	वधन्से	वधन्से
उ पु	वधे	वधन्वहे	वधन्महे

## प्रत्यय ( परस्मै )

प्र पु	ति	तस	श्रन्ति
म पु	मि	यस्	य
उ पु	मि	वस	मस

## आत्मने ।

प्र पु	ते	इते	श्रन्ते
म पु	से	इषे	घ
उ पु	ए	वहे	महे

## वर्धावहे—वर्धामहे—वर्धे—वधन्ते—

१ । वहे और महे को पहिले अ को दीर्घ होता है जैसे वष् श्री मस को पहिले अ को, और श्रन्ति को पहिले अ की तरह ए और श्रन्ते को पहिले अ का लोप होता है ।

देखना चाहिये कि सब आत्मनेपद प्रत्यय ए मे समाप्त होते हैं ।

आकारान्त शब्द भी इस पाठमें लिखे गये हैं ।

## रमा—( स्त्री ) ।

	ए व ।	द्वि व ।	व व ।
प्र	रमा	रमं	रमा ।
द्वि	रमाम	”	रमा
तृ	रमया	रमाभ्याम्	रमाभि

	व ।	द्वि व ।	ब व ।
च	रमायै	रमाभ्याम्	रमाभ्य
प	रमाया	"	"
ष	"	रमयां	रमाभ्याम्
स	रमायाम्	"	रमाभ्यु
स	रमे	रमे	रमा

हरन्ति + इति = हरन्त्यलये, प्रति + उत्तरम् = प्रायुत्तरम् ; मधु + परि = मध्वरि ।

२। अन्तर्गत, उद्यम, ऋवर्ण, श्रौर लृ के बाद उनसे भिन्न प्रकारका अक्षर (अक्षर) आता है तो ये क्रमसे य्, व्, र्, श्रौर ल् में बदल जाते हैं ।

विडाला + उडयति = विडालास्ताडयति ।—

३। अक्षरों के अन्तर्गत न् के बाद च, छ, त्, प्, ट्, वा ठ हो तो उसको अक्षरों में या प्रसर्ग दोनों होते हैं ।

४। अक्षरों के बाद च् वा छ् हो तो वह श् में, जब उसके बाद त् वा थ् हो तो स् में, श्रौर जब उसके बाद ट् वा ठ् हो तो प् में बदल जाता है ।

अक्षरों के बाद, इष्टु + अभ्यति, लभेते + अतु यद्वा सन्धिकार्य नही हुआ ।

यम —

आकारान्त, ऊकारान्त, वा एकारान्त सच्चा किवा क्रियावाचक शब्दों के अन्तिम स्वर उनके आगेके स्वरके साथ नहीं मिलते, आगेके स्वरसे न मिलने वाले ईं, ऊं, श्रौर ए प्रसृष्ट वाहते हैं ।

उद् + डयते = उडुयते ।

नियम —

६। लघु ष् वा तद्वर्गका कोई वर्ण आता है तो ष् को ष् होता है और तद्वर्गका वर्णको उसी वर्ग का टद्वर्ग का वर्ण होता है ( पाठ ८ नियम ७ ) नियमसे यह पता चलता है ) उद्भूतमें तृतीय वर्ण ष को तृतीय वर्णका वर्ण होता है ।

हरिकृतमुक्त — उक्तमुक्त विशेषण है । इसमें हरिकृत शब्द, वचन, विभक्ति लगी है ।

कनयोर्विद्याह चिन्तयामि ।

श्रातपात् त्रायत श्रातपत्रम्

नराणा तृष्णा न शाम्यति ।

लोपामुद्राऽगस्त्यस्य भार्या ।

पङ्के जायते पङ्कजम् ।

मन्त्राशब्द ।

१ ( स्त्री )—लड़की  
 -नका ( स्त्री )—लड़की  
 गल ( पु )—विलार  
 र्था ( स्त्री )—पत्नी  
 र ( पु )—मोर  
 १ ( स्त्री )—लक्ष्मी, विष्णुकी स्त्री  
 १ ( नं )—सुन्दरता  
 १पासुद्रा ( स्त्री ) श्रमार्थकी भार्या

वत्सा ( स्त्री )—प्रिय बालिका  
 वर्षा ( स्त्री )—बरसात  
 ( यह शब्द सर्वदा बहुवचन ही में प्रयोग किया जाता है )  
 विज्ञ ( पु )—विज्ञ  
 विद्या ( स्त्री )—ज्ञान  
 विवाह ( पु )—विवाह  
 सीता ( स्त्री )—नीता

विशेषण ।

अधिक—अधिक

उत्सुक—उत्सुक

श्रवण ।

प्रद्य—श्राज

नाम—सचमुच

इय—तरह, सदृश,

सायम्—सायङ्काल

धातु ।

श्रम् ( श्रयति ) ( दिशादि परस्मै )—

भाष् ( भाषते ) ( भ्वा आत्म )—

फँकना

बोलना

वृ + डौ ( वृहो—वृहयते )

रम् ( रमत ) ( भ्वा आत्म )—खेलना

( मजा, आत्म, )—पुडना

लम् ( लभते ) ( भ्वा आत्म )—पाना

चिन्त् ( चिन्तयति ) ( चरादि परस्मै )—

वृत् ( वर्तते ) ( म्या आत्म )—होना

सोचना

वृष् ( वषत ) ( भ्वा आत्म )—उरना

वृ ( व्रापते ) ( म्या आत्म )—

शुभ् ( शाभत ) ( भ्वा आत्म )—

उपना।

शोभना

वृ + ग् ( वृग्वृत्ति ) ( भ्वा परस्मै )

—निकलना



## पाठ १० ।

## सर्वनाम ।

सर्वे स्वार्थं समीहते—सर्वस्वार्थं समीहते—सर्व अपना स्वार्थं चाहता है ।

सर्वेभ्यः देवेभ्यो नमः = सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः —सब देवोंको नमस्कार ।  
सर्वासु कलामु चतुर एष बालः = सर्वासु कलामु चतुर एष बालः —  
यह लड़का सब कलाओंमें चतुर है ।

कस्य एष पुत्रः = कस्येष पुत्रः —यह लड़का किसका है ?  
का वार्ता वर्तते ?—क्या खबर है ?

अन्य क अपि एषः = अन्य कोऽप्येषः —यह कोई दूसरा ही है ।

किम् अपि एषा कथयति = किमप्येषा कथयति—यह कुछ भी कहती है ।

भूपते ! एषा एव सा ऊर्मिका = भूपते ! एषैव सोर्मिका—सहाराज,  
यही वह अगूठी है ।

के एते कथ्ये—ये दो लड़कियाँ कौन हैं ? ( को और एते का स्व  
प्रश्न है, इस लिये सन्धि नहीं हुई ) ।

तेषाम् विद्या न विद्यते = तेषां विद्या न विद्यते—उनको ज्ञान  
नहीं है ।

सर्व—( पु )

ए	व	द्वि	व
प	सर्वं	सर्वो	
द्वि	सर्वम्	”	
तृ	सर्वेषु	सर्वभ्याम्	
च	सर्वस्मै	”	

	ए व	हि व	व व
प	सर्वस्मात्	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्य
प	सर्वस्य	सर्वयो	सर्वेषाम्
स	सर्वस्मिन्	„	सर्वेषु

सर्व ( न )

र व	ए व	हि व	व व
हि	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि

और सब रूप प लिङ्गके समान ।

सब सर्वनाम है । इसका स्त्रीलिङ्गका रूप सर्वा होता है । राम,

रमा, तथा फल शब्दके समान इसके तीनों लिङ्गोंमें रूप होते हैं ।

केवल अघोलिखित रूपोंमें विशेष है ।

	पुं	स्त्री	न
प्र ज, व	सर्वे		
व ए व	सर्वस्मै	सर्वस्य	पु लिङ्ग के समान
प „	सर्वस्मात्	सर्वेष्वा ( प ए, व, भी )	
प व व.	सर्वेषाम्	सर्वाणाम्	
स ए व	सर्वस्मिन्	सर्वेषाम्	

परस्मै, अर्धेषाम्, अवक्—पर (दूसरा), अन्य (दूसरा), और विश्व (सब) सर्वनाम हैं, और इनके रूप सर्वके समान होते हैं ।

तद्—( पु. ) ।

	ए व	हि व	व व,
प	सः	तौ	ते
हि	तम्	„	तान्
सृ	तेन	ताभ्याम्	तै



सैषा परा क्षोडि स्नेहस्य ।  
 का येषा कर्तते ।  
 प्रम्य कैषा ।

शब्दसंग्रह ।

सर्वनाम ।

अन्य—दूसरा

एतद्—यह

किम्—कौन ? क्या ?

तद्—वह

यद्—जो

सर्व—सब

सहाशब्द ।

श्रम्या ( स्त्री ) ( स ए, घ )

हे श्रम्य )—मा

कर्मिका ( स्त्री )—अगूठी

फला ( स्त्री )—कटा

फानन ( म )—जगल

क्षोडि—( स्त्री )—सोमा

( परा क्षोडि = चरम सोमा )

देवता ( स्त्री )—देवी

पुत्र ( पु )—लड़का

वार्ता—( स्त्री )—खबर

वैला—( स्त्री )—समय

स्नेह ( पु )—प्रेम

स्वार्य ( पुं )—अपना मतलब ।

विशेषण

चतुर—चतुर

पर—बड़ा

अध्यय

एव—निश्चयसे, सबसुं

धातु ।

मस् ( नमति ) ( म्ना पर )—प्रणाम करना ।

त्रिद् ( विद्यते ) ( दि आ )—होना ।

अस् + ईद् ( समीहते ) ( म्धा आ )—चाहना ।

पाठ ११ ।

द्वन्द्व और तत्पुरुष , ईकारान्त तथा ऊकारान्त शब्द ।

अर्ण्या पञ्चवटी—क्या यह पञ्चवटी है ?

अर्ण्या गोदावरी—क्या यह गोदावरी है ?

अर्ण्या तत् तपोवनम्—क्या यह तपोवन है ?

सा हि कुलपतिः प्राणा —वह तो कुलपतिकी जीवन है ।

लक्ष्मीनारायणार्था नमः—लक्ष्मी और नारायणकी प्रणाम ।

विद्यार्थभयेन नीचा कार्य न प्रारभन्ते—विद्यार्थी भयसे नीचे लोग कार्यको प्रारम्भ नहीं करते ।

उत्तमजना कदापि धर्म न त्यजन्ति—अच्छे लोग कभी धर्मका नहीं छोड़ते ।

पञ्चपात्रे पूजासामग्री व्रतते—पञ्चपात्रमें ( पाँच पात्रोंका समुदाय ) पूजाका सामान है ।

सरस्वत्या, जल पावनम् = सरस्वत्या जल पावनम्—सरस्वतीका जल पवित्र है ।

कुर्वे स्वनगर्याम् प्र( स )लकाया वसति—कुर्वे अपनी नगरी अलकामें रहता है ।

पत्न्यै कुर्वति माणवक —माणवक अपनी स्त्री पर कोप करता है , ( कुप् चतुर्थीसे षाय आता है ) ।

शर्या, तटे शशित्तापस प्रतिवसति = शर्यातटें शशित्तापस प्रतिवसति—शर्याके तटपर कोई तपस्थी रहता है ।

श्वशा, आत्माननुसरति वधुः—श्वशा आत्माननुसरति वधुः—वधु सासनी आज्ञाका अनुसरण करती है ।

\* विद्, चन, और अपि—ये अनिश्चित अर्थमें किम् शब्दके पु, ला, तथा १५ सके द्विद्वये द्वीके साय पात्रे जाते हैं—कपिसु, कनिथिसु, कनिथन, कावपि, पितृ, तथादि ।

इस पाठमें ईकारान्त तथा ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दोंके रूप लिखे जाये हैं ।

### नदी ( स्त्री ) ।

	ए व.	द्वि व	व, व
प्र,	नदी	नद्यौ	नद्य
द्वि	नदीम्	"	नदी
पृ	नद्या	नदीभ्याम्	नदीभि
च	नद्यौ	"	नदीभ्य
प	नद्या	"	"
प	"	नद्यौ	नदीनाम्
स	नद्याम्	"	नदीषु
स	नदि	नद्यौ	नद्य

### वधू ( स्त्री ) ।

	ए व	द्वि व	व व.
प्र	वधू	वध्वौ	वध्व
द्वि	वधूम्	"	वधू
पृ.	वध्या	वधूभ्याम्	वधूभि
च.	वध्वौ	"	वधूभ्य
प	वध्या	"	"
प	"	वध्वौ	वधूनाम्
स.	वध्याम्	"	वधूषु
स	वधु	वध्वौ	वध्व

नदी तथा वधूओं के रूप एकसे हैं । परन्तु वधूओं के प्रथमाके एकवचन-रूप रचना है, और नदीके प्र ए व में नहीं रहता ।

[८] लक्ष्मीनारायणाभ्याम्, कुलपते, पञ्चधटौ, तपोवनम्, विद्यभयेन, और  
रामलना ये सब समास हैं ।

दो वा अधिक पद जब एक साथ मिले रहते हैं तो वह समास  
शता है । प्रायः अन्तिम पदको छोड़ और सब पदोंकी द्विभक्तियोंका  
प हो जाता है ।

हम लोग अपनी इच्छामें पदोंको छोड़कर समास नहीं बना सकते ।  
इतको ध्यानकरके हम विषयपर अतिरूढ नियम दिये हैं ।

प्रधानतः समास चार प्रकारके होते हैं — द्वन्द्व, तत्पुरुष, बहुव्रीहि,  
शयीभाव । इनमें पहिले दो प्रकारके समासोंका वर्णन हम पाठमें  
गया है ।

रामलक्ष्मणौ ( राम और लक्ष्मण ), रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्नान्ना ( राम,  
लक्ष्मण, भरत, और शत्रुघ्न ), भोमार्जुनौ ( भौम, और अर्जुन ), लक्ष्मी-  
नारायणौ ( लक्ष्मी, और नारायण ), पार्वतीपरमेश्वरौ ( पार्वती, और  
शिवर ), उमामहेश्वरौ ( उमा, और महेश्वर ) ये सब द्वन्द्व समास हैं ।

१ । द्वन्द्व समास वह है जिसमें सब ( दो वा अधिक ) पदोंके अर्थो-  
रक्षकी प्रधानता रहती है । जब वह समास अलग किया जाता है तो  
ता प्रत्येक पद स्व से जोड़ा जाता है । 'च' का अर्थ 'और' है ।

यदि दो पदोंका समास हो तो उससे द्विवचन आता है और अधिक  
का हो तो बहुवचन, अन्तिम पदका लिङ्ग ही समासका लिङ्ग होता  
द्वन्द्वका अर्थ है जोड़, द्वन्द्व समासमें प्रति पदके अर्थकी रक्षकी  
प्रधानता रहती है ।

छोटे शब्दका बड़े शब्दसे पहिले प्रयोग होता है । भाइयोंके नाम  
: बड़ेके नामसे प्रयुक्त होते हैं ।

कुलपति — कुलका स्वामी, प्रणीतत्पुरुष, तत्पुरुष — उसका  
मौ ; प्रणीतत्पुरुष, तपोवनम् ( तपस् + वनम् = तप उ वनम्, =

तपोधनम्) — तपका धन, पठ्ठीतत्पुरुष, विघ्नभयम् — विघ्नोसे  
पञ्चमीतत्पुरुष —

२। तत्पुरुष वच समास है जिसका पहिला पद प्रथमाको है और किसी विभक्तिको अर्थमें हो और इस प्रकार वच दूसरे पदसे जाय ।

‘तत्पुरुष’ यह शब्द भी तत्पुरुष समास है, और इसका अर्थ है उसका आदमी, और इस प्रकार वच तत्पुरुष समासको बताता है ।

तत्पुरुष शब्दका अर्थ — ‘वच आदमी’ भी है । इसमें पहिला विशेषण है और दूसरा विशेष्य —

विशेषण तथा विशेष्यका समास भी एक प्रकारका तत्पुरुष समासको कर्मधारय कहते हैं ।

उत्तमजना — कर्मधारय समास है ।

३। कर्मधारय — कर्म माने क्रिया । इस समासके सब पद एक ही अन्वितहोसकेते हैं, उत्तमजना गच्छन्ति और उत्तमजनान् पूजयामि — में तथा जन ये दोनों एक ही क्रियामें अन्वित हैं । पहिलेमें वे कर्ता हैं दूसरेमें कर्म । इस प्रकार कर्मधारय समासमें पद समानाधिकरण है । पञ्चपात्रम् — पाच पात्रोंका समुदाय, पञ्चघटो — पांच घटोंका समुदाय, — ये द्विगु समास हैं ।

४। द्विगु कर्मधारयका एक भेद है । यदि प्रथम पद सख्यावाचक और द्वितीय पद सत्त्वावाचक हो तो वच द्विगु समास है । यह समास (समूह) को अर्थमें नपुंसकको एकवचनमें प्रयोग किया जाता है । कर्त्तों द्विगु समासके अन्तका अर्थ ही जाता है ।

द्विगु शब्द इस समासको बताता है क्योंकि इसका पहिल पद द्वि यह सख्यावाचक है और दूसरा पद गु ( गो — गाय, शंभू — शम्भू ) सत्त्वावाचक है ।

विशेषण ।

उत्तम—सउ से अख्या	पावन—पवित्र शुद्ध करनेवाला
रीच—नीचा, अधम	वाल—लड़का
पर—(स्त्री परा)	अष्टु—उत्तम
बड़ा (परा सीमा=धरम	भ्य—अपना (भवना) *
सीमा)	

घातु ।

कुप् ( कुपति ) ( दिघादि पर )—क्रोध करना । ( चतुर्थीके साथ आता है ) ।

प्र + आ + रम् ( प्रारभते ) ( म्या आत्म )—प्रारम्भ करना ।

सम् + गम् ( सङ्गच्छते )—संगम ( म्या आत्म ) मिलना ।

सद् ( सहते ) ( म्या आत्म )—सहना

मिच् [ मिज् ] ( सिज्ति ) ( तुदादि पर )—सौचना ।

व् ( स्ववति ) ( म्या पर )—बहना ।

पाठ १२ ।

बहुव्रीहि और अर्थयोभाव , सकारान्तशब्द , भूतकृदन्त ।

राम मसीत सहलक्ष्मणी वन गत —राम सीता और लक्ष्मणके साथ  
को गया ।

अग्निमारुटी देवदत्त —देवदत्त घोड़ेपर चढ़ा ।

\* न उक्त मानीत है । जब इसका अर्थ अपना है । जब इसका अर्थ मन्त्र वा पाठ है तब अग्नि मानीत नहीं है ।

## सञ्ज्ञाशब्द ।

अधिप ( पु )—स्वामी  
 अलका ( स्त्री )—कुबेरकी नगरी  
 आञ्जा ( स्त्री )—आदेश  
 हृत्क्षा ( स्त्री )—चाह  
 कार्य ( न )—काम  
 कुबेर ( पु )—कुबेर  
 कुमारी ( स्त्री )—अविवाहित कन्या  
 कुलपति ( पु ) १ कुलना प्रधान  
 पुरुष , २ गुप्त लो १०,०००  
 शिष्योंको पढ़ाता और पोषण  
 करता है ।

गङ्गा ( स्त्री )—गङ्गा  
 गर्भिणी ( स्त्री )—गर्भिणी  
 गोदावरी ( स्त्री )—गोदावरी  
 चित्र ( न )—तस्वीर  
 छल ( न )—पानी  
 जट ( पु, न )—किनारा  
 तपोवन ( न )—तपोवन  
 तापस ( पु )—तपस्वी  
 द्रोहद ( पु, न )—गर्भिणीका  
 मनोरथ  
 नगरी ( स्त्री )—नगरी  
 नागयण ( पु )—विष्णु  
 नैपुण्य ( न )—चातुर्य

५ ( न )—पाच प्रातोंका समूह

पञ्चवटी ( स्त्री )—दण्डकारण  
 एक भाग, जिसमें पाँच बटे प  
 पत्नी ( स्त्री )—भाया  
 पादप ( पु )—पेड़  
 पूजा ( स्त्री )—पूजा  
 प्रदोष ( पु )—सायङ्काल  
 प्रयाग ( पु )—प्रयाग  
 प्राण ( पु )—(सर्वदा व व न  
 प्रयोग होता है )—प्राण  
 भङ्ग ( पु )—सलङ्घन  
 भव ( पु )—शिव  
 भवानौ ( स्त्री )—पार्वती  
 माणवक ( पु )—किसो का नाम  
 मुख ( न )—१ मुँह, २ धारम  
 यमुना ( स्त्री )—यमुना  
 रत्नी ( स्त्री )—रात  
 रुद्र ( पु )—शिव  
 रुद्रायी ( स्त्री )—पार्वती  
 लक्ष्मी ( स्त्री )—लक्ष्मी  
 वधू ( स्त्री )—स्त्री, पुत्रवधू  
 शरयू ( स्त्री )—शरयू नदी  
 श्वश्रू ( स्त्री )—सास  
 सरस्वती ( स्त्री )—हरावती नदी  
 सामग्री ( स्त्री )—सामान  
 सीमा ( स्त्री )—सीमा, हर ।

विशेषण ।

उत्तम—सब से प्रच्छा	पावन—पवित्र गृह करनेवाला
नीच—नीचा, अधम	वाल—लड़का
पर—(स्त्री परा)	श्रेष्ठ—उत्तम
बड़ा (परा सीमा=चरम	स्त्र—श्रपना (भर्तना) *
सीमा)	

धातु ।

कुप् ( कुप्यति ) ( दिवादि पर )—कोप करना । ( अनुर्घोके माप आता है ) ।

प्र + प्रा + रम् ( प्रारभते ) ( भ्या आत्म )—आरम्भ करना ।

सम् + गम् ( सङ्गच्छते )—सगम् ( भ्या आत्म ) मिलना ।

सद् ( सद्दते ) ( भ्या आत्म )—सदना

सिच् [ सिज् ] ( सिज्यति ) ( तुदादि पर )—सौचना ।

स्त्र ( स्त्रवति ) ( भ्या पर )—वहना ।

पाठ १२ ।

बहुव्रीहि और अर्थयोभाव , सकारान्त उच्च , भूतकृदन्त ।

राम ससीत सहलक्ष्मणी वन गत—राम सीता और लक्ष्मणके साथ , जो गया ।

अग्यभारुढो देवः—देवदत्त घोड़ेपर चढ़ा ।

\* यह शब्द राम के जव गंगा अथ अयना । जव इसका अर्थ मन्त्री व ५, म नि ५ व म व राम नहीं है ।



क कोऽनु भो । कुन आगतोऽमि ।—यद्य कौन है जो ? तु  
आया है ?

प्रतिदिन संध्यामाचरति—वह प्रतिदिन संध्यावादन करता है ।

तपोधनाना तप एव परम धनम्—मुनियोंका तपही बड़ा धन है ।

ऋषयो जितेन्द्रिया जितक्रोधाय—ऋषि लोग वे हैं  
इन्द्रियोंको तथा क्रोधको जीता ।

च तथा वा भाषाकी तरह दो शब्दों अथ वा दो वाक्योंके बीचमें  
आता । उनको प्रयोगपर ध्यान दो । रामश्च लक्ष्मणश्च वा रामो लक्ष्मणो वा,  
रामो वा लक्ष्मणो वा, अथ वा रामो लक्ष्मणो वा, न त्वया साधु  
न चानेन ।

परोपदेशवेलाया सर्वोऽपि पण्डिता भवन्ति—दूसरोंको उपदेश देने  
समय सभी पण्डित होते हैं ।

अथो गृहस्थस्य रसणीयता—वाह ! इस घरकी सुन्दरता ।

चन्द्रमा ओषधीना नामक—चन्द्रमा ओषधियाँका स्वामी है ।

पयोना पयांसि वर्णन्ति—मेह पानी बरसते हैं ।

कुलूहलेन तेषा चेतसि तच्च पदम्—कौतुकने उनको हृदयमें स्थान पाया

इस पाठमें बहुव्रीहि तथा अव्ययीभावका वर्णन किया गया है ।

बहुव्रीहि—यदि इस शब्दको बहु व्रीहि ( बहुत धान ) ऐसा लिखा

जाय, तो यह कर्मधारय रूपास है, क्योंकि यह विशेषण तथा विशेष्य

दनाया गया है । पर यदि इसका अर्थ 'वह जिस को पास बहुत धान है

( बहु व्रीहि यस्य ) ऐसा लिया जाय, तो यह बहुव्रीहि रूपास है । इस

प्रकार यह शब्द अपने लक्षणको बताता है ।

जितेन्द्रिय—वह जिसने अपने इन्द्रियोंको जीता है ।

जितक्रोध—वह जिसने अपने क्रोधको जीता है ।

योताम्बर—वह जिसका वस्त्र पीला है, विष्णु ।

ये सब बहुव्रीहिके उदाहरण हैं ।

बहुव्रीहि और अव्ययीभाव, सकारान्त शब्द, भूतकृषन्त । ४५

१। विशेषण तथा विशेष्यका समास बहुव्रीहि समास है, यदि वचकसौ दूसरेका विशेषण हो। इसका विग्रह दिखानेमें यत् शब्दका योग करना आवश्यक है, जो प्रथमाको छोड़ और चाह सिध विभक्तिमें आ सकता है।

जितेन्द्रिय ऋषि — इसमें जित विशेषण है और इन्द्रिय विशेष्य, और यह समस्त पद अन्त पदार्थ ऋषिका विशेषण है। इसका विग्रह यों होता है—जितानि इन्द्रियाणि देन स, पीतमम्बर यथा स।

सहलदमय और ससीत बहुव्रीहि समास है—

२। वच समास भी, जिसमें पहिला पद वच है, बहुव्रीहि है। वच विकल्पसे य में बदल जाता है। ससीत राम — सीतया वच वर्तते इति ससीत —

३। यदि बहुव्रीहिका अन्तिस पद आकारान्त स्त्रीलिङ्ग हो और समस्तपद पुलिङ्ग वा नपुंसक लिङ्गका हो तो उस 'आ' को 'अ' ही जाता है।

प्रतिदिनम्—प्रति अव्यय है, दिन अव्यय नहीं है, पर वच समस्तपद अव्यय है, दिने दिने इति प्रतिदिनम् (हर दिन) —

४। यदि समासका प्रथम पद अव्यय हो और यदि वच समस्तपद भी अव्यय हो, तो इसका नाम अव्ययीभाव समास है।

अव्ययीभाव शब्दका अर्थ है—जो अव्यय नहीं है, अव्यय ही जाता है। दिनम् सन्नाशब्द है, पर प्रतिदिनम् में वच अव्यय है।

५। अव्ययीभाव समासका रूप प्रायः नपुंसक शब्दों द्वितीयाक्षे एकवचनको समास होता है।

क कोऽनु भो । कुत आगतोऽसि ।—यद्य कौन है जो ने तू कहा  
आया है ?

प्रतिदिन सन्ध्यासाचरति—वह प्रतिदिन सन्ध्यावादन करता है ।

तपोधनाना तप एव परम धनम्—मुनियोंका तपही बड़ा धन है ।

अपयो जितेन्द्रिया जितक्रोधाश्च—ऋषि लोग वे हैं जिन्होंने  
इन्द्रियोंको तथा क्रोधको जीता ।

च तथा वा भाषाकी तरह दो शब्दों अथ वा दो वाक्योंके बीचमें नहीं  
आता । उनके प्रयोगपर ध्यान दो । रामश्च लक्ष्मणश्च वा रामो लक्ष्मणश्च  
रामो वा लक्ष्मणो वा, अथ वा रामो लक्ष्मणो वा, न त्वया साधु  
न जानेन ।

परोपदेशवेलायां सर्वेऽपि पण्डिता भवन्ति—दूसरोंको उपदेश देने  
समय सभी पण्डित होते हैं ।

अद्यो महस्यैतस्य रमणीयता—वाच । इस घरकी सुन्दरता ।

चन्द्रमा ओषधीना नाशक —चन्द्रमा ओषधियोंका स्वामी है ।

पयोदा पयामि वर्षन्ति—मेह पानी बरसते हैं ।

कुतूहलेन तेषा चेतसि ताम्य पदम्—कौतुकने उनके हृदयमें स्थानपाया ।

इस पाठमें बहुव्रीहि तथा अव्ययीभावका वर्णन किया गया है ।

बहुव्रीहि—यदि इस शब्दको बहु व्रीहि ( बहुत धान ) रेखा लिय  
जाय, तो यह कर्मधारय समास है, क्योंकि यह विशेषण तथा विशेष्य  
दनाया गया है । पर यदि इसका अर्थ 'वह जिस को पास बहुत धान है  
( बहु व्रीहि यस्य ) रेखा लिया जाय, तो यह बहुव्रीहि समास है । इस  
प्रकार यह शब्द अपने लक्षणको बताता है ।

जितेन्द्रिय —वह जिसने अपने इन्द्रियोंको जीता है ।

जितक्रोध —वह जिसने अपने क्रोधको जीता है ।

पीताम्बर —वह जिसका वस्त्र पीला है, विष्णु ।

ने सब बहुव्रीहिसे उदाहरण है ।

बहुव्रीहि और अव्ययीभाव, सकारान्त शब्द, भूतकृन्त । ४५

१। विशेषण तथा विशेष्यका समास बहुव्रीहि समास है, यदि वचकसौ भूसरेका विशेषण हो। इसका विग्रह दिखानेमें यत् शब्दका योग करना आवश्यक है, जो प्रथमाको छोड़ और चाहे लिस विभक्तिमें प्रा सकता है।

चित्तेन्द्रिय ऋषि — इसमें लित विशेषण है और इन्द्रिय विशेष्य, और वचक सप्तम पद अन्य पदार्थ ऋषिका विशेषण है। इसका विग्रह यों होता है—चितानि इन्द्रियाणि देव स, पौतमन्वर यथा स।

सहस्रदमय और ससीत बहुव्रीहि समास है—

२। वच समास भी, जिसमें पहिला पद सह है, बहुव्रीहि है। सह विकल्पसे स में बदल जाता है। ससीत राम—सीतया सह यतंते क्षति ससीत —

३। यदि बहुव्रीहिका अन्तिम पद सकारान्त स्त्रीलिङ्ग हो और समस्यपद पुलिङ्ग वा नपुंसक लिङ्गका हो तो उस 'आ' को 'अ' हो जाता है।

प्रतिदिनम्—प्रति अव्यय है, दिन अव्यय नहीं है, पर सह समस्यपद अव्यय है, दिने दिने इति प्रतिदिनम् (हर दिन)—

४। यदि समासका प्रथम पद अव्यय हो और यदि वच समस्यपद भी अव्यय हो, तो इसका नाम अव्ययीभाव समास है।

अव्ययीभाव शब्दका अर्थ है—जो अव्यय नहीं है, अव्यय हो जाता है। दिनम् सत्ताञ्ज है, पर प्रतिदिनम् में वच अव्यय है।

५। अव्ययीभाव समासका रूप प्रायः नपुंसक शब्दके द्वितीयाधेयक्यञ्चम्भो समास होता है।

अस्—अदादि, परस्मै वर्तमान काल ।

	ए व	द्वि ष	त्र य
प्र पु	अस्ति	स्त	सन्ति
म पु	असि	स्य	स्य
उ पु	अस्ति	स्य	स्य

मकारान्त शब्दोके पुलिङ्ग तथा मपुसक लिङ्गोके ष्य भी इत्येतेषां नं द्विषे गये द्वे ।

चन्द्रमस्—पु ।

	ए व	द्वि ष	त्र य
प्र	चन्द्रमा	चन्द्रमसो	चन्द्रमस
द्वि	चन्द्रमसम्	"	"
तृ	चन्द्रमसा	चन्द्रमोभ्याम्	चन्द्रमोभि
च	चन्द्रमसे	चन्द्रमोभ्याम्	चन्द्रमोभ्य
प	चन्द्रमस	"	"
प	,	चन्द्रमसो	चन्द्रमसाम्
म	चन्द्रमसि	"	चन्द्रमसु-चन्द्र
म	चन्द्रसा	चन्द्रमसो	चन्द्रमस

पयस—न ।

	ए व	द्वि ष	त्र य
प्र	पयस	पयसो	पयांसि
द्वि	"	"	"
तृ	पयसा	पयोभ्याम्	पयोभि
च	पयसे	,	पयोभ्य
प	पयस	"	"
प	पयस	पयसो	पयसाम्
म	पयांसि	"	पयस-पयस
म	पयस	पयसो	पयांसि

बहुव्रीहि और अव्ययीभाव, सकारान्त शब्द, भूतकृदन्त । ४७

ये रूप सन्धिके नियमके अनुसार शब्दोंके आगे प्रत्यय जोड़नेसे बनते हैं। पुलिङ्ग के प्रथमाके एकवचनमें उपात्त्य अ को दीर्घ होता है।

इं १पुसक शब्दके प्रथमा, द्वितीया, तथा सम्बोधनके द्विवचनका प्रत्यय है, और इ नपु० शब्दके उन्ही विभक्तियोंके बहुवचनका प्रत्यय है। आदि के तरफ ध्यान दो।

६। अनुनासिक अथवा अन्तःस्व व्यञ्जनोंको छोड़ और किसी व्यञ्जनमें समाप्त होनेवाले २पुसक शब्दके प्रथमा, द्वितीया, तथा सम्बोधन-अन्तिम व्यञ्जनके पूर्व न् आता है, जब इ आगे रहता है।

जब इस न् के बाद अ, इ, उ, या ए होता है, इसको अनुस्वार होता है, और जब और कोई व्यञ्जन आगे रहता है, यह न् इसके आगे होनेवाले व्यञ्जनके वर्गके अनुनासिकमें बदल जाता है। सकारान्त शब्द या मध्य शब्दमें इस अनुनासिकके पहिले रहनेवाले स्वरको दीर्घ होता है।

सप्रत्ययान्त तथा कृत्यप्रत्ययान्त शब्दोंके रूप भी इस पाठमें दिखाये हैं। ऋकृतमें सप्रत्ययान्तका बहुत प्रयोग होता है। वे बहुधा नद्यतन भूतकी लगभ प्रयोग किये जाते हैं।

भूतकृदन्त—भूत यह श-द स्वयं भूतकृदन्त है, और इस ज्ञातको दिखाता है कि धातुसे भूतकृदन्त किस प्रकार बनाया जाता है।

७। भू + त = भूत । त भूतकृदन्तका प्रत्यय है।

गम्	गत	} इस धातुओंमें अन्तिम म् का पाप हुआ है।
नम्	नत	
रम्	रत	

भू	भूत	ये सब रूप एक ही हैं । लुभ् + त = लुभ् + ध = लुब्ध् + ध = लुब्ध् - त - जव किसी वर्गका चतुर्थ के उसके पहिले रहता है - ध जो जाता है, और उसके पहिले रहनेवाला वर्गचतुर्थ वर्गके तृतीयवर्गमें बदल जाता है । रुह् + त = रुह् + त = रुह् + ध = रुह् + ठ (इस ध् भूवन्ध ठ् में बदल गया कौं कि यह ठ् के समित्ताया गया) = रुठ्, पर तृट् में ऋ को दीर्घना हुआ - ऊव् अनुनासिक वा अन्त स्व वर्ण के सिवा श्रे कोइ व्यञ्जन प्रागे रहता है, धातु के अन्तिम ह् ठ् होता है, ठ् जव प्रागे रहता है तो ह् का लं होता है, और ऋ को छोड़ कर उसके पहिले रहनेवाले स्वरको, य धातु ह्रस्व हो, दीर्घ होता है ।
जि	जित	
नी	नीत	
लुभ्	लुब्ध	
रम्	रब्ध	
रम्	रब्ध	
लुम्	लुब्ध	
कुम्	कुब्ध	
सुम्	सुब्ध	
वृष्	वृष्ठ	

रमणीय कैसे बना है इधर ध्यान दो ।

८ । गम्—गन्तव्य, गमनीय, गम्य ( जाने योग्य )—तव्य, अनौय, अय विधय प्रत्यय हैं ।

शुच—शोचनीय, कृ—करणीय—कर्तव्य, शुच—शोच्य, धृ—कार्य—

९ । अनौय तथा तव्यके पहिले धातुके अन्तिम स्वर तथा चपात्त ध्रस्व स्वरके स्थानमें गुण आदेश होता है, और य जो पहिले प्राथ अन्तिम स्वरको ह् ह् आदेश होता है ।

१० । रमणीय—सुन्दर, रमणीयता—सुन्दरता—भाववाचक प्रत्यय त और ज हैं । इनके लगानेसे विशेषणोंसे भाववाचक शब्द बनते हैं ।

अत्रून पराजयते ।

अध्ययनात् पराजयते ।

सद्धानि देवदत्तस्य पृथ्वाणि ।

गत न शोचनीयम् ।

देवि रमणीयमेतत् सर ।

अद्यो प्रियदर्शन कुमार ।

अपि सनिहितोऽनु कुलपति' ।

— अचिन्तानप्यर्थान् विधिर्घटयति ।

भवन्ति नम्रास्तरव फलागमै ।

न खलु स उपरतो यस्य बल्लभो जन स्मरति ।

— तानि चर्चासि तस्य हृदये शल्यानि समूतानि ।

एतस्या परिघट्टि बहव पण्डिता भवन्ति ।

वयस्य ! कथं शून्यहृदयो भवसि ।

गुणेन शून्या पशुभि समाना ।

पुरा यत्र ज्योत मुलिनमधुना तत्र सरिताम् ।

हम लोग प्रतिदिन गङ्गामें नहाते हैं ।

ये लहसो कदासे आये हुए हैं ?

हम नगरमें बहुत पण्डित रहते हैं ।

### मन्त्राशब्द ।

ध्वयन ( न )—पढ़ना

र्ष ( पु )—दृष्ट्वा

गाम ( पु )—आना

न्द्रिय ( न )—इन्द्रिय

प्रदेश ( पु )—उपदेश

चिति ( पु )—मुनि

अधि ( पुं )—अनर्थात्

कुरूल ( न )—कोतुक

कुमार ( पुं )—लहसा

क्रोध—( पु )—क्रोध

गुण ( पु )—गुण

चन्द्रमस् ( पु )—चन्द्रमा

चित्तम् ( न )—मन

ज ( पुं )—लोग



तरु ( पु )—वृक्ष, पड़

देवदत्त ( पु )—किमी

नाम

देवी ( स्त्री )—देवता, रानी

धन ( न )—धन

नक्षत्र ( न )—तारा

नायक ( पु )—स्वामी

पण्डित ( पु )—पण्डित

पद् ( न )—छान

पयस् ( न )—जल

पयोद ( पु )—मछ

परिपट्ट ( स्त्री )—सभा

पशु ( पु )—पशु

पुलिन ( न )—तट

फल ( न )—फल

पुरुषका

रमणीयता ( स्त्री )—सुन्दरता

लक्ष्मण ( पु )—लक्ष्मण

वचम् ( न )—वाणी

वयस् ( पु )—मनु

विधि ( पु )—ब्रह्मा, देव

वेला ( स्त्री )—समय

शत्रु ( पु )—शत्रु

शल्य ( न )—कांटा, दुखदायी

संध्या ( स्त्री )—त्रिकालसंध्या

सौरत् ( स्त्री )—नदी

सरम् ( न )—सरोवर

सीता ( स्त्री )—रामकी स्त्री

स्रोतस् ( न )—प्रवाह

दृश्य ( न )—दृश्य

### विशेषण ।

प्राक्त्व—जिसको सोच नहीं सकते

प्रागत—(प्रा + गम् + त) प्रायाहुप्रा

प्राष्ट (प्रा + ष्ट् + त) चदा हुप्रा

उच्च—ऊचा

उपरत (उप + रस् + त)—सुत

गत (गम् + त)—गया हुप्रा

( जि + त )—जीता हुप्रा

नम्—नम्, विनीत

पर—दूररा ( सर्वनाम )

परम—बड़ा

प्रियदर्शन ( बहु )—सुन्दर

रमणीय—सुन्दर

लब्ध ( लभ् + त )—मिगा हुप्रा

वल्लभ—प्रिय

पूँप—खाली, (शून्यहृदय = तिसका मा ठिकाने नहीं)	मनिहित—(सम् + नि + धा + त) — उपस्थित
शोचनीय—शोक करने योग्य	सभूत—(सम् + भू + त) —उत्पन्न
	समान—सुलभ

अध्वय ।

अनुना—अध्व

कथम्—कैसे ?

कुत—कहाँ से ?

खलु—निश्चयमे

तनु—वधा

पुरा—पूर्वकालमें

प्रतिदिनम्—हरदिन

१ भोष् ( भो ) है ।

कुतु—कहा ?

धान् ।

अस् ( अस्ति ) ( अ पर ) —होना ।

आ + चर् ( आचरति ) - ( आ पर ) - काना ।

घट् ( घटयति ) ( चु पर ) —बनाना, पूरा करना ।

पराजि ( पराययते ) ( आ आ ) —१ पराजय करना, २ यकना  
( दूसरे अर्थमें पञ्चमीके साथ प्रयोग किया जाता है । )

वृष् ( वर्षति ) ( म्वा- पर ) वरसना ।

पाठ १३ ।

इङ्, त्, च्, तथा ज् में समाप्त होनेवाले शब्द ।

क अयम् ऋषिकुमार = कः ऋषिकुमार —यह कौन ऋषिकुमार है ?

अनम् अनेन अतिविस्तरेण = अलमनेनातिविस्तरेण —यह विस्तार'वच

प्रश्न बहुत न इच्छिये ।

१ भोग के म का लीप होना है, जब उसके बाद की ई नर वा धीय आता है ।

अलम् अयम् मल्ल, तस्मै मल्लाय = अलमय मल्लस्ते मल्लाय  
यद् मल्ल च्च मल्लको लिये वच ( पर्याप्त ) है ।

महद्भि महत्सु एव विक्रम कर्तव्य — महद्भिर्महत्स्वैव  
कर्तव्य — बड़े लोगों को बड़े ही लोगों पर पराक्रम करना चाहिये ।

महान् अस्य ( महानस्य ) कर्त्रेर्वाचा विभव — इस कविका वाणियों  
का वैभव बड़ा है ।

बुधाना परिषदि अनेन ( परिषद्दानेन ) महद्यशो लब्धम् — परिषदा  
सभामें इमने बड़ा यश पाया ।

महान्ति दु खानि सोदानि आभ्याम् ( सोदान्याभ्या ) कुमारम् ।  
इन दो लड़कोंने बड़े दु ख सहन किये ।

नि स्पृहस्य तृण जगत् — नि स्पृहको जगत् तृण ( तुल्य ) है ।

एभि, फलै कि प्रयोजनम्\* — इन फलोंसे क्या काम है ?

इयम् अस्मि — इयमस्मि — यह मैं हूँ ।

अस्मिन् एव समये कोऽपि वन्यगजस्तनायात = अस्मिन्नेव समये को  
वन्यगजस्तनायात — इसी समय कोई जंगली हाथी वहा आया ।

इदम् — पु ।

	ए व	द्वि व	अ व
प्र	अयम्	इसो	इसे
द्वि	इमम् एनम्	इसो एनो	इमान्-एनान्
तृ	अनेन एनेन	आभ्याम्	एभि
च	अस्मै	"	एभ्य
प	अस्मात्	"	एभ्य
प	अस्य	अनयो एनयो	एषाम्
भ	अस्मिन्	" "	एषु

\* उक्त, अय, प्रयोजाम् किम और इमके समान अत्रके पद प्रायः लतीवा  
14 पर्याय किये जाते हैं ।

	ए य ।	द्वि ष ।	य ष ।
द	याच	वाग्भ्याम्	वाग्भ्य
प	”	यावो	वाचाम्
म	वाचि	”	वाचु
म	वाक्-ग्	वावो	वाच

सुखभाज्—पु० ।

	ए ष ।	द्वि ष ।	उ य ।
म	सुखभाक्—ग्	सुखभाजौ	सुखभाज
द्वि	सुखभाजम्	”	”
वृ	सुखभाजा	सुखभाग्भ्याम्	सुखभाग्भि
ष	सुखभाजे	”	सुखभाग्भ्य
प	सुखभाज	,	,
प	”	सुखभाजो	सुखभाजाम्
म	सुखभाजि	”	सुखभाजु
स	सुखभाक्—ग्	सुखभाजो	सुखभाज

मदत्—न ।

म, द्वि, म मदत्—द मदती महान्ति

मदतो—मदत् का स्त्रीलिङ्ग द्वै ।

सुखभाज्—न ।

म, द्वि, म सुखभाक्-ग् सुखभाजौ, सुखभाजिञ्ज

१ । भगवत्+भ्याम्=भगवद्भ्याम्—

अनुनासिक वा अन्त ख को क्लृप्तकर पदयो वीचको और कोर्न व्यञ्जन, त्रि, उभयो बाद वर्गका तृतीय वा चतुर्थ वर्ण होता है, अपने वर्गके तृतीय वर्णमें बदल जाता है ।

	ए व ।	द्वि व ।	ब व ।
वृ	भगवता	भगवद्भ्याम्	भगवद्भि
च	भगवते	”	भगवद्भ्य
प	भगवत	”	”
ष	”	भगवतो	भगवताम्
स	भगवति	”	भगवत्सु
स	भगवन्	भगवन्तो	भगवत्सु

## महत् - पु० ।

	ए व ।	द्वि व ।	ब व ।
प्र	महान्	महान्तौ	महान्त
द्वि	महाशतम्	”	महत्
वृ	महता	महद्भ्याम्	महद्भि
च	महते	”	महद्भ्य
प	महत	”	”
ष	”	महतो	महताम्
स	महति	”	महत्सु
स	महन्	महन्तो	महाशत

## वाच्—स्त्री ।

	ए व ।	द्वि व ।	ब व ।
प्र	वाक्-श्	वाचो	वाच
द्वि	वाचम्	”	”
वृ	वाचा	वाग्भ्याम्	वारिभ
च	वाचे	”	वाग्भ्य

अपि तपो वर्धते ।

भानुर्विषतो मणि ।

धिक चौरान् ।

धिगिय दरिद्रता ।

अल अनेण ।

रमणीयेय लता ।

अष्टो मधुरभासा कन्याना दर्शनम् ।

— अष्टो प्रवातमुभगोऽयमुद्देश्य ।

कायय क्षिपदवशिष्ट रत्नया इति ।

— न अलु धीमता कश्चिदविषयो नाम ।

— अनेन तीर्थेनास्य समोहित साधयाम ।

अथ स बलेभिर्देवो मित्तु दुष्यन्त ।

तदिदमरख्य यस्मिश्चिर सीतया सह राम उषित ।

— खोमश्च दनलेन किम् ।

— अर्थो हि धान्या परस्वीय एव ।

— नि सारस्य पदार्थस्य प्रायेणाहम्बरो महात् ।

— कन्या नाम सहस्र हु'खं धिगष्टो सहतामपि ।

— शैले शैले न माणिक्य मौक्तिक न गजे गले ।

साधयो न हि सर्वतु चन्दनं न वने वने ।

यथां एव लोग है ।

इन पत्तोंका क्या काम है ?

इस भूखंडको धिक्कार ।

सुम लोग ऐसे व्यग्र क्यों हो ?

० अब कौटिल्य शब्द ही मार्ग प्रयोग किया जाता है तब उस का अर्थ 'हर हीरा है' होता है।  
 प्रश्न—इति शैले—इत्ते पदाङ्गम् ।

## संज्ञाशब्द ।

अतिविस्तर ( पु )—उड़ो लबाई  
 अर्थ ( पु )—प्रयोजन  
 अनल ( पु )—अग्नि  
 अरण्य ( न )—वन  
 \* अविषय ( पु )—(नलसमास)  
 जिनको जान नहीं सकते  
 आह्वय ( पु )—खिखावा  
 उद्देश ( पु )—प्रदेश, स्थान  
 गज ( पु )—घायी  
 चन्दन ( न )—चन्दनका पेड़  
 जगत् ( न )—ससार  
 तीर्थ ( न )—उपाय, घाट, मार्ग  
 दरिद्रता ( स्त्री )—दरिद्रता  
 दर्शन ( न )—पकाश, देख पड़ना  
 दुःख ( न )—कष्ट  
 दुष्यन्त ( पु )—एक राजाका नाम  
 पद्म ( पु )—उल्लु  
 परिपत्र ( स्त्री )—पण्डितोंकी मभा  
 प्रयोजन ( न )—मत्तगत्र

प्रवात ( पु )—( प्रकृष्टो वात )  
 अक्षुणा पवन  
 बलभिरु ( पु )—बल शब्द  
 मसू ( पु )—मसू, पहलवान  
 माणिक्य ( न )—माणिक्य  
 मित्तु ( न )—मित्तु  
 मोक्तिक ( न )—मोती  
 यशम्—( न )—यश  
 लता ( स्त्री )—लता  
 लोभ ( पु )—लोभ  
 वासुदेव ( पु )—कृष्ण, वसु  
 का लड़का  
 विक्रम ( पु )—पराक्रम  
 विभव ( पु )—शक्ति  
 विषत् ( न )—आकाश  
 त्रैल—( पु )—पहाड़ ( शैले )  
 शैले=हर पहाड़में )  
 श्रम ( पुं )—परिश्रम  
 समय—( पुं )—काल

\* जिस सम्भारयमें अ वा लुन् पूर्वपद रहता है उसे नलसमास कहते हैं।  
 अणु ( न पापमिति ), पा अपापम् ( शानि पापं यद्य तत ) इत्यादि ।





धातु ।

वृध् ( वर्धते ) ( भ्वा आ ) वृद्धना, | साध् ( साधयति ) ( वृ पर  
उदित होना | सिद्ध करना

पाठ १४ ।

इकारान्त तथा उकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द ,

लोटलकार ( आजाय ) के रूप ।

सुक्तये हरि भज—मुक्तिके लिये हरिका भजन करो ।

प्रक्षत्या लक्ष्मीशला मा ता सेवस्व—स्वभावसे लक्ष्मी चञ्चल ।  
उसको मन सेवो ।

इमा वेदना कथं सहामहे—इस दुःख का कैसे सहन करे ?

देव ! प्रसीद । अपराधान क्षमस्व—महाराज । कृपा कीजिए  
अपराधोंको क्षमा करिये ।नरो हुमांश्चि तरतु भद्रांश्चि च पश्यतु—मनुष्य कष्टोंको पार करे ।  
सङ्गत देखे ।

भाग्यतो भागीत्यौमवगाहताम्—बह भाग्यतो गङ्गामें स्नान करे ।

गुहनभिवादयध्वम्—तुम लोग गुहश्रेणोंको प्रणाम करो ।

भ्रमाद्रज्जु सर्प मा मन्यस्व—तू भ्रमसे डोरीको साप न समझ ।

दुर्नीतिर्वृत्तिर्विनश्यति—अनीतिसे राजा नष्ट होता है ।

अस्मिन् घोरेऽर्धे कथं वसामि—मैं इस भयानक वनमें कैसे रहूँ ?

सुद गत्वा ग्रीध प्रतिनिवर्तता भवान्—आप घर जाकर शीघ्र लौटें ।

मातर उत्याय ( मातरुत्याय ) दन्तघातनं कृत्वा स्वातव्यं सन्ध्योप

नीया च—मातृभक्त उठ दन्तघातन कर सन्ध्याउदय करना चाहिये ।

सत्रिपाया शलाभार्ताव त्रातुम् एव ( त्रातुमेव ) नानपराधं महर्तम

उत्तियोगका शब्द हृ खियोंको यच्चाके ही को लिये है, निरपराधको मारने-  
के लिये नहीं ।

॥ आक्षां भवत औतुम् इच्छामि (औतुमिच्छामि)—मे आपकी आज्ञा  
जुना चाहता हूँ ।

लोट् लकार ( आज्ञा )को रूप इस पाठमें दिये गये हैं :—

भू भ्वा पर ।

	ए व	हि व	व व
प्र, पु	भवतु	भवताम्	भवन्तु
म पु	भव	भवतम्	भवत
उ पु	भवानि	भवाम	भवाम

वृत्—भ्रा आ ।

प्र पु	वर्तताम्	वर्तताम्	वर्तन्ताम्
म पु	वर्तस्व	वर्तन्ताम्	वर्तन्वस्व
उ पु	वर्त	वर्तान्वहे	वर्तान्वहे

ऊपरके रूपोंसे ये प्रत्यय ध्यानमें आवने—

परस्मैपद ।

प्र, पु	तु	ताम्	अन्तु
म पु	०	तम्	त
उ, पु	आनि	आव	आम

आत्मनेपद ।

प्र पु	ताम्	इताम्	अन्ताम्
म पु	स्व	इयाम्	ध्वम्
उ, पु	हे	आवहे	आमहे

जिस प्रकार अन्ति तथा अन्ते को पूर्व अ का लोप होता है, उसी  
प्रकार अन्तु तथा अन्ताम् को पूर्व अकारका भी लोप होता है ।

वर्तमानकी तरह आत्तामें भी विकरणके लगानेसे रूप बनते हैं ।

पुष्—दि पर ।

प्र पु पुष्यतु पुष्यताम् पुष्यशु

विद्—दि आ ।

प्र पु विद्यताम् विद्यिताम् विद्यन्ताम्

इष्टामच्छ ( यथा आर्शा ), आयुष्मान् भव ( चिरजीवी वा )  
देव । प्रसोद ( महाराज ! कृपा कीजिये ), इनको साथ ऊपरकी शब्दों  
मिलाकर देखो ।

नियम —

लोट-लकार योजल आत्ता हीके अर्थमें नहीं आता । इच्छा, प्राप्ति  
तथा आशीर्वाद भी इसके अर्थ हैं ।

शिवा मा रक्षतात्—आशीर्वाद के अर्थ में प्रथम, तथा मधम पुनः  
एकप्रचनमें तात् विकल्पसे जोड़ा जाता है ।

प्र पु रक्षतु—रक्षतात् रक्षताम् रक्षशु

म पु रक्ष — ,, रक्षताम् रक्षत

इस पाठमें इकारान्त तथा उकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दोंके रूप भी  
गये हैं ।

भति—स्त्री ।

	ए व	दि व	व व
प्र	भति	भती	भतय
द्दि	भतिम्	”	भती
ष्ट	भत्या	भतिभ्याम्	भतिभिः
क्ष	भत्यै—भतये	”	भतिभा-
र्ष	भत्या —भतेः	”	”

इकारान्त तथा उकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द , लोट्लकारको रथ । ६६

	ए व	द्वि व	व व
ए	मत्या—मते	मत्यो	मतीनाम्
स	मत्याम्—मतौ	”	मतिषु
सं	मते	मती	मतप

धेनु—स्त्री ।

	ए व	द्वि व	व व
प्र	धेनु	धनू	धेनव
द्वि	धेनुम्	”	धेन
वृ	धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभि
थ	धेन्वै—धेनवे	”	धेनुभ्य
प	धेन्वा—धेनो	”	”
प	” ”	धेन्वो	धेनूनाम्
स	धेन्वाम्—धेनो	”	धेनुषु
स	धेनी	धेनु	धेनउ

इकारान्त उकारान्त पुलिङ्ग शब्दोंको रथको इनको साथ मिलाकर लिखित भेदकी ओर ध्यान दो,—

१। स्त्रीलिङ्गमें द्वितीयाको बहुवचनमें न् को स्थानमें थिसग होता पु हरीन्, भानन्, स्त्री—मती, धेनु ।

२। इकारान्त, उकारान्त शब्दोंको च, प, य, तथा स, को एकवचन प्रथमसे द्वैर्घ इकारान्त तथा ऊकारान्त शब्दोंको समान रूप भो होते हैं ।

३। मत्या तथा वध्या प्रत्यय आ को लोहने से बने हैं ।

नी—नीत्वा—( लेजाकर )

धु—धुत्वा—( धुनकर )

क्र—कृत्वा—( कर )

गम्—गत्वा—( जाकर )

नम्—नत्वा—( प्रणाम कर )

रम्—रत्वा—( खेलकर )

म् का लोप हुआ है

आचार ( आचार ) पु — व्यवहार-  
 सम्बन्धी आदर ।  
 आना ( स्त्री ) — आदेश  
 आर्या ( स्त्री ) — प्रतिष्ठित स्त्री  
 आसना ( आसनम् ) ण — आसन  
 औषध ( औषधम् ) न — दवा  
 कङ्कण ( कङ्कणम् ) न — कङ्कण  
 कौतूह्य ( कौतूह्यम् ) पु — कुत्सोक्ता  
 पुत्रः, पुधिष्ठिर  
 क्षत्रिय ( क्षत्रिय ) पु — क्षत्रिय  
 घृत ( घृतम् ) न — घी  
 चक्रोर ( चक्रोर ) पु — एक पक्षी  
 जिसके त्रिषयत्रे कदा जाता है  
 सि वह चादनी खाता है ।  
 चक्रवाकी ( स्त्री ) चक्रुवी ( यह रातको  
 अपने मण्डपरसे विद्युक्त होती है )  
 चन्द्रिका ( स्त्री ) — चान्दनी  
 छात्र ( छात्र ) पु — शिष्य  
 जात ( स्त्री जाता, जा [ जा ]  
 दि आ + त ) प्रिय बालक  
 ज्ञान ( ज्ञानम् ) न — ज्ञान  
 इतथावन ( न ) — इत घोना  
 ( तत्पुरुष )  
 ( ज्ञानम् ) ण — देना  
 ( गंभु ) पु, न — रुठिनाइ  
 ( गंभु ) — प्रतीति

द्विज ( द्विज ) पु, — दो बार  
 ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य,  
 दो बार जन्म होता है । पर  
 पवीत संस्कार इनका द्विज  
 जन्म है ।  
 नृपति ( पु ) — राजा  
 पारि ( पु ) — छात्र  
 पारिव ( पारिव ) पु — राजा  
 पुनर्दर्शन ( पुनर्दर्शनम् ) न  
 ( पुनर-श्रवण फिर, दर्शन न  
 दूसरी भट  
 प्रकृति ( स्त्री ) — स्वभाव  
 प्रतीकार ( प्रतीकार ) पु — ( प्रति  
 भी पु ) — द  
 ब्राह्मण ( ब्राह्मण ) पु — ब्राह्मण  
 भक्ति ( स्त्री ) — भक्ति  
 भवत् ( भवत् ) — आप  
 भागीरथी ( स्त्री ) — गङ्गा  
 भ्रम ( भ्रम ) पु — भ्रम  
 सति ( स्त्री ) — सुद्धि  
 मुक्ति ( स्त्री ) — मोक्ष  
 सृगंधा ( स्त्री ) — शिफार  
 मैत्र ( पु ) — मित्रोका नाम ।  
 रज्जु ( स्त्री ) — डोरी  
 विहार ( विहार ) पु — विहार  
 स्वाभाविक स्थितिमें पण्डित

ना ( स्त्री )—पौडा | सर्व ( सर्व ) पु—साप  
 व्र ( शत्रुस. ) न. —शब्द इच्छे

विशेषण ।

पिरोध ( बहु० )—निर्दीप ।  
 सन्तुष्ट ( नञ्प्रमा०, अ—नष्टौ  
 + सन्तुष्ट सम् + तुष्ट् + त )—  
 अग्रसन्न

सज् ( बहु०, निर्=निष्क्रान्त=  
 रक्ता + सज् स्त्री = रोग, श्लेष्मा  
 रोग चला गया वह

प्रात ( आ + श्रुत, ष् + त )—  
 पीडित

पर—धनी

रक्षित ( उप + खा + त )—  
 प्राप्त

गमनीय ( चप + ग्रा + यनीय )  
 —पूजाके योग्य

पर—भयानक

चल—चञ्चल

लड—सुख, मद

दरिद्र—गरीब

नष्ट ( नश् + त )—नष्ट

पट्ट—चतुर

पथ्य—हितकारी

प्राप्त—बुद्धिसान्

लोल—चञ्चल

वृत्त ( वृत् + त )—दृष्टा

व्याधित—( व्याधि पु रोग )—

रोगसे पीडित

सन्तुष्ट—प्रसन्न

सहचर—साथी

स्नातव्य—( स्ना + तव्य ) स्नान करने

योग्य

धातु ।

भि + वाद् ( अभिवाद् यते ) ( चु  
 आ )—प्रणाम करना

व + गृह् ( वयमाहते ) ( वदा आ )

ष्वा + म्भृ ( आभम्भृयते ) ( चुष्वा )  
 —विदा सागगा

उप + विष् ( उपविशति ) ( तु पर. )

कृष् ( कल्पते ) ( भ्वा आ — यह  
 चतुर्थीके साथ आता है ) —  
 समर्थ होना , उत्पन्न करनेके  
 लिये समर्थ होना  
 क्षम् ( क्षमते, क्षाम्यति ) ( भ्वा आ ,  
 दि पर ) — सहन करना  
 पुष् ( पुष्यति ) ( दि पर ) — पुष्ट  
 करना, बढ़ावा  
 प्रति + नि + वृत् ( प्रतिनिवृत्ते )  
 ( भ्वा आ ) - लौटना  
 प्रति + पठ् ( प्रतिपठते ) ( दि आ )  
 — स्वीकार करना, अभ्यास करना  
 प्र + दा [ यच्छ ] या प्र + यम्

[ यच्छ ] ( प्रयच्छति ) ( भ्वा  
 पर ) — देना  
 प्र + षट् ( प्रसीदति ) [ सीद ] ( भ्वा आ )  
 — प्रसन्न होना  
 भज् ( भजति — ते ) ( भ्वा उ ) —  
 करना  
 भृ ( भरति ) ( भ्वा पर )  
 मन् ( मचते ) ( दि आ )  
 वि + तृ ( वितरति ) भ्वा प —  
 वृम् ( श्रीभत ) ( भ्वा आ ) — शो  
 चमकना  
 सेव् ( सेवते ) ( भ्वा आ ) — सेव  
 करना

### अव्यय ।

अज्ञात्वा ( अ + नात्वा — ज्ञाका  
 भृत कृ अव्यय ) — न जानकर  
 उत्थाय ( स्थाका भृ कृ अव्य ) —  
 उठकर  
 कर्तुम् ( कृ + तुम् ) — करनेके लिये  
 नत — उसके अनन्तर  
 तथा — उस प्रकारसे

३ यह वाक्यको शोभाके  
 भी प्रयोग किया जाता है  
 व्रातुम् ( वृ + तुम् — भ्वा आ )  
 वचानेके लिये  
 परमार्थत — यथार्थ , सव्युच  
 ( 'तस् — माय पञ्चमीके ३  
 प्रोर कभी २ सप्तमीके ३  
 आता है । )

तावत् - १. तत्तत्क , २. प्रथमत ,

प्रातर — प्रात कारासे , सुव

<p>—नही ( यह निषेधने अर्थमें )          लोट् लकारके मध्यम पुरुषके          साथ आता है )</p>	<p>यथा—जैसे, जिस प्रकारसे          शौघ्रम्—जतनी          श्रोतुम्—( श्रु + तुम् ) सुननेके लि</p>
---	--

पाठ १५ ।

विधिलिङ् (प्रिधर्य), अद्म् ।

प्रञ्जलन्ति अस्मी अग्रय = प्रञ्जलन्तामो अग्रय —जे अग्रि ललते है ।  
 य अस्मी ( योऽसौ ) चोर स रह्यीत —जो वह चोर, वह पकर  
 ण ( योऽसौ स —वह प्रसिद्ध ) = वह प्रसिद्ध चार पकड़ा गया है ।  
 ' सर्वे अस्मी ( सर्वेऽस्मी ) इम पण्डितमाद्रियन्ते—वे सब इस पण्डितव  
 दर करते है ।

अस्मीया प्रायाना कृते कि न व्यवसितम् एभि ( व्यवसितनेभि )—  
 ' प्राणोंके लिये इन्होंने क्या नहीं किया ?

अपि नामानुरूप वर लभेय—क्या ( अपि नाम—क्या जैसा मैं चाहत  
 ) योग्य पति पाऊँगी ?

सपत्तो न हृष्येत् विपत्तो ( हृष्यद्विपत्तो ) स न विपीडेत् प्राण -  
 हंसान् सम्पत्तिमें प्रसन्न न हो, श्रीर न विपत्तिमें पिन्न हो ।

दुर्बलो युद्धे वैतर्षो वृत्तिषु आश्रयेत् ( वृत्तिमाश्रयेत् )—दुर्बल युद्ध  
 हाईमें वैतर्षके व्यवहारका आश्रय ले ( अर्थात् नमन होये वा झुके ) ।

गायशास्त्र शिञ्जेवहि इतिष्ठासि ( शिञ्जेवहीतीष्ठासि )—  
 रता हूँ कि इस दोनो गायशास्त्र पढ़ें ।

अस्मी मा कदापि अ ( म् ) वधीरये—किसीको नानी आया



अ त्तके अनुनासिकके सिवा कोई व्यञ्जन अपने वर्गके अनुनासिकमें वि-  
से बदल जाता है ।

(क) तत् + मातृम् = तन्मातृम् ( केवल वह ), चित् + मयम्  
चिन्मयम् ( ज्ञानमय ), वाक् + मयम् = वाङ्मयम् ( शास्त्र ),—  
श्रीर मय प्रत्यय है । पदके अन्तका अनुनासिकके सिवा कोई अ-  
नित्य अपने वर्गके अनुनासिकमें बदल जाता है—यदि उसके बाद प्र-  
सम्बन्धी अनुनासिक हो । जैसे—तत् + मरणम् = तन्मरणम् वा तदुमात्  
परतु तत् + मातृम् = तन्मातृम् , चित् + मयम् = चिन्मयम् , वाक् + म-  
वाङ्मयम् ।

अदभु के रूप इस प्रकार बनते हैं —

पु तथा स्त्रीलिङ्गके एकवचनमें असौ । इतर रूप बनानेके लिये इ  
अद शब्द समझना चाहिये, जो सर्वके ऐसा चलता है । द्को म् है  
है, श्रीर उसके आगेवाले स्वरको, यदि वह छ्रस्व हो, उ होता है, यदि  
दीर्घ हो तो ऊ होता है । पुलिङ्गमें द्वितीयाको क्छे और सब विभक्ति  
के बहुवचनमें क के जगह छ होता है । पुलिङ्गके तृतीयाके एकवच-  
सूके वादके स्वरको उ होता है, ऊ नहीं ।

४ । अमी अग्रय, अमी इशा —अमीके अन्तका ई प्रसृष्ट,  
अर्थात् यह अग्रिम स्वरके साथ नहीं मिलता ।

धिङ्-सूचं ।

।नाप्त्यगतिर्मनोरथानाम् ।

स्वागतं देव्यै ।

नेत्रेण काण । कर्येण बधिर । पादेन खञ्ज ।

गोत्रेण कौशिकोऽग्निः ।

चिर जीव । अनुष्ठितो देवादेशः ।

अमी अथाचूर्णं धावन्ति ।

० इच्छाये सवन जाती \* । ऐसी कीड़ लगइ नहीं जइहा वे नहीं जाती ।

मलीमसा पपुति कडापि नावताम्बेसहि ।  
 अलमनेताप्रस्तुतेन । प्रस्तुतमेवापक्रमे ।  
 पद्यधर्मोन्नित्तया शोभन भवेत् ।  
 वयस्य ! विरसाक्ताग्निष्कतादारम्भात् ।  
 मग्रासो नाम गृहाखानय परम उत्सव ।  
 'वस्वे' इमे अपि प्रदेशे । न युक्तमनयोक्तवु गन्तुम् ।  
 इता अम् सखा क्व नु सतु भवेत् ।  
 नाप्या वृत्ति समाचरेत् ।  
 कथ पुनरसो फलव सर्वे रामचन्द्रमेव वर्णयन्ति ।  
 न मुक्तिरदृक्छ्रेणु न च धर्म परित्यजत् ।  
 शाश्वेत् प्रमथकारेण नोपकारेण दुःखता ।  
 सप्ततो जयमश्विच्छ्रेत् पुत्रादिच्छ्रेत् परानधम ।  
 विधमपरमृत यत्किञ्च भवेत्सुत वा विधमीश्वरेच्छया ।

तुमको अपने गुरुको प्राणाये करनी चाहियं ।  
 वुरे कामोसि दूर रहो ।  
 तुमको कहना चाहिये कि फिर क्या हुआ ।  
 अच्छा होता यदि तुम भूठ न कहते ।  
 न प्रसिद्ध चोर पकड़ गये है ।

सज्ञाशब्द ।

गति ( छी )—स्नानना जभाय	अर्थकृच्छ्र ( पु, १ तत्पु०, अर्थ पु
धर्म ( अर्थर्म ) पु—वुरा काम	धा + कृच्छ्र, पु, न—कष्ट)—
मृत ( अमृतम् ) न ( अ + मृत =	धनका कष्ट
सु + त )—अमृत	आदेश ( आदेश ) पु—आना

१। अत्र श्रुतना अदने पतिक धरकीतरफ सखिप्रीकी भा भेनके विवे मर्थना रतां तत दो तारय कल मुनि धर्मस कलना ।



प्रस्तुत—अप्रकृत  
 आय—क्राना  
 रज—लगाड़ा  
 होत—( प्रष्ट् + त ) पकड़ा  
 हुश्रा  
 र्वल—कमलोर  
 नफल ( बहु० निष् + फल न  
 ( निर्गत फल यस्मात् तत् )—  
 विफल  
 पाय्य—ठौका  
 विय ( प्र + दा + य )—विश्राहमें  
 डी जानेवाली

प्रस्तुत ( प्र + स्तु + त ) प्रकृत  
 वधिर—बधिरा  
 मलीमष ( स्त्री —मलीमसा )—  
 मलिन  
 युक्त—( युज् + त ) योग्य  
 वेंतकी ( वेतसका ) वेंतकी  
 व्यवसित + ( जि + 'अत्र + सो + त )  
 —निश्चित  
 शूर—शक्तिमान्  
 शोभन—अच्छा ( शोभन भवत्—  
 अच्छा होता )

धातु ।

अनु + हृष् [ हृच्छ् ] ( अश्वि-  
 च्छति ) ( तु पर )—चाहना  
 प्र + धीर् ( यजधोरयति च्, पर )  
 —अनादर कारा  
 प्रवलम्ब् ( अत्रलम्बते—भ्वा आ )  
 —आश्रय लेना, स्वीकार करना  
 श + दृ [ द्विष् ] ( आद्विषते )  
 ( दि आ )—आदर करना  
 श + श्रि ( आश्रयति—ते, भ्वा च )  
 —आसरा लेना

उप + ऋस्—( उपऋमते—भ्वा, आ )  
 —आरम्भ करना  
 जीव् ( जीवति, भ्वा पर )—  
 जीना  
 नि + वृत् ( निवर्तते, भ्वा आ )—  
 लौटना  
 परि + त्यज् ( परित्यजति—भ्वा पर )  
 —होटना  
 प्र + ल्वल् ( प्रल्वरति—भ्वा पर )  
 —जतना

१। यजयति—दिवादिगणके ओकारान्त धातुओंका श्री विकरण य के पठित लु-  
 ही जाता है, असी—सी—गति, दी—यति ।

सुच् ( सुचरति ) ( दि पर )— मूर्च्छित होना	त्रि + चट् [ सीद् ] ( विधीरति ) ( भ्वा पर )—पिन्न होना [ शिच् ]
सु [ मिष् ] ( मिषते ) ( दि प्रा ) —सरना	शिच् ( शिचते ) ( भ्वा प्रा )— सम् + प्रा + चर् ( समाचरति— प्रा पर )—करना
लम् ( लभते ) ( भ्वा प्रा )—पाना	रूष् ( रूष्यति ) ( दि पर )—प्रसन्न होना
वि + रम् ( विरमति—भ्वा पर )— विराम करना	

## अध्यय ।

छला—स्त्रियोंको सम्बोधनमें  
प्रयोग किया जाता है  
प्रपि नाम १ का, जैसा मैं चाहता  
हूँ ( इच्छा दिखाता है )  
२, हो सकता है ( सम्भव  
दिखता है )  
कृते—को लिये  
क—कहा  
कथित्—कही  
च—और  
भटिति—शौघ

नु—१, प्रत्यमें आता है, २ प्रा  
दिखाता है  
पुनर् १ फिर, २ परन्तु, ३ वाक्य  
भूषाके लिये प्रयोग किया  
जाता है  
वा—अथवा  
सर्वत —( सर्व + तम् पञ्चमौके  
नप म )—सब तरफसे  
स्वागतम्—स्वागत ( सु=अच्छा,  
| शापत, आ + गम् + त

१। रम्—भ्वा प्रा से, पर जम इसके पक्षिने वि, आ परि, उप आते है ही परक पद ही आता है ।

पाठ १६ ।

सङ्घातार वा अनद्यतनभूत, अस्मद् और युष्मद् ।

अयम् अन्मन् प्रागतोऽस्ति = अयमहमागतोऽस्ति—यह मैं आया ।

उमे न वृष्टा = इमी नो वृष्टा—यह हमारा घर है ।

तस्मै ते तम ईश्वराय—उम तुम परमेश्वरको प्रणाम ।

एत वयम् अ ( म ) योधा प्राप्ता—ये हमलोग अयोधा पहुँचे ।

शिय ते मे त्रिपि शिव यच्छ्रुत्वात् = शिवसे मेऽपि शिय यच्छ्रुत्वात्—शिय  
म और हमको सुन दे ।

इं त्वा अज्जु मा त्रिपि इह = इशब्दवाचतु सावीह—यह ईश्वर  
मको वचने और हमको भी ।

मयं मामनु ते—तुम्हारा सब हमारे ऐसा है ( अनुशेषे योगमें द्वितीया  
ती है । )

अनु हरि सुरा—इह लोग हरिसि क्षम है ।

उत्तमनु विद्योतते विद्युत्—पेड़नी और बिजली समझती है ।

अद्य प्रातर्मम वाम तयनम् अ ( म ) स्पन्दत यवशुन हि तत्—  
आज प्रातःकाल मेरी गाँव' जाकर फड़की । तिस्रय, यह सुरा शकुन है ।

गुर्याऽस्मात् अ ( म ) गच्छत्—मूर्ख अस्त्रको गया ।

अना गामम् अ ( म ) नयाम्—हमनोंग बकरीको गाव ले गये ।

समारससारम् अ ( म ) मनयत—उसने सगारको असार समझा ।

वाग्व्य प्रकाशेन निशीथे शेषा निखीजस अभवन् ( निखीजसोऽभवन् )  
सङ्घकोके सेजसे आधीरातको दिपे प्रकाशित हुए ।

इव पाठसे अस्मद्, युष्मद्, तथा सङ्घात अनद्यतन भूतसे एव दिपे मये

। अस्मद् तथा युष्मद् शब्दसे तोनों लिङ्गोंसे समाज एव हीते है ।

अस्मद् । (पु, स्त्री, न)				युष्मद् । (पु, स्त्री, न)		
ए	व	द्वि	व व	ए	व ।	द्वि व । व व ।
प्र	अहम्	आवाम्	वयम्	त्वम्	युवाम्	यूयम्
द्वि	साम् मा	,"—नौ	अस्मान्-	त्वाम्-	,"—याम्	युष्माम्
			न	त्वा		व
तृ	मया	आवाभ्याम्	अस्माभि	त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभि
च	मह्यम्	,"—नां	अम्मह्यम्-	तुभ्यम्	,"-याम्	युष्मह्यम्
	मे		न	ते		व
प	मत्	आवाभ्याम्	अस्मात्	त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मात्
प	मम मे	आवयो -	अस्माकम्-	त्व-ते	युवयो -	युष्माकम्
		नौ	न		वाम्	व
स	मयि	आवयो	अस्मासु	त्वयि	युवयो	युष्मासु

( अ ) तस्मै ते नम इत्यत्र—यद्वा ते का प्रयोग किया गया है। क्योंकि तस्मै से यह मालूम होता है कि ईश्वर पहिले कहा जा चुका है।

१ ( अ ) अस्मद् और युष्मद्को वैकल्पिक रूप, जैसे मा, नौ, न, तथा त्वा, वाम्, व, लर्हा आन्वादेश रहता है, नियमसे प्रयोग किये जाते हैं और अप्तु विकल्पसे। जो एत जार कहा जा चुका उसको पुन कहनेमें आन्वादेश करते हैं।

( ब ) हरिश्चत्वा मां च रक्षतु—यद्वा त्वा तथा मा का प्रयोग नहीं हो सकता, क्योंकि वे सब लीखे गये हैं—

( ब ) अस्मद् और युष्मद्को वैकल्पिक रूप आवयो आरम्भमें प्रयोग नहीं किये जाते, और न च, वा, एव से जोड़े जानेपर ।

अनेन व्याकरण पठितनेन काव्यमुपदिश—इसने व्याकरण पढा, इसमें काव्य पढाओ ।

२। इसी प्रकार एतद् को एनम् इत्यादि वैकल्पिक रूप आन्वादेश प्रयोग किये जाते हैं ।

लङ् लकार ।

भू—भ्वा पर ।

वृत्—भ्वा आ

ए व । द्वि व । व व । ए व । द्वि व । व व ।

पु	अभवत्	अभवताम्	अभवन्	अवर्तत	अवर्तताम्	अवर्तन्त
पु	अभव	अभवतम्	अभवत	अवर्तथा	अवर्तथाम्	अवतध्वम्
पु	अभवम्	अभवाव	अभवाम	अवर्त	अवर्तार्थादि	अवर्तार्थादि

पुष्—दि पर ।

मृ—दि आ ।

ए व द्वि व व व ए व द्वि व व व

पु	अपुष्यत्	अपुष्यताम्	अपुष्यन्	अम्रियत	अम्रियताम्	अम्रियन्त
----	----------	------------	----------	---------	------------	-----------

इन ऋषीको देखनेपर यह मालूम होगा कि धातुके पहिले अ (आसम)

मा हुआ है ।

इप्—तु पर ।

श्च ( ऋच्छ् ) भ्वा पा ।

पु	ऐच्छम्	ऐच्छात्र	ऐच्छाम इ०	आच्छाम्	आच्छाव	आच्छाम इ०
----	--------	----------	-----------	---------	--------	-----------

जिन धातुग्रोके आरम्भमें स्वर होता है उनके पहिले अ फो बदले आ होता है, जिसको आगेके स्वरके साथ वृद्धि आदेश होता है—गुण गद्यौ ।

इस प्रकार आ + इ वा इ = ऐ, आ + उ वा ऊ = औ, आ + श्च वा श्च = श्च, तथा आ + लृ = आलृ ।

लङ् लकारके प्रत्यय ये हैं —

( परस्मै )

( आत्मने )

ए व	द्वि व	व व	ए व	द्वि व	व व
त्	ताम्	अन्	त	इताम्	अन्त
म्	तम्	त	थाम्	इथाम्	ध्रमम्
म	व	म	इ	वदि	मदि



आद्वर्मिद नगरम् ।  
 क्षय पाप जय सनम ।  
 कुमार तजमस हृते शोक वीरु नार्हसि ।  
 मेघेभ्यो, लतत्रिद्वोऽपतम् ।  
 रंरुदयो पद्माः शुद्धमौलन् जुमुदानि च नामोलन् ।  
 णयो क्षयसद्यार्थेषा सन्ना न प्रतिपद्यते ।  
 अर्माभिर्वाक्येरेनासमात्त्वयन् ।  
 दशरथो रामस्य विद्योनेन प्राणानत्यजत् ।  
 चित्रया चन्द्र इव राम सीतया व्यरजत् ।  
 यद्युना ४ भद्रशत्रु प्रमाणाभित्युक्त्वा व्यरमत् ।  
 वत्से ! न ते मङ्गलकारी रीरिस्तुमुचितम् ।  
 प्रसन्नोऽसि तदा ।  
 श्रीशस्त्रावतु माषोह ।  
 वैदेशेषु सवेद्योऽस्मान् कृष्ण स्रंदाऽऽतु ।  
 विना सतयसनात् चन्दन न प्ररोहति ।  
 — तस प्रयच्छ मे कान्ता गतिरस्यारत्नया तृता । —

काजय क्षालिदासाद्या कवयो व्यसस्यसौ ।  
 पजते परमाणी च पदार्थेऽ प्रतिष्ठितम् ॥  
 पादपाना भय वातात् पद्मागं शिशिराद भयम् ।  
 पत्रताना भय वृत्रात् माधुर्या दुर्जनाद् भयम् ॥

मञ्जनीको शब्द कभी नष्टो बदलते (ब्रह्म) ।  
 मनुष्यको आपत्तिमें भी कतवा न छोड़ना चाहिये (अर्थ-  
 प्रयोग करो) ।

पापोंसे दुःख उत्पन्न हुई ( उठ + भृ ) ।

गुरुको प्रणाम ।

क्या ऐसा होगा कि ( अपि नास ) स गङ्गामें नहाऊँ !

सज्ञाशब्द ।

जा ( जनका स्त्री ) बकरी  
 प्रजकुन ( अप्रजकुनाम् ) न — गुरा  
 शकुना

योधा ( स्त्री ) — प्रयोधा  
 न ( इम ) पु — प्रभु  
 मन्ता ( स्त्री ) — प्रिया  
 ना ( फान ) पु — समय  
 मुद् ( कुमुत्सुम् ) न — रात्रिप्रिकामि  
 फमरा

पा ( कृष्णाः ) पु — कृषा  
 ति ( स्त्री ) — गमन  
 दा ( पु ) ( यद् मर्दश उ व मे  
 आता है ) — घर  
 म ( ग्राम ) पु — गाध  
 इत्रा ( स्त्री ) — रक्ष नगर

रु ( तर्क ) पु — तर्क  
 शीष ( शीष ) पु — शिष्या  
 शैवीय ( शिषीय ) पु — प्राधीरात  
 पनात्त्य ( पनात्त्वम् ) न ( पनात्  
 पु + त्य — भाउवाचक प्रत्यय )  
 पराधत्ता धर्म  
 पद ( पदम् ) न — कमान

परमाणु पु — ( कर्मधा० परम —  
 उडा, + अणु पु वर )  
 मज्जे छोटा कण

पजत ( पजत ) पु — पहाड़  
 पादप ( पादप ) पु तत्पु पाद पु०  
 पैर + प ( पा — पोना ) वर  
 जो पैरसे पाती बोता है, पेड़  
 ( पादेन पिबतीति ) ।

प्रकाश ( प्रकाश ) पु — प्रकाश  
 प्रमाण ( प्रमाणम् ) न — यथाप  
 ज्ञानज्ञा कारण

विन्दु पु — तू द  
 मद्भुज ( मद्भुजम् ) न — शुभ  
 मलय ( मलय ) पु — रङ्ग-पहाड़का  
 नाम

मेघ ( मेघ ) पु — घेद  
 जू ( वज्रम् ) न — इन्द्रका वज्र  
 वाक्ता ( वाक्ताम् ) न — जाका  
 वात ( वात ) पु — हवा  
 त्रिभुव ( स्त्री ) — त्रिभुवी  
 त्रिधोश ( त्रिधोम ) पु — त्रिरु  
 त्रिज ( त्रिज ) पु — महादेश

शिश्र ( शिश्रम् ) न — कल्याण  
 शिशिर ( शिशिर-रम् ) पु, न — ठढा  
 श्रीश ( श्रीश ) पु ( तत्त्व०, श्री—  
 स्त्री धनकी देवता, + ईश—पु  
 लक्ष्मीका पति, विष्णु,

मना ( स्त्री )—चैतन  
 ममार ( ममार ) पुं—रुमार  
 मुर ( मुर ) पु—देव  
 सूर्य ( सूर्य ) पु—सूर्य  
 हस ( हस ) पु—हस

## विशेषण ।

अशेष ( बहु०, नास्ति शेषो यस्य )—  
 जिसमें शेष नहीं ; शत्रु  
 अमार ( बहु०, अ-नहौ + मार—पु  
 तत्त्व ) जिसमें कोई तत्त्व नहीं  
 असाद् ( सर्वना )—हम  
 आद्य—श्रीमान्  
 उचित—योग्य  
 कालिदासाद्य ( बहु०, कालिदास—  
 पु + आद्य विशेष० = प्रथम) कालि  
 दाससे आरम्भ कर  
 क्षेप ( लिका कृत्यकृदन्त )—नष्ट  
 करने योग्य  
 क्षेप ( जिज्ञा कृत्यकृ ) जीतने योग्य  
 तुच्छ

निष्तेजस् ( बहु०, निस् + तेजस् न )  
 जिससे तेज निकल गया,  
 प्रतिष्ठित ( प्रति + स्थित—स्त्री  
 भूत कृ ) स्थिर  
 प्रसन्न ( प्र + सद् [ सीर् ] भ्वा पर  
 का भू कृ )—खुद, निर्मल,  
 निर्दोष  
 प्राप्त ( प्र + आप् + त ) पहुँचा  
 युष्मद् ( सर्वना )—तुम  
 वाम—बाया  
 सवेद्य ( सम् + विद् + य )—  
 जो ठीक जाना जाय  
 १ दृता ( दृत् ( दृ + त ) का स्त्री  
 —ले जाई गयी

## धातु ।

अट् ( अहति—भ्वा पर )—योग्य  
 होना ( त्वमहसि दीङ्म =

तुमको उठाना योग्य है, तुम  
 उठाना चाहिये )

१। कर्ग—कथा, धनवन् धनवती—भुक्त कृदन्तकी आ जीङ्गनेसे स्त्रीलिङ्ग उगतता  
 यत्तम मनाम होवाने विशेषणोंका स्त्री लुके जीङ्गनेसे जाता है ।

वृ ( अवृत्ति—भ्वा पर )—वृत्ताना  
 र् + मील् ( उन्मीलति—भ्वा पर )  
 —खिलना, फूलना  
 ष् ( यच्छ् ) ( यच्छति ) ( भ्वा पर )  
 —देना  
 न + मील् ( निमीलति—भ्वा पर )  
 —बन्द होना, मुकुलित होना  
 ति + पद ( प्रतिपद्यते—दि श्रा )  
 —पाना  
 + दा ( यच्छ् ) ( भ्वा पर )  
 —देना

प्र + रुह् ( प्ररोहति—भ्वा पर )  
 —उगाना  
 मन् ( मन्यते—दि श्रा )—सोचना  
 वि + द्युत् ( विद्यते—भ्वा श्रा )  
 —चमकना  
 वि + राज् ( विराजति—ते—भ्वा  
 उभ )—चमकना  
 शान्त् ( शान्त्वयति—बु पर )—शान्त  
 करना  
 स्पन् ( स्पन्दते—भ्वा श्रा )—  
 फड़कना

अव्यय ।

नु ( यह द्वि वि को साथ आना है )  
 ह—यद्वा  
 इसको अव्यय है—१ सदृशता,  
 २ हीनता, ३ सामोप,  
 ४ व्यापकता  
 नानु—और कहीं  
 यि—सम्बोधनमें आता है  
 क्षाम् ( मत्वर्थक धातुओंके साथ आता  
 है )—अस्त गम—अस्त होना  
 व—तरह ( सदृशता दिखलता है

उपमान तथा उपमेय एक  
 विभक्तिमें आते हैं )  
 उवत्था ( वच् + त्था )—कहकर  
 रोदितुम् ( रुन् + तुम् )—रोनेसे  
 लिपे  
 विना—विना ( यह द्वि, ल, वा प  
 को साथ प्रयोग किया जाता है )  
 वोदुम् ( वृह + तुम् )—उठानेके लिं  
 सर्जदा—सर्जकात

## पाठ १७ ।

ऋकारान्त शब्द ।

ऋणकर्ता पिता ऋणु, —ऋण करनेवाला पिता ऋणु है ।

पितर मातरं च पूजय —पिता और माताको पूजा करो ।

पितृभ्य च्छधा—पितरोंको प्रदान ।

सातु नि ( तुनि ) लोपते कृण्व —कृष्ण भाषे क्लिपता है ।

ऋषयो मन्वद्रष्टार —ऋषियोग मन्त्रोंको देखनेवाले हैं ।

जल स्रष्टु, आ ( शुवा ) द्वा सृष्टि —जल सृष्टिकर्ताकी पहिली

सृष्टि है।

सौता भर्ता लक्ष्मणी च सार्धं वनं गता—सौता पति और लक्ष्मणी  
साथ वनको गईं ।

तस्य चित्तय तद्विद् भ्रात —भाई, इस तस्यको सोचो ।

राम स्वमातृ प्रथत —रामने अपनी मातागोको प्रथम किया

इस पाठमें ऋकारान्त पुलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग के रूप लिये गये हैं ।

कर्त्तृ—पु ।

	स व ।	द्वि व ।	व व ।
म	कर्ता	वर्तारो	कर्तार
द्वि	कर्तारम्	"	कर्तृन्
तृ	कर्तारः	कर्तृभ्यःसु	कर्तृभिः
च	वर्त	"	कर्तृभ्य
प	कर्तुः	"	"
प	"	कर्तुः	"
म	कर्त्तारि	"	कर्तृणाम्
न	कर्तार	कर्तारो	कर्तृषु
			वर्तार

कर्त्तृ—स्त्री ।

यह नदीके समान चलता है । ऋकारान्त विशेषणका स्त्रीलिङ्गका प ईं को खोड़नेसे बनता है ।

पितृ—पु ।

मातृ—स्त्री ।

	ए	व	।	द्वि	व	।	व	व	।	ए	व	।	द्वि	व	।	व	व	।		
।	पिता	पितरौ		पितर	माता	मातरौ		मातर		।	द्वि	व	।	व	व	।	व	व	।	
द्वि	पितरम्	॥		पितॄन्	मातरम्	॥		मातॄन्			।	द्वि	व	।	व	व	।	व	व	।
तृ	पितॄन्	पितृभ्याम्		पितृभिः	मातॄन्	मातृभ्याम्		मातृभिः			।	द्वि	व	।	व	व	।	व	व	।
च	पितॄन्	॥		पितॄभ्यः	मातॄन्	मातृभ्याम्		मातृभ्यः			।	द्वि	व	।	व	व	।	व	व	।
प	पितॄन्	॥		॥	मातॄन्	॥		॥			।	द्वि	व	।	व	व	।	व	व	।
प	॥	पितॄन्		पितॄणाम्	॥	मातॄन्		मातॄणाम्			।	द्वि	व	।	व	व	।	व	व	।
स	पितॄन्	॥		पितॄणुः	मातॄन्	॥		मातॄणुः			।	द्वि	व	।	व	व	।	व	व	।
स	पितॄन्	पितॄन्		पितॄन्	माता	मातरौ		मातर			।	द्वि	व	।	व	व	।	व	व	।

इन ऋणोंके विषयमें अबोलिखित बातें ध्यानमें रखो —

१ । पहिले पाच रूपोंमें ऋको आर होता है, और प्रथमाके एक वचनमें स् ( प्रथम ) को साथ आरका र निकल जाता है । —

२ । सम्बन्धबोधक पितृ, मातृ इत्यादि शब्दोंमें, तथा नृ शब्दमें ऋका अर् होता है, आर नहीं ( नृशब्दके र्पाको देखो ) । —

स्वर्—स्त्री ।

	स्वर्षा	स्वर्षारौ		स्वर्षा
		नस्वर्—पु ।		
	नस्वर्षा	नस्वर्षारौ		नस्वर्षा
		भर्त्—पु ।		
	भर्त्षा	भर्त्षारौ		भर्त्षा

इत्यादि ।

३। स्वृ—स्वौ ( वह्नि ), नमृ—पु ( पीता ), भवृ—पु ( रं )  
इन शब्दोंमें मृ को आर् होता है, यद्यपि वे मन्वन्वर्गोपसर्ग हैं ।

नृ—पु ।

	ए व	द्वि व	व व
म	ना	नरो	नर
द्वि	नरम	”	नृम्
त्र	न्रा	नृभ्याम्	नृभि
च	न्रै	”	नृभ्य
प	न्रु	”	”
ष	”	न्रो	नृभ्याम् नृभ्यो
स	नरि	”	नृभ्यु
म	न	नरो	नर

४। नृयो रूप पितृयो समान होते हैं । इसको म व व में नृभ्याम्, व नृभ्याम् रूप होते हैं ।

५। पुनरिष्ट, कतरिष्ट—कर्त, पित इत्यादि रूपोंको सन्धिके त् कर्तृ, पितर् इत्यादि रेफात् समझना चाहिये ।

व्यंष्टो भ्राता पितृा मम ।

भ्रातु पुत्रो भ्रातृव्यो भ्रात्र्यो वा ।

स्वसुः पुत्र स्वस्रीष स्वस्रेयो वा ।

वधूर्ध्वरि ननान्दरि च सिचरीत् ।

भर्तुं शासने तिष्ठ ।

नृपतीनामुपदेशारो त्रिरला ।

सममति पुत्रम मातेव रक्षति ।

अत्र वप्रो रधुपतिस्त्रिपुडति स च स्त्रिन्यत्यावधोक्तकखते च  
याम्मन्निर्कास्य ।

राज्ञा	राज्ञभ्याम्	राज्ञभि	नाम्ना	नामभ्याम्	नामभि
राज्ञे	राज्ञभ्याम्	राज्ञभ्य	नाम्ने	,"	नामभ्य
राज्ञ	,"	,"	नाम्न	,"	,"
,"	राज्ञो	राज्ञाम्	,"	नाम्नो	नाम्नाम्
राज्ञि—राज्ञनि	,"	राज्ञसु	नाम्नि-नामनि	,"	नामसु
राज्ञान	राज्ञानो	राज्ञान	नाम नामन्	नाम्नो नामनो नामानि	

१ सीमन्—स्वी ।

ब्रह्मन्—पु ।

ए व	द्वि व	व व	ए व ।	द्वि व ।	व व ।
सीमा	सीमानो	सीमान	ब्रह्मा	ब्रह्माणो	ब्रह्माण
सीमानम्	,"	सीमन्	ब्रह्माणम्	,"	ब्रह्माण
सीम्ना	सीमभ्याम्	सीमभि	ब्रह्मणा	ब्रह्मभ्याम्	ब्रह्मभि
सीम्ने	,"	सीमभ्य	ब्रह्मणे	,"	ब्रह्मभ्य
सीमन्	,"	,"	ब्रह्मण	,"	,"
,"	सीम्नो	सीम्नाम्	,"	ब्रह्मणो	ब्रह्मणाम्
सीम्नि-सीमनि	,"	सीमसु	ब्रह्मणि	ब्रह्मणी	ब्रह्मसु
सीमन्	सीमानो	सीमान	ब्रह्मन्	ब्रह्माणो	ब्रह्माण

यत्नन्—पु० ।

शर्मन्—न० ।

ए व ।	द्वि व ।	व व ।	ए व	द्वि व	व व
यन्त्रा	यन्त्रानो	यन्त्रान	शर्म	शर्मणी	शर्मणि
यन्त्रानम्	,"	यत्नन्	,"	,"	,"
यन्त्राना	यन्त्रभ्याम्	यत्नभि	शर्मणा	शर्मभ्याम्	शर्मभि

मूर्धन्—पु

द्वि	ए व	द्वि, व	व व
	मूर्धानम्	मूर्धानो	मूर्ध



नकारान्त शब्द ।

अपि कुशली भवान्—आप आप प्रसन्न है ।

वाच कर्म अ ( माँ ) तिरिक्तम्—काम बातसे अधिक बड़ा है ।

पो ऽपि शशिन कलङ्क सारङ्ग इति शङ्कन्ते—कोई लोग शङ्का है कि चन्द्रमाका कलङ्क सुग है ।

आत्मा त्व गिरिजापते ।—हे पार्वतीके पति, शिव, तुम ( आत्मा हो ।

आत्मा नदी स यमपुण्यतीर्था—आत्मा एक नदी है, जिसमें ( इन्द्रियोंका लय ) रूपी पवित्र तीर्थ ( तट ) है ।

ऋदुरघाणा मूर्धा—सू, टवर्ग, र, तथा ष् का मूर्धा स्थान है ।

तव वचन मे मर्माणि निवृत्तति—तुम्हारी बात मेरे मन काटती है ।

वसन्ति हि प्रेमिण गुणा न वस्तु—गुण प्रेममें रहते हैं, में नहीं ।

सत्यमतीत्य हरितो हरिश्च वर्तन्त एते वाजिन—सचमुच वे मर्य तथा इन्द्रके घोड़ोंको भी लाघ कर ( उनसे बढकर ) हैं ।

यज्ञावि तद्भवति नात्र विचारणीयम्—जो होनहार है वच हीता इममें कुछ विचार करने योग्य नहीं है ।

इस पाठमें नकारान्त शब्दोंमें रूप द्विये गये हैं । वे इस प्रकार हैं

राजन्—पु ।

नामन्—न ।

ए व	द्वि व	व व	ए व	द्वि व	व
प राजा	राजानो	राजान	नाम	नामो—नामनो	ना
राजानम्	"	राज	"	"	"

राजन् -- इसमें उपान्त्य अकार लोप हुआ है । राजन् + अस् = राज् + अस् = राज् + ज् + अस् = राज् + अस् = राज् । वक्ष्येण और वन में उपान्त्य अकार लोप नहीं हुआ है । इससे यह नियम निकलता

२ । यदि प्रन्तके अन् के पहिले सकारान्त वा वकारान्त स योग हो भके उपान्त्य अकार लोप नहीं होता । यदि उस अन्के पहिले रेखा योग ७ हो तो भके उपान्त्य अकार लोप नित्य होता है, और सप्तमीके द्विवचनमें तथा नपु के प्रथमा और द्वितीयाके द्विवचनमें विकल्पसे प होता है ।

राज्याम्, राजसु, यन्त्रभ्याम्, यज्जसु, नाम, भावि—

( क ) तीसरे वगमें पु लिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्गके वृतीयाके द्विवचनसे लेकर उजनादि प्रत्यय, तथा नपु सक्त लिङ्गके प्रथमा तथा द्वितीयाके एकवचनके ल्यप आते है । इन प्रत्ययोंके पूर्व अङ्गको पट कहते है । ऊपर दिने हुए पाँको देखनेसे यह मालूम पड़ेगा कि पदके अन्तके न् का लोप हुआ है ।

३ । राजभ्याम्, राजभि, राजसु, शशिम्याम्, शशियु, शशी, इत्यादि—  
अन्त अङ्गोंके प्रथमाके एकवचनमें अन्त के न्का लोप होता है और उसके पूर्वके स्वरको दीर्घ होता है । पद के अन्तिम न् का लोप होता है ।

राजपुत्र, राजपुत्र्य, सूर्धस्थानम्—इन समासोंको देखो । इनके अन्तमें यह मालूम पड़ेगा कि नकारान्त शब्दोंके न्का लोप होता है यदि वे समासके उत्तरपद न हों ।

राजन्का स्त्री रूप राजनी, और भाविन् का भाविनी है । इस प्रकार नकारान्त शब्दोंका स्त्रीलिङ्ग ईं के जोड़ने से बनता है । जिस अङ्गको यह प्रथम लगाया जाता है, वह भ अङ्ग कहता है ।

शशिव्—पु ।

भाविन्—न ।

ए	व	द्वि	व	व	व	ए, व ।	द्वि	व । ३
प्र	शशौ	शशिनो	शशिता	भावि			भाविनौ	
द्वि	शशिनम्	”	”	”				
तृ	शशिना	शशिम्याम्	शशिमि	भाविना			भाविण्याम्	३
च	शशिनै	”	शशिम्य	भाविनी			”	
प	शशिन	”	”	भाविन			”	
प	”	शशिनो	शशिनाम्	,			भाविनो	३
स	शशिनि	”	शशियु	भाविनि			”	
स	शशिव्	शशिनौ	शशिन	भावि भाविन्	भाविनी			

ऊपर दिये हुए रूपोंसे यह मालूम पड़ेगा कि प्रत्यय तीव्र विभक्त है ।

राजा, राजानो, राजानम्, राजानो, सीमा, सीमानो, सीमानम्, सीमानो, तथा नामानि को मिलाकर देखो । इन एतसा परिवर्तन हुआ है और ये अणुरूपोंसे मिलबुल्ल भिन्न है ।

(अ) पहिले वर्गमें पु तिङ् तथा स्त्रीलिङ्गको पहिले पाच प्रथम नपु के प्रथमा तथा द्वितीयाके उद्बुचनके प्रथम आते हैं । इन सर्वनामस्थान कहते हैं ।

१। सर्वनामस्वार्थके आगे रहनेपर अनुमें समाप्त होनेवाले उपान्त्य अक्षरों दीर्घ होता है ।

राज, राज्ञा, राज्ञे इत्यादि, तथा नाम्नी को मिलाकर देखो ।

(ब) दूसरे वर्ग में पु तथा स्त्री के द्वितीयाके उद्बुचनानां स्वरादि प्रत्यय, तथा नपु के प्रथमा तथा द्वितीयाके द्विवचनके प्रत्यय हैं । इन प्रत्ययोंके आगे रहनेपर पूर्वको—भ—सहते हैं ।

रान्, ब्रह्मण, तथा यज्जन, रानि राननि, नाम्नी—ताम् मिलाकर देखो ।

राज् -- इसमें उपान्त्य अका लोप हुआ है । राजन् + अस् = राजन् + अस् = राज् + अस् = राज् + अस् = राज् । ब्रह्मण और अन्त में उपान्त्य अका लोप नहीं हुआ है । इससे यह नियम निकलता

२ । यदि अन्तके अन् के पहिले सकारान्त वा वकारान्त सयोग हो भजे उपान्त्य अका लोप नहीं होता । यदि उस अन्के पहिले ऐसा योग न हो तो भजे उपान्त्य अका लोप नित्य होता है, और सप्तमीके द्विवचनमें तथा नपु के प्रथमा और द्वितीयाके द्विवचनमें विकल्पसे लोप होता है ।

राजभ्याम्, राजसु, यन्त्रभ्याम्, यजसु, नाम, भावि—

( क ) तीसरे वगमें पुलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्गके तृतीयाके द्विवचनसे लेकर वलनादि प्रत्यय, तथा नपु सक्र लिङ्गके प्रथमा तथा द्वितीयाके एकवचनके प्रत्यय आते हैं । इन प्रत्ययोंके पूर्व अङ्गको पद कहते हैं । ऊपर दिये हुए शब्दोंको देखनेसे यह मालूम पड़ेगा कि पदको अन्तके न् का लोप हुआ है ।

३ । राजभ्याम्, राजभि, राजसु, शशिभ्याम्, शशिसु, शशी, इत्यादि—  
इन्त शब्दोंके प्रथमाके एकवचनमें अन्त के न्का लोप होता है और उसके पूरको स्वरको दीर्घ होता है । पद के अन्तिम न् का लोप होता है ।

राजपुत्र, राजपुत्रम्, मूर्धस्थानम्—इन समासोंको देखो । इनको देखनेसे यह मालूम पड़ेगा कि नकारान्त शब्दोंके न्का लोप होता है यदि वे समासके उत्तरपद न हों ।

राजन्का स्त्री रूप राज्ञी, और भाजिन् का भाजिनी है । इस प्रकार नकारान्त शब्दोंका स्त्रीलिङ्ग इसी जोड़ने से जनता है । लिङ्ग अङ्गको यह प्रत्यय लगाया जाता है, वह भ अङ्ग कहता है ।

- १ रामोऽस्मि सर्वं सहे । --  
 कुमार ! तातस्त्रामाह्वयति । --  
 आर्य ! कथयामि ते भूतार्थम् । --  
 आयुष्मान् भव । सर्वथा चक्रवर्तिन पुत्र प्रतिपद्यस्व ।  
 इन्द्रशर्मा नाम वारमणोऽस्माक सहाध्यायि मित्रम् ।  
 पक्षपातिनो यूथमनयो ।  
 विषयिण कस्यापदोऽस्त गता ।  
 अज्ञस्यो ग्रन्थिन त्रेष्वा ग्रन्थिभ्यो धारिणो धरा ।  
 २ किमिव हि मधुराणा मण्डन नाकृतौनाम् ।  
 स्वामी ते मेऽपि स हरि पातु वामपि नो त्रिभु ।  
 अशुचि यदि मा तु मन्यसे किमिदं मूर्ध्नि कपालदाम ते ।  
 नैषगिकौ सुरभिण कुसुमस्य सिद्धा ।  
 मूर्ध्नि स्थितिर्न चरखैरवताडनानि ।

शंति ब्राह्मणस्योक्त वर्मेति तत्रजन्मन ।  
 गुणदासात्मक नाम प्रशस्त वैश्वशूद्रयो ॥  
 १ सूतो वा स तपुतो वा यो वा को वा भग्याम्यहम् ।  
 दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्त तु प्रौरुषम् ॥  
 कोऽतिभार समार्थानां किं दूर व्यवसायिनाम् ।  
 को विदेश सविद्यानां क पर प्रियवादिनाम् ॥  
 माता यस्य सृष्टे नास्ति भार्या चाप्रियवादिनौ ।  
 अरण्य तेन शन्तव्य यथारण्य तथा सृष्टम् ॥

- १ । यह गम की उक्ति है । क्योंकि उसने बहुत दुःख सहे ।  
 २ । इव मे अथ अनिश्चित जाता है , किम्बि—कौनसी यन्तु ?  
 ३ । यह अथवामाके प्रति कर्णकी उक्ति है । धी वा की वा—कोई चाहे  
 भातका ।

क्या यह प्रमुखण पर्यंत है ? ( 'अपि' का प्रयोग करो )

शुद्धि लोग हिमालयकी चोटीपर रहते हैं ।

तुमको सर्वदा सच बोलना चाहिये । सबमार्गसे कभी न छटो (चल)

जो लोग अच्छी तरह ( साधु ) काम नहीं करते, दु खी होते हैं ।

उसने बहुत दु ख सहे ।

बुद्धिमान् लोगोंको कुछ कठिन नहीं है ।

मैं चाहे जो हूँ, दरिद्र या नीच, गुण हमारा बल है ।

( 'यो वा को जा' का प्रयोग करो )

हम लोग उसको प्रणाम करें, वह तुम्हारा गुरु है और हमारा भी ।

सज्ञाशब्द ।

प्रतिभार ( अतिभार ) पु — बड़ा बोझ  
 रथ ( रथ ) पु — वस्तु  
 श्वताडन ( श्रवताडनम् ) न — पीटना  
 शकृति ( स्त्री ) — सुन्दरता  
 प्रात्मन् ( पु ) — आत्मा  
 अपालदामन ( न तत्पु०, कपाल—  
 पु खोपड़ी, नामन्—न माला )  
 — खोपड़ियोंकी माला ।  
 अर्मन ( न ) — कार्य ।  
 कलङ्क ( कलङ्क ) पु दाग, धब्बा  
 गरिजा ( स्त्री ) — पावती  
 अकवर्तिन् ( पु ) — शार्ङ्गभौम  
 चरण ( चरण ) पु — पैर  
 अन्मन् ( न ) — अन्म  
 तात ( तात ) पु पिता

दैज ( दैवम् ) न — भाग्य  
 नामन् ( न ) — नाम  
 पौरुष ( पौरुषम् ) न — बल  
 प्रेमन् ( पु , न ) — प्रेम  
 ब्रह्मन् ( पु ) ब्रह्मा , ( न ) परब्रह्म  
 मण्डन ( मण्डनम् ) न — भूषण  
 अर्मन ( न ) — अर्म  
 मूर्धन्—( पु ) — मिर  
 यज्ञन् ( पु ) — यज्ञ करनेवाला  
 राजन् ( पु ) — राजा  
 अर्मन् ( न ) — १ कवच , २ क्षत्रियों-  
 को नामको आगे आता है  
 वस्तु ( न ) — वस्तु  
 जाडिन् ( पु ) — घोडा  
 विदेश ( विदेश ) पु — परदेश

वैश्व ( वैश्व ) पु — वैश्व  
 शर्मन् ( न ) ब्रह्मणोको नामको  
 आगे आता है  
 शशिन् ( पु ) — चन्द्र  
 शूद्र ( शूद्र ) पु — शूद्र  
 समय ( समय ) पु — इन्द्रियोंका जय  
 सारङ्ग ( सारङ्ग ) पु — हरिण

सीमन् ( स्त्री. ) — सीमा  
 सूत ( सूत ) पुं — सारणि  
 स्थिति ( स्त्री ) — अवस्था  
 स्वामिन् ( पु ) — प्रभु  
 हरि ( पु ) १ इन्द्रका घोडा,  
 २ विष्णु  
 हरित्. ( पु ) — सूर्यका घोडा

### विशेषण ।

अज—सूर्य  
 अतिरिक्त ( अति + रिच्. + त ) —  
 —अधिक  
 अप्रियवादिन् ( स्त्री अप्रियवादिनी )  
 —कर्कश बोलनेवाला  
 अशुचि—अपवित्र  
 आयत्त—अधीन  
 आयुष्मत्—चिरजीवी  
 इन्द्रशर्मन्—पु ( बहु०, इन्द्र पु —  
 इन्द्र, शर्मन्—न. सुप्र, यद्य  
 ब्राह्मणोको नामको आगे  
 लगाया जाता है ) — इन्द्र नाम  
 का ब्राह्मण  
 कुशलिन्—सुखी  
 क्षत्रजसन्—पु ( बहु०, क्षत्र—पु  
 क्षत्रिय क्षत्रजसन्—१ जस )  
 र्चापमे उत्पन्न

अन्यिन्—अन्योमें पण्डित  
 गुप्तदासात्मक ( गुप्त=गुप-  
 पर [ गोपायति ] +  
 रत्तित, दास—पु नौकर,  
 त्मन् पु आत्मा, क एक  
 है जो बहु० समासके  
 लगाया जाता है ) गुप्त  
 दासद्वय  
 दुरात्मन् ( बहु० ) — दुष्ट  
 दूर—दूर  
 धारिन्—जो वस्तुओंको धारण  
 सकता है  
 नैसर्गिक ( स्त्री नैसर्गिकी  
 स्वाभाविक  
 पक्षपातिन्—पक्षपाती  
 पर ( सर्वना ) — दूरमा  
 पुण्य—पवित्र

‘स—(प्र + शस् + त) —

प्रश्न सा किया गया

यथादिन्—प्रिय बोलनेवाला

विन्—छानहार

ि—सत्य प्राणी

ि—अच्छा

िचारणीय—द्विचार करने योग्य

मु—व्यापक, सबव्यापी

पयिन्—विपयी

व्यवसायिन्—उद्योगी

समर्थ—शक्तिमान

सवित् ( बहु०, स—सह—साथ,  
विद्या ज्ञान )—पण्डित

सहायायिन्—साथ पढ़नेवाला

सिद्ध ( सिध् + त, स्त्री सिद्धा )—

सिद्ध, निष्कृत, प्रमाणित

सुरभि—सुगन्ध

### धातु ।

ि + ह् ( आह्वयति ) ( भ्वा पर )  
—पुकारना

ि + कृत् [ कृन्त् ] ( निष्कृन्ति )  
( नृ पर )—काटना

पा ( पाति ) ( अ पर )—रक्षण करना

शङ्क् ( शङ्कते ) ( भ्वा आ )—शङ्का  
या सन्देह करना

### अव्यय ।

तीत्य ( अति + इ + य )—लाघ  
कर, पार कर

व—सच ( सम्भाषणा दिखाता है )

या—वैसा

ि—सम्भाष दिखाता है

यथा—जैसे

यदि—यदि, अगर

सत्यम्—सच

सर्वथा—सब प्रकारसे



## पाठ २० ।

कर्मणि प्रयोग और भावे प्रयोग ।

देवदत्त पुस्तक लिखति—देवदत्त पुस्तक लिखता है ।

देवदत्तेन पुस्तक लिख्यते—देवदत्तसे पुस्तक लिखी जाती है ।

भद्रे ! गच्छास्यधुना—भद्रे ! अब मैं जाता हूँ

भद्रे ! गम्यतेऽधुना राया—भद्रे ! अब मुझसे जाया जाता है ।

वत्स ! इत्थागच्छास्वी उ ( न उ ) पविश—प्रिय बालक, यहाँ आ

आसनपर बैठो ।

वत्स ! इत्थागम्यताम् आ ( मा ) सने उ ( न उ ) पवि

त्वया । प्रिय बालक ! तुमसे यहाँ आया जाय, आसनपर बैठो जाय

नृपा पण्डिते सह भाषन्ते—राजा लोग पण्डितोंसे साथ बोलते

नृपे पण्डिते सह भाष्यते—राजाओंसे पण्डितोंके साथ

जाता है ।

बुधास्त्वमवोधन्त—पण्डितोंने तत्त्व जाना ।

बुधैस्त्वमबुध्यत—पण्डितोंसे तत्त्व जाना गया ।

सज्जना न कदाप्यस्य वदन्ति—साधु लोग कभी भूठ नहीं बोलते

सज्जनैर्न कदाप्यसदमुद्यते—साधु लोगोंसे कभी भूठ नहीं

जाता ।

दूष्णो तिष्ठतु भवान्—आप चुप बैठें ।

दूष्णो म्यीयता भवता—आपसे चुप बैठो जाय ।

वनदेवता नृपाणां कीर्तिं गायन्ति—वाग्देवताय राजाओंका  
गाती हैं ।

वनदेवताभिर्नृपाणां कीर्तिर्गीयते—वाग्देवताओंसे राजाओंका  
गाया जाता है ।

विजयता भवान्—आप जीते ।

विजीयता भवता—आपसे जीता जाय ।

राना यश् स्तूयताम्—राजाओंके यशकी स्तुति की जाय ।

यद्भवता इ ( ते ) परते तत्सर्वं क्रियते मया—जो आपसे चाहा जाता है वह सब मुझसे किया जाता है ।

तद्धि ( तत्+ हि ) वनमतीव रमणीयम्—सबसे बढ़ जगल बहुत सर है ।

इस पाठमें कर्मणि प्रयोग तथा भावे प्रयोगका वखन किया गया है ।

कर्मणि प्रयोगमें धातुके रूप ही कर्ताका बोध कराते है, कर्ताके आगे गोया जोड़कर कर्ताको पुनर्क्ति करनेकी कोई आवश्यकता नहीं रहती ।

इस लिये कर्ता प्रथमान्त रहता है । कर्मणि प्रयोगमें धातुके रूप ही कर्ताका बोध कराते है । कर्मके आगे द्वितीया जोड़कर कर्म वतानेकी आवश्यकता नहीं रहती, इस लिये कर्म प्रथमान्त रहता है ।

देवदत्त लिखति—में लिखते कर्मणि है अर्थात् कर्मका बोध कराता है ।

अनियं कर्म पुस्तक प्रथमान्त प्रयोग किया गया । 'लिखति' से कर्ताका बोध नहीं होता इस लिये कर्ता देवदत्त तृतीयामें प्रयोग किया गया है ।

देवदत्त पुस्तक लिखति—में कर्म अनभिहित है, अर्थात् लिखति इस लिये इसका बोध नहीं होता, जो कर्तारि है इसलिये 'पुस्तक' का द्वितीया-प्रयोग हुआ ।

सकर्मक धातुओंका कर्मणि प्रयोग होता है, क्योंकि उनको कर्म वताना है, अकर्मक धातुओंका कर्मणि प्रयोग नहीं होता, क्योंकि उनको कर्म नहीं होता ।

परन्तु उनका भावे प्रयोग होता है अर्थात् इसमें धातुका रूप क्रियाका बोध कराता है । वृद्धे तिष्ठामि—कर्तारि प्रयोग है ।

सकर्मक तथा अकर्मक धातुओंका कर्मणि प्रयोग होता है । भावे प्रयोग प्रायः केवल प्रथम पुंस्यो एक वचनमें प्रयोग किया जाता है ।

नी - कर्मणि प्रयोगके रूप ।

वर्तमान, लट् ।

अनद्यतन भूत, लङ् ।

ए व द्वि व व व ए व द्वि व व

प्र पु	नीयते	नीयेते	नीयन्ते	अनीयत	अनीयेताम्	अनीयन्
म पु	नीयसे	नीयेथे	नीयध्वे	अनीयथा	अनीयेथाम्	अनीयथ
उ पु	नीये	नीयावहे	नीयामहे	अनीये	अनीयावहि	अनीया

आन्तार्थ—लोट् ।

विधायक—लिट् ।

ए व द्वि व व व ए व द्वि व व

प्र पु	नीयताम्	नीयेताम्	नीयन्ताम्	नीयेत	नीयेयाताम्	नीये
म पु	नीयथ्व	नीयेथाम्	नीयध्वम्	नीयेथा	नीयेयाथाम्	नीयेथ
उ पु	नीये	नीयावहे	नीयामहे	नीयेय	नीयेवहि	नीये

जि—वर्तमान ।

स्तु—आना ।

ए व द्वि व व व ए व द्वि व व

प्र पु	जीयते	जीयेते	जीयन्ते	स्तूयताम्	स्तूयेताम्	स्तूय
--------	-------	--------	---------	-----------	------------	-------

कर्मणि तथा भावे प्रयोगके रूप धातुको य लगाकर उसके आगे आ पद प्रत्यय जोड़नेसे बाते है । य को पूर्व कोई विकरण नहीं लगता ।

कर्मणि तथा भावे प्रयोगके यको पहिले अधीलिखित पाँ होते है —

जीयते, स्तूयते—

१ । अचिन्म इ तथा उ को दीर्घ होता है ।

स्त्रीयते, दीयते, पीयते—

२ । कुछ आकारान्त धातुओंके आको ईं होता है वे धातु ये हैं स्वा, दा, धा, मा, गै, पा ( पीना ), छा ( छोड़ना ), तथा सो ।

गै—गीयते, सो—सीयते—

३। ए, ऐ, ओ, तथा श्रीकारान्त धातुश्रीको आकारान्त समभना हिषे ।

कृ—कृ—क्रियते, द्वि—द्वि—द्वियते—

४। ऋकारान्त धातुश्रीको ऋ को रि होता है ।

यञ्—इत्यते, वच्—उच्यते, वद—उद्यते, ग्रह—एद्यते, हृ—हृ—हृते, हृ=हृ व् ए=हृ उ ए=हृ उ=हृ=हृ (व्की उ हुश्रा, ऐम खरका लोप हुश्रा और प्रथम नियमातुसार उकी दीघ हुश्रा) ।

५। कुक् धातुश्रीको य्, व्, र्, तथा र्को इ, उ, ऋ, तथा लृ होते इनको सम्प्रसारण कषते है ।

६। वद्—उ अद्—उद्—सम्प्रसारणके आगे रहनेवाले खरका लोप ता है ।

७। शस्—शस्यते—कुक् धातुश्रीको अनुनासिकका लोप होता है, वन्द—का वन्द्यते होता है ।

अर्थते, क्षर्थते—

८। ऋ धातुको तथा मयोगको श्रान्तमें रहनेवाले ऋको गुण ता है ।

तौयते, कीर्यते, पूर्यते—

९। जब ऋको गुण वा वृद्धि नहीं होती और वह ओष्ठस्वानीय की वाद होता है तो उसको इर् तथा उर् होता है । किसी व्यञ्जनके से रहने पर इर् तथा उर् को उकी दीघ होता है ।

चुर—चौर्यते, तड—ताड्यते—

१०। चुरादिगणके धातुश्रीमें विकरणके पहिले होनेवाले गुण वा द्वे आदेश लोकी ली रहते है ।

कारयति=वह कराता है, कार्यते=उससे कराया जाता है ।

११। प्रेरणार्थक बनानेके लिये धातुश्रीके आगे अय लगाया जाता

है । चुरादिगणको धातुओंमें अय के पहिले जो परिवर्तन होते हैं वे प्रेरणार्थकमें भी होते हैं ।

मूल धातुओंको समान प्रेरणार्थकमें भी सज एकारोंमें रूप होते हैं ।

प्रेरणार्थकको कसणि प्रयोग तथा भाये प्रयोगको रूप चु ग के कर्मणि तथा भाये प्रयोगके रूपोंको समान होते हैं ।

१२ । वाक् + हरि = वाग्हरि वा वाग्घरि, तत् + हितम् = तद् हितम् वा तद्धितम्—यदि ह्को पूर्व वर्गको प्रथम चार वर्णोंमेंसे कोई हो तो उसको उस वर्गका चतुर्थ वर्ण विकल्पसे होता है ।

इष्यरेण भूयते ।

शिव स्तूयता शिवाय ।

भो ! नृपते ! किमिति ज्ञोपमास्यते ।

तेन राज्ञा क्रतुरश्वमेध प्रारभ्यत ।

पद् द्वि सर्त्रु गुणीनिधीयते ।

तद्व्यता शोकानुबन्ध ।

मृग्य रय मणिस्वपुणि प्रतिप्रभ्यते ।

वत्स लव ! नद्विपन्तामस्त्राणि ।

सेनापतिराहूयते राज्ञा ।

न रत्नमन्थियति नृग्यते द्वि तत् ।

कुमार ! तदा प्रयतेषा यथा नोपालभ्यसे मितृनाक्षिप्यसे त्रिप

र्षं विकृष्यसे रामेण नापद्विषसे सुर्येण ।

ध्रियते याजदेकोऽपि रिपुष्वावत् कुत सुगम् ।

सा जाता परजतीति मे त्रिदितम् ।

श्रापुष्पान् भव भौर्भिति वानयो त्रिषोऽभिजादने ।

मरण प्रकृति शरीरिणा त्रिकृतिर्जीवितमुपयते बुधे ।

स पृष्ठेन कस्त्व भो हेतुधागमनेऽनु फ ।  
 सशोक इव कस्मान् एव दुर्मता इव लक्ष्यसे ॥  
 किं पुण्ये किं फौस्त्य करीरस्य दुरात्मन ।  
 येन वृष्टिं समाभाद्य न कृत पत्रमग्रह ॥  
 प्रत्यह क्षयमायाति प्रत्यह जायते पुन ।  
 अद्यापि हतखपाया नास्तोऽस्या दग्धमृते ॥  
 काम क्रोध मोह लोभ त्यक्त्वात्मान भावय कोऽष्टम् ।  
 आत्मनानत्रिहीना मूढास्त पचयन्ते नरकनिगृह्णा ॥

उस अधिकारिकी (अधिकारिन्) प्रजाश्रीमें स्तुति की जाती है ।  
 देवो, पेड़ लताश्रीसे घेरे जाते है (परिवृ) ।  
 हम लोग प्रतिदिन तु खोसे जलाये जाते है ।  
 लड़कोंसे पिता तथा माताकौ सेवा की जानी चाहिये ।  
 पृथ्वी ब्रह्मासे उत्पन्न की गयी है ।  
 अत्र भी आप चुप क्यों नहीं होते ?  
 अत्रतक एक भी रोग है, तत्रतक शरीरको मुख नहीं ।  
 मैं जानता हूँ (अव + गम्) कि शोक उससे अभीतक छोड़ा  
 नहीं गया है ।

सन्नाशब्द

प्रभिवान्न (अभिवान्नम्) न —	काम (काम) पु — इच्छा
प्रणाम करना	क्रतु (पु) — यत्न
धस्त (अस्तुम्) न — अख [यत्न]	क्षय (क्षय) पु — नाश
अप्रवमेध (अप्रवमेध) पु — अप्रवमेध	जीवित (जीवितम्) न — जीवन
आगमन (आगमनम्) न — आना	वृषु (न) — लाह
करीर (करीर) पु — एक काटेदार	पद (पदम्) न — स्थान
पेड़, जिसमें पत्ते नहीं होते	प्रकृति (स्त्री) — स्वाभाविक क

मरण ( मरणम् ) ण — मरना  
 मोघ ( मोघ ) पु — मूर्खा  
 रत्न ( रत्नम् ) पु — रत  
 राग ( राग ) पु — विषयप्रेम  
 रिपु ( पु ) — शत्रु  
 लघ ( लघ ) पु — रामका पुत्र  
 वनदेवता ( स्त्री तत्पु०, वन न +  
 देवता — स्त्री ) — वनदेवी  
 विकृति ( स्त्री ) — आभाविक  
 स्थितिका परिवर्तन, रोगकी  
 दशा  
 विष ( विष ) पु — ब्राह्मण

एक ( सर्वनाम ) — एक  
 दग्ध ( दग् + त ) — गिन्धा  
 दुर्गन्ध ( बहु०, दुष्ट विकारि मयो श्रु  
 — चिह्न  
 नरकनिगूढ ( नरक — पु + निगूढ  
 नि + श्नुच् [ गूढति-ते ] + त =  
 छिपा हुआ ) नरकमें डूबा  
 हुआ  
 परवत् ( स्त्री — परवतो ) — पराधीन  
 पृष्ट ( प्रच्छ [ पृच्छ् ] [ त पर ] +  
 त — पूछा गया  
 मूढ ( मुच् + त ) — मूर्ख

विषय ( विषय ) पु — इन्द्रियोंकेविषय  
 ( मय, रस, गन्ध, शब्द, तथा स्पर्श )  
 वृद्धि ( स्त्री ) — बढ़ना  
 शोकानुबन्ध ( शोकानुबन्ध ) ( पु  
 तत्पु०, शोक — पु + अनुबन्ध  
 — पु — निरन्तर चलना ) —  
 शोकका निरन्तर चलना  
 सद्यति ( स्त्री ) — सद्यः  
 सङ्घट ( सङ्घट ) पु — झगड़ा करना  
 सञ्जन ( सञ्जन ) पु ( सत् प्रकृत  
 — साधु पुरुष  
 सेनापति ( पु ) — सेनापति

## विशेषण ।

वाच्य — कहने योग्य  
 विदित ( विद् + त ) — ज्ञात  
 विज्ञेन ( वि + ज्ञा + त ) — रहस्य  
 शरीरिन् — शरीरधारी  
 सशोक ( बहु० ) — शोकपूर्ण  
 सौम्य — शांत, यह ब्राह्मण  
 सम्बोधन करनेमें आता है  
 क्योकि वह क्षत्रिय इत्यादि वर्ण  
 वर्धों में अधिक शान्त है ।  
 दृतरूप ( स्त्री — दृतरुपा, बहु०  
 दृत — ( दृन् + त ) + रूप न  
 निन्दनीय रूपजा ।

० गुह ( भ्वा च ) के उ को गुणकारक अरादि प्रथम पर ररनेपर दौन स्त्रीता है

धानु ।

+इप् ( अन्वियति ) ( द्वि पर ) —पोजना	पच् ( पवति—ते ) ( भ्वा उभ ) —पकाना
+ष्टृ ( अघटति ) ( भ्वा पर ) —ले जाना	परि + वृ ( कर्म प्र परिव्रियते )— घेरना
+क्षिप् ( आक्षिपति ) ( तु पर ) —झीना	प्रति + वन्च् ( कर्म प्र प्रतिबधते ) —रोकना
+या ( आयाति—अ पर )—जाना : ( कर्मणि प्र आस्यते ) बैठना	प्र + यत् ( प्रयतते ) ( भ्वा आ )— यत्त करना
+ष्टृ ( आष्टुयति—भ्वा पर ) —पुकारना	भात्रय ( प्रेर भू )—बोचना
+आ + लम् ( उपालभते ) - - पर )—निदा करना , क्रियते )—करना ) ( भ्वा पर )—माना i) ( द्वि आ )—उत्पन्न होना	भा ( सृज्यति, सृजयते ) ( द्वि पर , चु आ )—पोजना
( अधूयते ) ( द्वि आ )—जोना	लक्ष् ( चु पर )—लखना
+धा ( कर्म प्र निधीयते )—रखना	वच् ( कर्म प्र वच्यते )—बोलना
	वि + कृष ( विप्रर्षति ) ( भ्वा पर ) —खींचना
	स + ष्टृ ( सष्टरति ) ( भ्वा पर )— घटोना
	क्षु ( कर्म प्र क्षुद्यते )—क्षुति करना

प्रत्यय ।

तसिणि—स्यो ऽ

ोषम्—चुप

णीम्—चुप

प्रत्ययम् ( अव्य प्रति + अष्टन्  
न दिन )—प्रतिदिन

समासाद्य ( प्रेर सस् + आ + षट् +  
य )—पाकर



## पाठ २१ ।

वर्तमान कृदन्त ।

हरि पश्यन् मुच्यते—हरिको देखता हुआ मुक्त होता है ।

श्रवण प्रतीक्षमाणो वर्तते—वह समयकी प्रतीक्षा कर रहा है ।  
बाट जोह रहा है ।नन्दा पशव इव घता पश्यतो राक्षसश्च—राक्षसके देखते २ न  
वशीय पशुश्रीकी तरह मारे गये । ( पश्यतो राक्षसश्च—अनादरपूर्ण  
है । )दिनेषु गच्छत्सु सा कान्तिमपुष्यत्—ज्यों २ दिन बीतने लगे  
कान्तिको बढाते लगी ( दिनेषु गच्छत्सु—सतिसप्तमी है ) ।पत्तने विद्यमाने ग्रामे रतपरीक्षा—नगरके रहनेपर गावमें र  
परीक्षा ! ( पत्तने विद्यमाने—सतिसप्तमी है ) ।एषा देवी सखीभ्या पर्युपाम्यमाना तिष्ठति—यह रानी दो सखी  
सेवित होती हुई बैठी है ।अभ्युदयमिच्छन्निवृत्तय सर्वथा सेव्य —उन्नति चाहनेवालोंकी  
प्रकारसे उद्योगका सेवन करना चाहिये ।चिन्तयन्त्यपि खलु नास्य कारणमवगच्छामि—सोचती हुई भी  
इसका कारण नहीं समझती ।

परमोपदो धातुश्रीका वर्तमान कृदन्त रूप इस प्रकार बनता है —

भ्वादि—भू—भजत्, भू + श्र = भो + श्र = भज, भव + त् = भवत्  
विधादि—पुष्—पुष्यत्, पुष् + य = पुष्य, पुष्य + त् = पुष्यत्, तुदादि—  
विष्—विशत्, विष् + श्र = विश, विश + त् = विशत्, चुरादि—चुर—  
चोरयत्, चुर + श्रय = चोर् + श्रय = चोरय, चोरय + त् = चोरयत्

।शदि—अस्—सत्, अस् + अत् = स ( वर्तमानके प्र पु के व व को कृति ) + अत् = सत्, अशदि—या—यात्, या + अत् = या ( वर्तमानके प्र पु के व व की प्रकृति ) + अत् = यात् ।

धातुको विकरण लगाओ यदि प्रकृति अकारान्त हो तो त लगाओ, और यदि वह अकारान्त न हो तो वर्तमानके पयमपुरुषके बहुवचनकी जो प्रकृति होती है उसे अत् लगाओ ।

आत्मनेपदी धातुओंके वर्तमान कृदन्तके रूप इस प्रकार बनते हैं —  
 भादि—वृत्—वर्तमान, वृत् + अ = वर्त् + अ = वर्त, वर्त् + मान = वर्तमान, भ्वादि—सेव्—सेवमान, सेव + अ = सेव, सेव + मान = सेवमान, दिवादि—विद्—विद्यमान, विड + य = विद्य, विद्य + मान = विद्यमान, मृ—म्रियमाण, मृ + अ = म्रिय + अ = म्रिय, म्रिय + मान = म्रियमाण, चुरादि—आमन्वृ—आमन्वृयमाण, आमन्वृ + अय = आमन्वृय, आमन्वृय + मान = आमन्वृयमाण ।

वर्तमान यह शब्द स्वयं वर्तमान कृदन्त है और वह यह दिखाता है कि वृत् इत्यादि धातुओंसे वर्तमान कृदन्त किस प्रकार बनाये जाते हैं ।

धातुको विकरण लगाओ । यदि प्रकृति अकारान्त हो तो मान लगाओ, और यदि वह अकारान्त न होतो वर्तमानके प्र पु के बहुवचन में जो प्रकृति रहती है उसे आत् लगाओ । आत्के उदाहरण आने आवेंगे । ( २५ वा पाठ कर्मणि वत्० कृ० देखो । )

भू—भूयमान

चुर्—चोर्यमाण

कृ—क्रियमाण

तड—ताड्यमान ।

पुष—पुष्यमाण

कृ ( प्रेर. )—कार्यमाण

कर्मणि तथा भावे प्रयोगके वर्तमान कृदन्त कर्मणि तथा भावे प्रयोगके प्रकृतिको मान लगानेसे बनते हैं ।

	गच्छत्—पु ।			गच्छत्—न		
	ए व	द्वि व	व व	ए व	द्वि व	उ व
।	गच्छत्	गच्छन्ती	गच्छन्त	गच्छत्	गच्छन्ती	गच्छन्ति
हे	गच्छन्तम्	„	गच्छत	„	„	„
तु	गच्छता	गच्छद्भ्याम्	गच्छन्धि	ग्रेत एव	पु लिङ्गके	समान ।
व	गच्छते	„	गच्छद्भ्य			
प	गच्छत	„	„			
प	„	गच्छतो	गच्छताम्			
स	गच्छति	„	गच्छन्तु			
स	गच्छतु	गच्छन्तौ	गच्छत			

ये एव भगवत् वा वत् में समाप्त होनेवाले शब्दोंके समान होते हैं  
वेदल पु लिङ्गके प्रथमाके एकउचनमें भेद है । उसपर ध्यान दो ।

भ्रादि, गच्छत्—स्त्री—गच्छती ।

द्विवादि, कुप्यत्—स्त्री—कुप्यन्ती ।

चुरानि, क्षालयत्—स्त्री—क्षालयन्ती ।

मेर भाजयत्—स्त्री—भावयती ।

तुडादि, क्षिपत्—स्त्री—क्षिपती न्ती ।

श्रादादि, ज्ञात्—स्त्री—ज्ञाती-न्ती ।

वर्तमान कृदन्तके स्त्रीलिङ्गके रूप ईं के जोड़नेसे जनते हैं । भ्रादि,  
द्विवादि, चुरादि, तथा प्रेरणाक धातुने रूपोंमें इस ईंके पूर्व वृ लगता  
है, और तुडादिगणके तथा श्रादि धाकरान्त धातुओंमें वृ विकल्पसे  
लगता है ।

इच्छत् नपु म, द्वि, स—इच्छत् उच्छती-न्ती इच्छन्ति

यात् ” ” ” ”—यात् याती-न्ती यान्ति

पुमरूपके म, द्वि, तथा सम्बोधनाके द्विवचनके रूप स्त्रीलिङ्गकी  
प्रकृतिके समान होते हैं ।

वर्तमान—स्त्री—वर्तमाना—आत्मनेपदके वर्तमान कृदन्तके स्त्रीतिङ्ग-  
 ष्य आ के जोहनेसे बनते है ।

नन्दा पश्य इव हता पश्यतो राक्षसस्य—यह अनादरपण्यै वा सत-  
 के का उदाहरण है । इसका अर्थ है—‘राक्षसके देखते’ ‘पश्यतो राक्षसस्य’  
 अर्थ—‘राक्षसस्य पश्यत सत’ है । यह सत षष्ठी इस लिये कह्यते है  
 इसका अर्थ स्पष्ट करनेके लिये सत्का षष्ठीका एकउचन सत —  
 योग किया जाता है ।

पत्तने विद्यमाने और दिनेषु गच्छन्तु—सतिमहमीके उदाहरण है ।  
 का अर्थ है—पत्तने विद्यमाने सति, दिनेषु गच्छन्तु सन्तु ।



एव निवृत्त प्रहरन् कथं न लज्जसे ।

कथमेव प्रतापता व सहस्रधा न दीर्घमाया जिह्वया ।

अपि कुशला तातस्य ? क्षेममस्माकम् । युष्माकं च कुशलम् ?

इदानीं विशेषतो भजद्दर्शनात् ।

अहो परा कोटिसधिरोहति प्रमोद पौराणाम् ।

तापे कुतस्त्रय्यशुभ प्रजानाम् ।

उत्तिष्ठमानस्तु परो गोपेक्ष्यो भूतिमिच्छता ।

वक्त्रे विद्यौ वद कथं वावसायसिद्धि ।

यस्मिन्जीवति जीवन्ति वदत सोऽनु जीवति ।

सता सद्भिः सद्भिः कथमपि हि पुण्येण भवति ।

यिकमति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीक

द्रवति च हिमरश्मावुदते चन्द्रकात् ।

मूर्ध्नि तपत्यावरणाय दृष्टे

कल्पेत लोकस्य कथं तमिच्छा ।

एव जीवित त्वमसि मे धृश्य द्वितीय

एव कौमुदी नयनयोरसुत त्वमङ्ग ।

जीवत्सु तातपादेषु नद्ये दारपरिम्रहे ।  
 मातृभिर्द्विष्यमानानां ते हि नो द्विवधा गता ॥  
 असृत शिशिरे वद्धिरमृत प्रियदर्शनम् ।  
 अमृतं राजसमानममृत क्षीरभोजनम् ॥  
 उपकारिषु य साधु साधुषु तस्य को गुणः ।  
 अपकारिषु य साधु स साधु सङ्गिषु त्वपते ॥  
 कूलन्त रामरामेति मधुर मधुराक्षरम् ।  
 आसद्य कविताशाखा वन्दे वाल्मीकिकौमिलम् ॥

क्या सेवा होगी कि म काशी जाऊ और गङ्गाको तटपर रहूँ ।  
 जो लोग अपना कर्तव्य नहीं करते, नष्ट होते हैं ।  
 इन मर्दाने पण्डितोंका बहुत आदर किया ।  
 हम वैयाकरणको ज्ञायसे क्या काम है ?  
 राजाने कहा, "रानी, क्या यह दुःख तुमसे मटा जा सकता है ?"  
 क्या तुमको झूठ कहते लज्जा नहीं आती ?  
 जब वह राजा था, बलौ लोग दुबलोंको नहीं बताते थे ।  
 ( सतिमसमीक्षा प्रयोग करो ) ।  
 यद्यपि मुझ देख रहा था, तथापि द्विष्यसे अपराध किया गया ।  
 ( सत षष्ठीका प्रयोग करो ) ।

सजाशब्दः ।

अद्भ ( अद्भम् ) न — शरीर	} अवसर ( अवसर ) पु. — योग्य स
अमृदय ( अमृदय ) पु — वर्णनति	
अशुभ ( अशुभम् ) न — अशुभ	
	} आवरण ( आवरणम् ) न — टक
	} कविताशाखा ( कर्मधा०, कर्जिता

१ । गान तथा संमान पुलि, ई, यद्यपि यथा न म आया २ ।  
 गानम् रूपरिमाण माप अथवा इगाना

स्त्री, शाखा स्त्री) — कविता —  
 स्त्री शाखा  
 न्ति ( स्त्री ) — मुग्धरता  
 राय ( कारणम् ) न — हेतु  
 गल ( कुशलम् ) न — सुख  
 ोटी ( स्त्री और कोटी ) —  
 चरम सीमा  
 ोमुदी ( स्त्री ) — चादनी  
 ीर ( क्षीरम् ) न — दूध  
 ीम ( क्षेम — मम ) पु , न — कुशल  
 ुण ( गुण ) पु गुण, उपयोग  
 चन्द्रकान्त ( चन्द्रकान्त ) पु — एक  
 मणि, जो चन्द्रकिरणोंको सम्बन्धसे  
 पमीलता है ।  
 षिखा ( स्त्री ) — रात  
 तातपाद ( तातपादा ) पु ( तात,  
 पु पिता, + पाद — पु चरण,  
 यह एक आदरायक शब्द है,  
 जो बहुवचनमें प्रयोग किया  
 जाता है ) — पूज्य पिता ।  
 तापस ( तापस ) पु — तपस्वी  
 शन ( दर्शनम् ) न — देखना  
 र ( दारा — पु यह सर्पदा व छ  
 ही में प्रयोग किया जाता है )  
 — स्त्री  
 दिवस ( दिवस ) पु — दिन

दृष्टि ( स्त्री ) — दृष्टि, नजर  
 देवी ( स्त्री ) — रानी  
 नन्द ( नन्द ) पु — पाटलिपुत्रका  
 राजा । नन्द नौ भाइ थे  
 नाथ ( नाथ ) पु — प्रभु  
 पतङ्ग ( पतङ्ग ) पु — मय  
 परीक्षा ( स्त्री ) — परीक्षा  
 पशु ( पु ) — पशु [कमल  
 पुण्डरीक ( पुण्डरीकम् ) न — श्वेत  
 पुण्य ( पुण्यम् ) न — पुण्य  
 पौर ( पौर ) पु — नगरवासी  
 प्रमोद ( प्रकृष्टासौ मोदद्य, प्रादि-  
 समा०, प्र = बडा + मोद — पु  
 = हर्ष) — पु बडा हर्ष  
 भूति ( स्त्री ) — ऐश्वर्य  
 भोजन ( भोजनम् ) न — भोजन  
 राक्षस ( राक्षस ) पु — नन्द राजाका  
 मन्त्री  
 वहि ( पु ) — अग्नि  
 वात्मीकिकोकिल ( वाल्मीकि-  
 कोकिल ) पु वाल्मीकि मुनि  
 + कोकिल पु, कोयल —  
 वात्मीकिरूपी कोयल  
 त्रिधि ( पु ) — परमेश्वर, ब्रह्मा, देव  
 त्रिशिर, त्रिशिर-रस ) पु., न —  
 जाडेका मृत, माघ तथा  
 फाटगुन मास

सप्तौ ( स्त्री )—सत्तली  
 सङ्ग ( सङ्ग ) पु —साथ  
 सङ्घ ( सङ्घ ) पुं—विजाघ  
 समान ( समान ) पु —आदर  
 माध ( न )—अच्छापन

द्विमरश्मि ( पु ) बहु०, द्विम, न  
 द्विम, द्विशे० ठटा + रश्मि  
 फिरण, वर द्विशेके किरत  
 टट्टे है, चन्द्रमा

### विशेषण ।

अपकारिन्—अपकार वा बुराई  
 करनेवाला  
 उपकारिन्—भलाई करनेवाला  
 उपेक्ष—अनादरणीय  
 चिन्त्यमा ( कर्म वर्तमा कृ  
 चिन्त्—त्तु )—जिसकी चिन्ता  
 की जाती है  
 दीर्घ ( वृ + च् पर + त )—फटा  
 हुआ  
 नूतन तथा नूत—नया  
 पर ( सर्वना )—१ दूसरा २ बड़ा  
 पर्युपास्यमान ( स्त्री० पयु पास्यमाना,

परि + उप + आम् का वर्त कृ )  
 —सेवित होती हुई  
 प्रतीक्षमाण ( प्रति + ईक्ष्—म्वा प्रा  
 का वर्त कृ ) वाट जोड़ता  
 हुआ, आसरा देखता हुआ  
 बहु—बहुत \*  
 भवत् ( सर्वना प्रथम पुरुष ) प्राप  
 वरु—ठेढ़ा  
 सत् ( अन्—अ का वर्त कृ )  
 होता हुआ, अच्छा  
 साधु—अच्छा  
 सेव्य ( सेव् + य )—सेवाके योग्य

### धातु ।

अधि + ष्ट् ( अधिरोहति ) ( म्वा  
 पर )—उगना  
 उद् + ख्या ( तिष्ठ् ) ( उत्तिष्ठते ) म्वा  
 था )—उन्नत होना

कूज् ( कृजति ) ( म्वा पर )—चढ़चढ़ा  
 कृप् ( कृपते ) ( म्वा प्रा )—यह  
 चतुर्थीके साथ जाता है )—  
 समर्थ होना ।

(द्रवति) (म्वा पर) — गलना,  
पिघलता  
+ लप् (प्रलपति) (भ्वा पर) —  
अल्पष्ट बोलना

लज्ज (लज्जते) (तु आ) — लजाना  
वि + क्स् (विकर्षति) (भ्वा पर)  
— खिलना

अव्यय ।

प्रम् — सेवा  
यस्यपि — किसी प्रकार, बड़ी  
कठिनतासे  
निर्घृणम् (बहु०, निरु = निगत —  
निकल गया हुआ + घृणा स्त्री  
दया, निर्गता घृणा यस्मात्  
कर्मणो यथा स्यात्तथा) — जिससे  
दया निकल गयी है, निर्दय

मधुराक्षरम् — ( बहु०, मधुर विणे०-  
मीठा + अक्षर — न वर्ण, मधुरा-  
ख्यक्षराणि यस्मिन् कर्मणि  
यथा स्यात्तथा ) — मीठे शब्दोंमें  
विशेषतः — अधिक  
सहस्रधा — हजार प्रकारसे

पाठ २२ ।

वश् तथा ईयस् से अन्त होनेवाले शब्द ।

विद्वान् लिखति = विद्वान् लिखति — पण्डित लिखता है ।  
न किमपि त्रिदुषामगमम् — पण्डितोंको कोई वस्तु अगम्य नहीं है ।  
मतिरेव बलाद् गरीयसी — बुद्धि ही बलसे बड़ी है ।  
द्वारकामध्यधुषो लनच या सम्पदस्ता कनसीऽप्यभूमि — द्वारकामें

१। नपु द्वि एकवचनान् निरीक्षणका रूप क्रियाविशेषणकी तरह प्रयोग किया जाता है। विशेष लिखानेमें यस्मात् कर्मणो यथा स्यात्तथा, वा यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा कहा जाता है, जिससे इसका क्रियाकी साथ अन्य मान्य होता है।

२। उप, चन, अधि, आ प्रथक वम धातुका आभार कर्म जाता है।



रचनेवाले लोगोंको जो सम्पत्तिया थी वे मनको भी अग्राम्य है (अर्थात् उनको कल्पना भी नहीं की जा सकती) (जन बहुवचनको अर्थमें है)।

विद्वान् सर्वत्र पूज्यते—विद्वान् सब ठौर पूजित होता है।

विद्वद्भिस्तु निर्णय कार्य—इस विषयमें पण्डितोंसे निर्णय लिखा जाना चाहिये।

इस पाठमें वस् तथा इयसत्त शब्द दिये गये हैं।

विद्वस्—पु० ।

सेदिवस्—पु० ।

	ए व	द्वि व	व व	ए व	द्वि व	व व
प्र	विद्वान्	विद्वासौ	विद्वास	सेदिवान्	सेदिवासौ	सेदिवा
द्वि	विद्वासम्	”	विदुष	सेदिव्वासम्	”	सेदुष
तृ	त्रिदुषा	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भि	सेदुषा	सेदिवद्भ्याम्	सेदिव्भि
च	विदुषे	”	विद्वदभ्य	सेदुषे	”	सेदिव्भ्य
प	विदुष	”	”	सेदुष	”	”
ष	”	विदुषो	त्रिदुषास्	”	सेदुषो	सेदुषास्
स	विदुषि	”	विद्वत्सु	सेदुषि	”	सेदिव्त्सु
स	विद्वन्	विद्वासौ	विद्वास	सेदिवन्	सेदिवासौ	सेदिवा

विद्वस—न

सेदिवस्—न ।

	ए व	द्वि व	व व	ए व	द्वि व	व व
प्र, द्वि, स	विद्वत्-इ	विदुषो	विद्वाधि	सेदिवत्-इ	सेदुषो	सेदिवाधि

शेष पु० के समान ।

शेष पु० के समान ।

विदुषी स्त्री (नदीके समान)

सेदुषी स्त्री (नदीके समान)

श्रेयस्—पु० ।

	ए व	द्वि व	व व
प्र	श्रेयान्	श्रेयासौ	श्रेयास
द्वि	श्रेयासम्	”	श्रेयस

	ए व	द्वि व	व व
वृ	श्रेयसा	श्रेयोभ्यास्	श्रेयोधि
स	श्रेयसि	श्रेयसो	श्रेय सु—श्रेयस्सु

श्रेयस्—न० ।

	ए व	द्वि व	व व
प्र, द्वि, स	श्रेय	श्रेयसो	श्रेयासि

तत् + लिखति = तल्लिखति, ग्रन्थान् + लिखति = ग्रन्थाल्लिखति—जउ  
 त्त्वानोय वर्णको वाइ ल् छोता है, तो उसको ल् छोता है, और यदि  
 इ इन्तखानीय अनुनासिक हो तो उसको अनुनासिक ल् छोता है ।

लघु छोटा—उद्युत्तर—लघीयस् = उससे छोटा—लघुत्तम—लघिष्णु =  
 उससे छोटा ।

गुरु—बड़ा—गुरुत्तर—गरीयस् = उससे बड़ा—गुरुत्तम—गरिष्णु =  
 उससे बड़ा ।

( इयस् और इष्णुके पूर्व गुरुको ग् छोता है )

महत्—महीयम्—महिष्णु ।—

विशेषणोंको इयस् तथा इष्णु प्रत्यय लगानेसे आपेक्षिक रूप बनते है ।  
 पर तथा तम भी इसी अर्थके दूसरे प्रत्यय है । इयस् तथा इष्णु पर रचनेपर  
 अन्तिम स्वर वा उपात्य स्वरको साथ अन्तिम व्यञ्जनका लोप होता है ।

स्त्री गरीयसी, गरिष्ठा, गुरुतरा, गुरुत्तमा ।

वत्तवत् वलिन्, बलीयम् वलिष्णु—इयस् तथा इष्णुके लगानेपर वत्  
 तथा इन् इत्यादि मत्वर्णीय (स्वामित्ववाचक) प्रत्ययोंका लोप हो जाता है ।

ऊपरके रूपोंके देखनेसे ये नियम निकलते है —

विद्वस् + स = विद्वन् स स् = विद्वान् स = विद्वान्—

१। अन्तिम व्यञ्जनसे पूर्व सर्वनामस्थानमें न् आता है और न् को पूर्वके स्वरको दीर्घ होता है ।

विद्वस\_ + औ = विद्वन्स\_ + औ = विद्वान्स\_ + औ = विद्वासो ।

२। न्, जत्र पदके अन्तमें ण हो, और उसके आगे श, ष, व हो, तो अनुस्वारमें बदल जाता है ।

विद्वस\_ + अस\_ = विद्वस\_ + अस् = विद्वस\_ ,

सेदिवस\_ + अस\_ = सेदिउस\_ + अस् = सेदुस\_ + अस् = सेदुस\_ -

३। भ अङ्ग के अन्तके वस्को उस\_ होता है । वस्को पूर्वके लोप होता है ।

विद्वस\_ + भ्यास् = विद्वद् + भ्यास् = विद्वद्भ्याम् ,

विद्वस\_ + सु = विद्वत् + सु = विद्वत्सु ।

४। यदि कोई अघोष वर्ण आगे हो, तो पदके अन्तके सुको होता है, और यदि कोई घोष वर्ण आगे हो तो पदके अन्तके सुकं होता है ।

यद्य स्वरण रखना चाधिषे कि नपु सककी प्रथमा, द्वितीया, सम्बोधन की ए व की प्रकृति पद है, नपु सककी प्रथमा, द्वितीया, सम्बोधन की द्वि व की प्रकृति भ-अङ्ग है, तथा नपु सककी प्र द्वितीया, और सम्बोधनके बहुवचनके प्रथम सर्वनामस्थान है । वद्य ङ जिसको स्त्री प्रथम ङ लगाया जाता है, भ-अङ्ग है ।

एते वयमयोध्या प्राप्ता ।

आर्षे ! दृश्याताम् । द्रष्टव्यमेतत् ।

आर्षे ! यदि नेपथरविधानमप्रक्षित तर्क्षितस्वावदागम्यताम् ।

हे विद्वन् ! कि वस्तु त्वया गुरवे प्रदेयमिति तमपृच्छद्राजा ।

एतान् विद्याय समान्यत्र अनुवृद्धिरेव नास्ति ।

अथ सा तनुभवतो क्षिमास्वस्य राजर्षे पत्नी ?

<p>तु ( प्र + दिग्—तु पर + त ) —भेजा हुआ</p> <p>( प्र + दा का कृत्व )—देने योग्य</p> <p>त्मन् ( बहु०, सद्यत् + आत्मन् पु )—जिसका मन बड़ा है, उदारचित्त, धार्मिक</p>	<p>लनित ( लक्ष्—च्, पर + त )— देखा गया</p> <p>श्रियम्—अधिक प्रशंसाके योग्य</p> <p>खल्य ( सु—बहुत + खल्य )—बहुत छोटा</p>
---	---

धातु ।

<p>( ईर्त्त—अ आत्म कर्म० ईर्त्तते )—बोलना</p> <p>( कर्म०, सृष्टते )—पकडना</p>	<p>स्या ( तिष्ठति—भ्या पर )—<sup>२</sup> अथ के साथ ( आत्म )—बड़ा रहना</p>
---	---

अव्यय ।

<p>वैतु—दूसरी जगह</p> <p>ई—तो</p>	<p>विद्याय ( वि + द्या का अव्यय भूत कृन्त )—छोड़कर, विद्या</p>
-----------------------------------	--

पाठ २३ ।

सहस्रावाचक ।

( १ से १० तक । )

विधवाया पुनरुद्वाह सशास्त्र इत्येको मयन्ति, अपरे पुन शास्त्रप्रतिषिद्ध  
त—

कोई लीग विधवाका पुनर्विवाह शास्त्ररुम्मत है ऐसा कहते है।  
र लीग तो वह शास्त्रसे निषिद्ध है ऐसा कहते है ।

सामानोति त्वयी वेदा त्वयाण वेदानां वद्वय शाखा सन्ति—  
और साम सेमे तीन वेद है तीन वेदोंकी बहुतसी शाखाएँ है ।

## सनाशब्द ।

श्रमिर्वाच ( स्त्री )—रुचि  
 श्रमिर्पेक (श्रमिर्पेक) पु राजगद्दी  
 श्रभूमि ( स्त्री नञ्०, )—श्रम्भान  
 (मनसोऽप्यभूमि —मनको भी  
 श्रगम )

श्राकार ( श्राकार ) पु —श्राकृति  
 श्राभरण ( श्राभरणम् ) न—मूषण  
 क्लेश ( क्लेश ) पु —दुःख  
 क्षमा ( स्त्री )—शान्ति  
 चित्त ( चित्तम् ) पु —मन  
 द्वारका ( स्त्री )—द्वारका  
 निर्णय ( निर्णय ) पु—निश्चय

नेपथ्य ( नेपथ्यम् ) न —वस्तु, नटका  
 वेध, रङ्गभूमिको पीछेकी जगह,  
 जहा नट लोग वेध बताते हैं ।

पटुता ( स्त्री )—कुशलता

प्रायश्चित्त ( प्रायश्चित्तम् ) न ।  
 = तप, उपवास + चित्त-नः  
 इच्छा, मनका निश्चय) न प्रा  
 यश्चित्त, यथाताप (चित्त वा  
 शब्द श्रागे रहनेपर प्रायका  
 हो जाता है । )

प्राण ( प्राणम् ) पु न भाड, भडक  
 मुहूर्त ( मुहूर्तम् ) पु, —न  
 युध् ( स्त्री )—युद्ध, लड़ाई  
 विक्रम ( विक्रम ) पु —पराक  
 विधान ( विधानम् ) न करना, प्र  
 विभ्रम ( विभ्रम ) पु —सम्भ्रम  
 मनका क्षोभ

व्यसन ( व्यसनम् ) न —सङ्कल्प  
 व्रत ( व्रतम् ) न —सङ्कल्प  
 श्रयस् ( न )—कल्याण  
 सदस् ( न )—सभा

## विशेषण ।

श्रगम—जाननेको अशक्य  
 अधिष्ठासिधस्—जो पा चुका  
 अधूपिवम्—जो रह चुका  
 श्रवसित ( श्रव + सो + त )—समाप्त  
 श्राशास्य—श्राणीवाँदसे पानेको योग्य  
 श्राहृत ( श्रा + हृ + भ्रा पर + त )—  
 गुताजा जुगा

किमाख्य ( बहु०, कि + आख्य  
 स्त्री —नाम, का आख्या य  
 किमाख्य )—किस नामक  
 तप्त ( तप्—भ्रा पर + त )—  
 द्रष्टव्य ( दृश्—का कृत्य )—देखने  
 प्रक्षिप्त ( प्र + क्षिप्—हु पर  
 —भेजा जुगा

३ ( प्र + दिश्—तु पर + त ) —भेजा हुआ	लनित ( लक्ष्—चु पर + त )— देखा गया
४ ( प्र + दा का कृत् )—देने योग्य	अंधघ—अधिरु प्रशसाको योग्य
५ ( बहु०, सद्यत् + आत्मन् 'पु )—सिक्का मन बढा है, उदारचित्त, धार्मिक	खल्य ( सु—बहुत + अल्य )—बहुत छोटा

धातु ।

६ ( ईत्—अ आत्म कर्म० ईर्यते )—खोजना	ख्या ( तिष्ठति—भ्वा पर)— <sup>१</sup> अथ को माथ ( आत्म )—खडा रहना
७ ( कर्म०, गृह्यते )—पकडना	

अधय ।

८ ( वि + द्या—तु पर + त ) —दूसरी जगह —तो	विद्याय ( वि + द्या का अधय भूत कृदन्त )—क्रीड़कर, सिखा
--	--

पाठ २३ ।

सङ्ख्यावाचक ।

( १ से १० तक । )

विधवाया पुरस्ताद् सशास्त्र इत्येके मन्यन्ते, अपरे पुन शास्त्रप्रतिषिद्ध

कोइ लोग विधवाका पुनर्विवाह शास्त्रस्मृत है ऐसा कहते है,  
र लोग तो वह शास्त्रसे निषिद्ध है ऐसा कहते है ।

अथानु सामानोति त्रयो वेदा त्रयाणां वेदानां वक्ष्य शाखा सन्ति—  
क, यजु और साम ऐसे तीन वेद है तीन वेदोंकी बहुतसी शाखाएँ है ।

\* एम्, अथ, प्र, वा रि पू। २५नेपर स्याधातु श सनेपनी रीता ।

आप हमको अपवित्र क्यों समझते हैं ?

मैंने फलोंको पाच बार गिनोये लिये उसे कष्टा ।

रघुवशकी दमसे अधिक सर्ग है ।

आदिमें केवल चार वर्ण थे ।

सज्ञाशब्द ।

अग्रजन्मन् पु ( बहु०, अग्र-विशे०, उत्तम, जन्मन् न जन्म )—

जिसका जन्म उत्तम है, ब्राह्मण

अध्यापन ( अध्यापनम् ) न —पढ़ाना

अयन ( अयनम् ) न —मार्ग

अरोगिता ( स्त्री )—आरोग्य

आश्रम ( आश्रम ) पु —जीवनको

एक अश्रया । ब्रह्मचर्य,

गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ, तथा मन्दास

जीवनकी चार अश्रयाएँ हैं ।

आखाद ( आखाद ) पु —खाद

उरस ( न ) छाती, हृदय

ऋच ( स्त्री ) ऋग्वेद

करप ( कल्प ) पु —एक वेदका अङ्ग

कार्तिकेय ( कार्तिकेय ) पु —

शिवपुत्र, जिसको छ मुख है ।

काथ ( काथम् ) न —कविता

कौशेयी ( स्त्री ) दशरथकी स्त्री,

भरतकी माता

कौसल्या ( स्त्री ) दशरथकी स्त्री

रामकी माता

चय ( चय ) पु —समूह

छन्दसा चय —छन्द शास्त्र

जानु ( न ) घुटना

जीवलोक ( जीवलोक ) ( पु, बहु० )

जीव पु प्राणी, लोक पु जगत्

प्राणियोंका जगत्

ज्योतिष ( न ) तारा ( ज्योतिषास्य

—ज्योतिष - शास्त्र, जिस

ताराओंकी गति वर्णित है )

तनु तनू ( स्त्री ) शरीर

ताम्र ( ताम्रम् ) न —ताम्र

दर्शन ( दर्शनम् ) न —शास्त्र

दान ( दानम् ) न —देना

देवदत्त ( देवदत्त ) पु, —किसीका

देश ( देश ) पु —देश

द्विजाति ( पु -बहु०, द्वि-दो,

स्त्री, जन्म) जिसको दो जन्म

—ब्राह्मण, क्षत्रिय, तथा वैश्य

द्विरेफ ( द्विरेफ —पु बहु०,

रेफो यस्य स । अमरशब्द

रेफो स ) अमर

क्त ( निरुक्तम् ) न —शब्द—  
 व्युत्पत्तिशास्त्र  
 ( न्याय ) पु —गौतमकृत तर्क  
 शास्त्र  
 द्वाद ( पुनरुद्वाद )-पु पुनर-फिर,  
 उद्वाद पु -विवाद—पुनर्विवाद  
 ङ ( प्रणाम ) पु —नमस्कार  
 ङ ( प्रतिग्रह ) पु —लेना  
 ( बलम् ) न —१ शक्ति,  
 २ सैन्य  
 गंसा ( स्त्री ) जैमिनिकृत,  
 षड्दर्शनोर्मि एक दर्शन  
 ङ ( मादक ) पु —एक प्रकारकी  
 मिठाई  
 न ( यजनम् ) न —याग  
 ष ( न ) यजुर्वेद  
 ङ ( यशदम् ) न —लक्षा  
 ङ ( योग ) पु —षड्दर्शनोर्मि एक  
 दर्शन, पतञ्जलिकृत  
 ङ ( रङ्ग रङ्गम् ) पु , न —रंगा  
 ङ ( रष ) पु —पारा  
 ङ ( रूपम् ) न —चादो  
 ङ ( लाघण्यम् ) न —शोभा,  
 श्रद्धाकान्ति  
 ङ ( लोहम् ) न —लोहा  
 ङ ( ऋष ) पु —१ जात, २, अक्षर

विधवा ( स्त्री, बहु०, वि उपसर्ग  
 विना, धव पु -पति ) स्त्री,  
 जिषका पति मृत है  
 विषवृत्त ( विष-न + वृत्त पु ,  
 तत्पु० ) विषयुक्त वेद  
 वेदाङ्ग ( वेदाङ्गम् ) न —( तत्पु०,  
 वेद पु वेद + अङ्ग न भाग )  
 वेदका एक भाग  
 वेदान्त ( वेदान्त ) पु —वेदान्त-  
 दर्शन, षड्दर्शनोर्मि एक दर्शन,  
 व्यासकृत  
 वैशेषिक ( न ) षड्दर्शनोर्मि एक  
 दर्शन, कणादकृत  
 व्याकरण ( व्याकरणम् ) न —शब्दशास्त्र  
 शाखा ( स्त्री )—वेदकी एक शाखा  
 शिक्षा ( स्त्री )—त्रयीचरणशास्त्र  
 शिरष् ( न )—शिर  
 षङ्ग ( षङ्ग ) पु —साथ  
 साख्य ( साख्यम् ) न —षड्दर्शनोर्मि  
 एक दर्शन, कपिलकृत  
 सामन् ( न )—सामवेद  
 सौष ( सौषम् ) न —सौषा  
 सुजन ( सुजन ) पु , प्रादिसमाष,  
 सुष्टु छन )—सत्जन  
 सुमित्रा ( स्त्री )—लक्ष्मणकी माता  
 स्वण ( स्वणम् ) न —सोना



## विशेषण ।

अर्पकर ( स्त्री अर्पकरी ) द्रव्य	वशा—वशसे रहनेवाला
उत्पन्न करनेवाला	विद्वस—जाननेवाला, पण्डित
एक एक ( बहु व में ) कुक्क	शास्त्रप्रतिषिद्ध ( तत्पु०, शास्त्र न +
गरीयम्—( अधिक बडा )	प्रतिषिद्ध = प्रति + सिधि +
प्रपन्न ( प्र + पद्—दि प्रा + त ) प्राप्त	पर + त )—शास्त्रसे निषिद्ध
प्रियवादिन् ( स्त्री प्रियवादिनी )—	सशास्त्र ( बहु०, स = साय, शा
सधुर बोलनेवाला	न )—शास्त्रसमत
बलीयम् ( स्त्री बलीयसी ) अधिक	साष्टाङ्ग ( बहु०, स + अष्टन
शक्तिमान् )	अङ्ग, न )—आठ अङ्गोंके स
रसवत्—स्वादयुक्त	सेदिवस—छो बैठ चुका

## धातु ।

रुच् ( रोचते—भवा आ )—पसन्द	चतुर्थी होता है । तुभ्य रो
करना ( यह चतुर्थीके साय	—तुमको पसन्द है ।
आता है ) पसन्द करनेवालेसे	

## अव्यय ।

अध्यासितुम् ( अधि + आस +	कोवलम्—कोवल
तुम् )—जैठना	नित्यम्—सर्वदा
इदानीम्—अब	

## पाठ २४ ।

## अनियत सन्वाचक ।

अल्पा काण—आखसे काना ।

सस्मात् सखा त्वमसि यस्मिन् तत्तवैव—इस लिये तुम मित्तु हो, जो मेरे  
वह तुम्हारा ही है ।

। भावेन परिणत क्षीरमेतत्—रक्षीके रूपमें बदला हुआ यह दूध है ।  
 सेवा स्वीणा परमो धर्म —पतिकी सेवा स्त्रियोंका परम कर्तव्य है ।  
 श्री रूपगर्विताया श्रिय प्रत्यादेश =ऊत्रश्री रूपसे गवित लक्ष्मीको  
 दवानेवाली है ।

पूना कौर्ति सर्वास्तु टिक्तु प्रसरति—सज्जनोका यश सत्र दिशाओंमें  
 फैलता है ।

शाली पन्थान सन्तु—तुम्हारे माग सुखजनक हों ।

। पाठमें पति, सखि, श्री, स्त्री, अत्ति, पयिन्, तथा दिग् शब्दके रूप दिग्  
 गये हैं ।

१। पति शब्द को वृ, च, प, प, तथा सप्तमीके एकवचनसे रूप क्रम-  
 -पया, पत्ये, पत्यु, पत्यु, तथा पत्यौ होते हैं, शेष रूप हरिके समान होते हैं ।

२। भूपतये, भूपते, इत्यादि—भूपति महीपति, इत्यादिम समासके  
 त्तमें रहनेवाले पतिशब्दके रूप नियतरूपसे होते हैं ।

सखि—पु ।

	ए व	द्वि व	व व
प्र	सखा	सखायो	सखाय
द्वि	सखायम्	”	सखीन्
वृ	सखा	सखिभ्याम्	सखिभि
च	सखे	”	सखिभ्य
प	सख्यु	सखिभ्याम्	सखिभ्य
प	”	सख्यो	सखीनाम्
स	सख्यौ	”	सखिपु
स	सखे	सखायो	सखाय

३। सखिके पहिले पाच रूप—सखा, सखायो, सखाय, सखायम  
 ण्यो हैं, शेष रूप पतिके समान होते हैं ।

## स्त्री—स्त्री ।

	ए व	द्वि व	त्र व
प्र	स्त्री	स्त्रियौ	स्त्रिय.
द्वि	स्त्रीम्—स्त्रियम्	”	स्त्री—स्त्री
तृ	स्त्रिया	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभि
च	स्त्रियै	”	स्त्रीभ्य
प	स्त्रिया	”	”
प	”	स्त्रियो.	स्त्रीणाम्
स	स्त्रियाम्	”	स्त्रीषु
स	स्त्रि	स्त्रियौ	स्त्रिय

४ । स्त्रादि प्रत्यय आगे रहनेपर स्त्रीको इको इय् होता है । इय् द्वितीयाके एकवचनमें स्त्रीम् वा स्त्रियम्, तथा बहुवचनमें स्त्री । स्त्रिय होता है ।

## श्री—स्त्री ।

## शू—स्त्री ।

	ए व	द्वि व	त्र व ।	ए व	द्वि व	त्र व
प्र	श्री	श्रियो	श्रिय	शू	शुवौ	शुव
द्वि	श्रियम्	”	”	शुवम्	”	”
तृ	श्रिया	श्रीभ्याम्	श्रीभि	शुवा	शूभ्याम्	शूभि
च	श्रिये-श्रिये	”	श्रीभ्य	शुवे-शुवै	”	शूभ्य
प	श्रिय श्रिया	”	”	शुव-शुवा	शूभ्याम्	शूभ्य
प	”	”	श्रियो	”	”	शुवाम्
			श्रीणाम्			शूणाम्
स	श्रिय श्रियाम्	”	श्रीषु	शुवि शुवाम्	”	शुषु
स	श्री	श्रियो	श्रिय	शू	शुवौ	शुव

५। \*ओ, औ, ए, धू, तथा धू इत्यादि शब्दोंके रूपोंमें अधोलिखित उर्तन होते हैं ।

(अ) प्रथमाके ए व में स् का लोप नहीं होता ।

(ब) खरादि जिभक्तियोंके पूर्व इ को इय्, तथा ऊ को उव् होता ।

(क) च, प, ष, तथा सप्तमीके एकवचनमें और ष को बहुवचनमें रूप होते हैं । एक नियतरूपसे प्रत्ययोंके जोड़ने पर बनते हैं, र हूँसे नदी तथा धधूके समान चलते हैं ।

अत्ति—न ।

दिश—स्त्री ।

ए व	द्वि व	ब व	ए व	द्वि व	ब व
अत्ति	अत्तिणी	अत्तीणि	दिक् ग्	दिशी	दिश
"	"	"	दिशम्	"	"
अदशा	अत्तिभ्याम्	अत्तिभि	दिशा	दिग्भ्याम्	दिग्भि
अदशे	"	अत्तिभ्य	दिशे	"	दिग्भ्य
अदश	"	"	दिश	"	"
"	अदशो	अदशाम्	"	दिशो	दिशाम्
अदश अत्ति	"	अत्तिषु	दिशि	"	दिक्षु
अत्ति अत्ते	अत्तिणी	अत्तीणि	दिक् ग्	दिशी	दिश

६। तृतीयाके एकवचनसे लेकर खरादि प्रत्यय पर रहनेपर अत्ति, अत्ति, सक्रिय, तथा अत्तिकी अत्तन्, दधन्, सक्यन् तथा अत्तन् सभङ्गना वाच्ये ।

० अवीलक्ष्मीतरीतन्नीधीत्रीणामुदाहृत ।

समानामेव शब्दानां सुलोपी न कदाचन ॥

इकारान्त शब्दोंमें अवी ( रजखला स्त्री ) लक्ष्मी, तरी ( मौका ), तन्नी ( एक वाय ), की, तथा त्रीके प्रथमाके एकवचनमें स का लोप नहीं होता ।

दिक्, दिग्भ्याम्, दिक्षु, दृक्, दृक्षु—

७। दिग् तथा सादृग्, त्वादृग्, इत्यादि दृग्में समास होतया शब्दोंका अन्तिम श्, व, ङनादि प्रत्यय पर रचनेपर, क्में बदल जाता है।

पयिन्—पु ।

	ए व	दि व	व व
प्र	पन्या	पन्यानौ	पन्यान
द्वि	पन्यानम्	”	पथ
तृ	पया	पयिभ्याम्	पयिभि
च	पये	”	पयिभ्य
प	पथ	”	”
ष	”	पथो	पथाम्
स	पयि	”	पयिषु
स	पन्या	पन्यानो	पन्यान

८। पयिन् को पहिले पाच रूप—पन्या, पन्यानौ, पन्यान, पन्यानम्, पन्यानौ—है। इसका भ अङ्ग पथ है।

९। स्वर्गपथ—स्वर्गका मार्ग। समासको अन्तमें पयिन्को होता है।

श्रुवोर्भङ्ग क्रोध मूचयति ।

अथ पन्या सायोजसुपतिपुते ।

स्त्रीभि कस्य न खण्डित भुवि मन ।

न्यायात्पथ प्रविचलन्ति पद न धोरा ।

अनिर्वद श्रियो मूलम् ।

दुग्ध च शर्करा चैव घृत दधि तथा मधु इति पञ्चासुतमिदम् ।

आ पाप ! कथमेव गदतो मामुत्तमाङ्ग न ते पिपतित वज्रमवर्ष

वा सद्यमूधा न जिह्वा विह्वलता गता वा न वाणी नष्टानि वा नाक्षराणि ।

१. नि ( वसन्त ) पु — उद्यत् ऋतु,  
 २. चेतु श्रीर वैशाख  
 ३. णी ( स्त्री ) बोलौ  
 ४. लविपत ( न वि + लट् + त ) —  
 ५. अस्पृ वाणौ  
 ६. पक्षा ( स्त्री ) — घे लनेवाले कौ  
 ७. इच्छा  
 ८. इदलता ( स्त्री ) व्याकुलता  
 ९. र्का ( स्त्री ) — चौकी  
 १०. गी ( स्त्री ) लक्ष्मी  
 ११. र्खि ( पु ) — मित्र  
 १२. माम ( सप्तम ) पु — समाप्त  
 १३. र्भौम ( सप्तम ) पु — सन्नाट्

साधु ( पु ) — सज्जन  
 सितशर्मरा ( स्त्री ) मिशरी  
 मूनु ( पु ) — पुत्र  
 ससर्ग ( सप्तम ) पु — साय  
 सधिता ( स्त्री ) — मन्थि वा अचरोंका  
 लोड  
 सम्पकं ( सम्पकं ) पु — साय  
 साक्षेन ( साक्षेन ) पु — अयोध्या  
 सेजा ( स्त्री ) — सेजा  
 स्ते ( स्त्री ) — स्त्री  
 स्वभाव ( पु ) — प्रकृति  
 ट्टो ( स्त्री ) — लज्जा

विशेषण ।

१. अधुव — अनिश्चित  
 २. अनुविदु ( अनु + वि + दृ + क्त ) — मिला हुआ  
 ३. अनुचित ( अनु + चि + त ) — युक्त  
 ४. अवशीर्ण ( अनु + शृ + त ) — फटा  
 हुआ  
 ५. अमत् — बुरा  
 ६. काण — काना  
 ७. — किस प्रकार का  
 ८. काला  
 ९. टूटा हुआ

गइत् ( गइ — ३ पा का वर्तमा  
 कृ ) — प्रीतिता हुआ  
 गर्वित ( गर्व + त ) गर्वित  
 नीर्ण ( लृ + णि + त ) —  
 पुराना  
 त्वाद्गृण — तुम्हारे सेमा  
 धुव — निश्चित  
 निपतित — ( नि + पत् + त ) — गंगा  
 हुआ  
 निवसत् ( नि + वसृका वर्त कृ ) —  
 रहता हुआ

मैंने देखा कि उस पातुका दूध दहीमें बदल गया ।  
त्रिपट्टमें जो मित् वही यथार्थ मित् है ।

## संज्ञाशब्द ।

अनिर्वेद ( अनिर्वेद पु नञ्स०, अ  
+ निर्वेद-पु -वैराग्य) —वैराग्यका  
अभाव, उत्साह  
अमृत (अमृतम्) न —अमृत  
उत्तमाङ्ग (उत्तमाङ्गम्) न —(उत्तम-  
विशे० + अङ्ग-न) उत्तम अवयव,  
सिर  
उपसर्ग (उपसर्गं) पु —उपसर्ग  
ऊर्ध्वशी (स्त्री) —स्वर्गकी एक  
अपसरिका नाम  
कीर्त्ति (स्त्री) —यश  
कोटर (कोटर रम्) पु, न —प्रोखला  
क्षीर (क्षीरम्) न —दूध  
घृत (घृतम्) न —घी  
कल (कलम्) न —कपट  
जाया (स्त्री) —स्त्री  
त्वदनुस्मृति † ( स्त्री तत्त्वं त्वत् +  
अनुस्मृति ) —तुम्हारा स्मरण  
दधि (न) —दही  
दिग् (स्त्री) —दिशा

दुग्ध (दुग्धम्) न —दूध  
धी ( स्त्री धी ) —बुद्धि  
धीर (पु) —बुद्धिमान्  
पति (पु) —पति  
पथिन् (पुं) —मार्ग  
परमार्थ (परमार्थं पु कर्मधा० पर  
विशे० उत्तम + अर्थं पु वस्तु)  
यथार्थं वस्तु  
परमार्थेन —सचमुच  
परिहास (परिहास) पु —हसी  
पिक (पिक) पु —कोकिल  
प्रत्यादेश (प्रत्यादेश) पु —दूरसे  
दबानेवाला  
भङ्ग (भङ्ग) पु —चटाना (सूभङ्ग-  
भौंछ चटाना)  
भू (स्त्री) —पृथ्वी  
भू (स्त्री) —भौंछ  
भेद (भेद) पु —भेद  
मूल (मूलम्) न —जड़, कारण  
सत (सतम् न स + त) —शब्द

† समासमें ए व की अगम युग्मद तथा अअ की त्वत् तथा मत् हीता है ।

त्त ( वमत्त ) पु —उसन्त ऋतु,  
 चैतु और वैशाख  
 णी ( स्त्री ) बोली  
 उद्विपत ( न वि + उद्वृ + त्त )—  
 अस्पृष्ट वाणी  
 वृत्ता ( स्त्री ) —बे लनेवाले कौ  
 इच्छा  
 इलता ( स्त्री ) व्याकुलता  
 र्भंग ( स्त्री )—चीनी  
 पै ( स्त्री ) लक्ष्मी  
 लि ( पु )—मित्त  
 मास ( समास ) पु —समाम  
 र्वाभौम ( सार्धभौम ) पु —सत्ताठ्

साधु ( पु )—सज्जन  
 सितशर्करा ( स्त्री ) मिशरी  
 सूनू ( पु )—पुत्र  
 ससर्ग ( समास ) पु —साध  
 महिता ( स्त्री )—सन्धि वा अत्तरोंका  
 लोड  
 सम्पर्क ( सम्पर्क ) पु —साध  
 माकेत ( माकेत ) पु —गयोधा  
 सेवा ( स्त्री )—सेवा  
 स्त्री ( स्त्री )—स्त्री  
 स्वभाव ( पु )—प्रकृति  
 द्रो ( स्त्री )—लज्जा

विशेषण ।

ध्रुव—अनिश्चित  
 अनुविद्ध ( अनु + व्यध् दि + पर +  
 त्त )—मिला हुआ  
 अवित्रत ( अनु + इ + त्त )—युक्त  
 अवशीर्ण ( अनु + शृ + त्त )—फटा  
 हुआ  
 प्रसत्—बुरा  
 हाथ—काना  
 लोदृश—किस प्रकारका  
 कुण—काला  
 अविद्धत—टूटा हुआ

गदत् ( गद्—भ्रं पा का वर्तमा  
 कृ )—जोलता हुआ  
 गवित ( गर्व + त्त ) गर्वित  
 जीर्ण ( ङृ-दि पा + त्त )—  
 पुराना  
 त्वादृश—तुम्हारे ऐसा  
 ध्रुव—निश्चित  
 निपतित—( नि + पत् + त्त )—गिरा  
 हुआ  
 निवमत् ( नि + वस्का वर्त कृ )—  
 रचना हुआ



नित्य—ग्रावण्यक

परिचयत ( परि + नम् + त )—

वदला हुआ

पश्चिम—ग्रन्थिम ( पश्चिम वय

वृद्धता )

पाप—पापी

पावन (भूतो पावनी)—प्रवितु

मञ्जू—मनोहर

युक्त (युज् + त)—मिला हुआ

वृद्ध ( वृष्—भ्वा आ + त

वृद्धा

शिव—सुरजनक

समुपायात ( सं + उप + आ +

श्र पर + त )—आया हुआ

धातु ।

अप + ईक्ष् (अपेक्षते—भ्वा आ)

—चाहना, आशा करना,

भरोषा करना

उप + ख्या ( उपतिष्ठते—भ्वा आ)

—खोजना

प्र + ह् ( प्रसरति—भ्वा पर )—

फैलना

प्र + वि + चल् ( प्रविचलति—

पर )—हिलना

परि + सेव् ( परिषेवते—भ्वा

( परिषेव् )—सेवन क

आमय लेना

अव्यय ।

क्रिषु—कितना अधिक ?

वक्तुम् ( वच् + तुम् )—बोलना

विधिवशात्—दववश

पाठ २५ ।

स्वादि तथा सनादिगणके धातु ।

सर्वथा चक्षुस्ति न पुत्रमाप्नुहि—सर्व प्रकारसे सार्वभौम पुत्र पावो ।

शृणु मे साधोष वच—मेरी सब ( जिसमें जेप है ) बात सुनो ।

सपि । अत्रागच्छ पुष्पाणि चिनवावहे—सपि । यहा आओ हम  
नीं फूल बटोरें ।

वगन्नाय । न वय ते महिमान स्तोतु शक्नुम—हे लगन्नाय । हम  
तुम्हारी महिमाकी स्तुति नहीं कर सकते ।

अध्वर्यवो यन् सोममसुन्वन्—अध्वर्युओंने यज्ञमें सोमको कटा ।

त्वमपि स्व नियोगमशूना कुरु—तुम सौ अपने कामको अशूना  
करनाओ ।—तुम भी अपना काम करो ( अशूना कुस=पूरा करो ) ।

क्रमेण च तस्या वपुषि यौवनं पद्मकरोत्—क्रमसे यौवनने उसको  
शरीरमें स्नान किया ।

ईश्वरकृपया त्रिना दुष्कराणि कार्याणि जना नय माधुयु—ईश्वर-  
की कृपासे त्रिना लोग कठिन कामोंको कैसे सिद्ध करे ।

इस पाठमें स्वादि तथा तनादि गणको रूढ शिष्ये गये हैं ।

चि—छा पर, वर्त ।

आप्—छा पर ।

	ए व	द्वि व	व व	ए व	द्वि व	व व
प्र पु	चिनोति	चिनुत	चिन्वति	आप्नोति	आप्नुत	आप्नुवन्ति
म पु	चिनोषि	चिनुष	चिनुष	आप्नोषि	आप्नुष	आप्नुष
उ पु	चिनोमि	चिनुव - चिन्व	चिनुम चिन्म	आप्नोमि	आप्नुव आप्नुम	आप्नुम

तन्—तना पर लोट् ।

आप्—छा पर लोट ।

	ए व	द्वि व	व व	ए व	द्वि व	व व
प्र पु	तनोत्	तनुताम्	तन्वन्तु	आप्नोत्	आप्नुताम्	याप्नुवन्तु
म पु	तनु	तनुतम्	तनुत	आप्नुद्वि	आप्नुतम्	आप्नुत
उ पु	तनवानि	तनवाञ्	तनवाञ्म	आप्नुवानि	आप्नुवाञ्	आप्नुवाञ्म

तन्—तना पर लङ् ।

आप्—स्वा पर लङ् ।

	ए	व	द्वि	व	व	व	ए	व	द्वि	व	व	व
प्र	पु	अतनोत्	अतनुताम्	अतन्वन्	आप्नोत्	आप्नुताम्	आप्					
म	पु	अतनो	अतनुतम्	अतनुत	आप्नो	आप्नुतम्	आप्					
उ	पु	अतनधम्	अतनुव	न्व	अतनुम-	न्म	आप्नवम्	आप्नुव	आप्नु			

चि—स्वा पर लिङ् ।

चि—आ पर लिङ् ।

	ए	व	द्वि	व	व	व	ए	व	द्वि	व	व	व
प्र	पु	चिनुयात्	चिनुयाताम्	चिनुयु	चिन्वीत्	चिन्वीयाताम्	चिन्वी					
म	पु	चिनुया	चिनुयातम्	चिनुयात	चिन्वीथा	चिन्वीयाथाम्	चिन्वी					
उ	पु	चिनुयाम्	चिनुयाव	चिनुयाम	चिन्वीथ	चिन्वीवहि	चिन्वी					

तन्—आ लङ् ।

चि आ लोट् ।

	ए	व	द्वि	व	व	व	ए	व	द्वि	व	व	व
प्र	पु	अतनुत	अतन्वाताम्	अतन्वत	चिनुताम्	चिन्वाताम्	चिन्वत					
म	पु	अतनुया	अतन्वायाम्	अतनुध्वम्								

तन्—लङ् आ वसं ।

तन्—आ लोट् ।

	ए	व	द्वि	व	व	व	ए	व	द्वि	व	व	व
प्र	पु	तनते	तन्वाते	तन्वते	तनुताम्	तन्वाताम्	तन्वताम्					
म	पु	तनुपे	तन्वाथे	तनुध्वे	तनुव	तन्वाथाम्	तनुध्वम्					
उ	पु	तन्पे	तनुवधे	न्वधे	तनुमधे	तन्वधे	तनवामधे					

इन वर्गोंके देखनेसे ये नियम तुम्हारे ध्यानमें आवेंगे —

१। नु स्वाङ्गिका, तथा उ तनादिगणका विकरण है ।

गण दो वर्गोंमें विभक्त है । पहिलेमें आदि, दिवादि, तुदादि, तथा चुरादि गण आगे है, जिनमें प्रकृति अकारान्त होती है ( क्योंकि अ, य,

( तथा श्रय इनके विकरण हैं ), और दृमरे वर्गमें अन्य गणके धातु है, लिनमें प्रकृति अकारान्त नहीं होती ।

२। कुछ प्रत्यय ऐसे हैं कि जो पर रहनेपर अन्तिम स्वर तथा तत्र ह्रस्व स्वरको गुण वा वृद्धि होती है, और कुछ ऐसे हैं, कि जिनके कोई परिवर्तन नहीं होता । इनमें पहिले प्रकारके विकारक, तथा २ प्रकार के अविकारक प्रत्यय कहते हैं ।

३। परस्मैपद—त्रिधिलिङ्के एकवचन, तथा लोट्के मध्यमपुरुषके वचनके सिवा और सब एकवचन विकारक है । लोट्के उत्तम पुरुषके वचन तथा बहुवचनके सिवा और सब द्विवचन तथा बहुवचन विकारक है ।

४। आत्मनेपद—लोट्के उत्तमपुरुषके एकवचन, द्विवचन, तथा वचन—विकारक, तथा शेष अविकारक है ।

५। फेवल त्रिधिलिङ्के सिवा इतर दूमरे वर्गके परस्मैपदके प्रथम वर्गके गणोंके समान होते हैं । त्रिधिलिङ्के प्रत्यय इस प्रकार हैं —

प्र पु	यान्	याताम्	पु
म पु	या	यातम्	यात
उ पु	यासु	याव	याम

६। तनु—आप्प्रुद्धि—हि लोट्के मध्यमपुरुषके एकवचनका प्रत्यय । तनादिगणके सब धातुओंमें तथा स्वादिगणके स्वरान्त धातुओंमें इसका लोप होता है ।

७। आत्मनेपदमें प्रथमपुरुषके बहुवचनके अनुनासिकका लोप होता है, और इषे, इते, इयाम्, तथा इताम् की श्रायं, श्राते, श्रायाम्, या श्राताम् होता है ।

८। चिनव न्व, आप्नुव —वकार तथा मकारादि प्रत्ययोंके पूर्व

विकरणके उ का विकल्पसे लोप होता है, यदि इसको पूर्व कोई स्वर  
बद्धन न हो ।

९ । विष्णन्ति, आप्नुवन्ति—यदि विकरणके उके पूर्व कोई स्वर  
बद्धन हो तो उसको अविकारक प्रत्ययोंके पूर्व उव् होता है ।

कृ—उभ ।

पर, वर्तमान ।

आत्म वर्त ।

	ए व	द्वि व	व व	ए व	द्वि व,	व व
प्र. पु	करोति	कुरुत	कुर्वन्ति	कुरुते	कुर्वाते	कुर्वते
म पु	करोमि	कुरुथ	कुरुथ	कुरुषे	कुर्वाथे	कुरुष्वे
उ. पु	करोमि	कुर्व	कुर्म	कुर्वे	कुर्वहे	कुर्महे

पर — लोट् ।

आत्म — लोट् ।

प्र पु	करोतु	कुरुताम्	कुर्वन्तु	कुरुताम्	कुर्वाताम्	कुर्वताम्
म पु	कुरु	कुरुतम्	कुरुते	कुरुष्व	कुर्वाथाम्	कुरुष्वम्
उ. पु	करवाणि	करवाव	करवाम	करवै	करवावहे	करवाम

पर लङ् ।

आत्म लङ् ।

प्र पु	अकरोत्	अकुरुताम्	अकुर्वन्	अकुरुत	अकुर्वाताम्	अकुर्वत
म पु	अकरो	अकुम्तम्	अकुरुत	अकुरुथा	अकुर्वाथाम्	अकुरुष्वम्
उ पु	अकरवम्	अकुर्व	अकुर्म	अकुर्वि	अकुर्वहि	अकुर्महि

या विधिलिङ् ।

आ विधिलिङ् ।

प्र पु	कुर्यात्	कुर्याताम्	कुर्यु	कुर्वीत	कुर्वीयाताम्	कुर्वीर
--------	----------	------------	--------	---------	--------------	---------

१० । कृकौ विकारक प्रकृति कर्, तथा अविकारक प्रकृति कर् है ।

११ । यकारादि तथा मकारादि प्रत्ययोंके पूर्व, तथा विधिलिङ्के  
परस्मैपद प्रत्ययोंके पूर्व कृके द्विकरण अर्थात् उका लोप होता है ।

साधु कृतमनेन विद्यापरिग्रहार्थं पुत्रान् काशीं प्रष्टिष्यता ।  
 तात ! शकुन्तलाविरहित शून्यामिव धन प्रवेष्टुं न शक्नुमः ।  
 त्रिदुषां यथासि दिक्षु कवयः प्रतन्वन्ति ।  
 अहो ! देवी मानुसती सखीभ्याः किमपि मन्त्रयमाणा तिष्ठति । भवतु  
 ताजालेनान्तरित शृणोमि तावदासां विश्रम्भालापम् ।  
 श्रद्धा पौर्यमासीति मया चन्द्रपूजा सायं कर्तव्या । तस्मात् पूजायं  
 सा उद्याने पुष्याख्यवचिष्वात्ताम् ।  
 द्रष्टव्यानां परं न दृष्टं मयातश्चक्षुः फलं नैवाप्रवम् ।  
 एकदा पुत्रमाहूय शत्रून् हन्तुमपरिमितबलानुयात विरन्तनेरमात्यैर्महा-  
 मन्त्रैश्च कृत्वा साभिसारमुत्तरापय प्राड्विष्यवम् ।  
 निर्वला बलिनो मुह्ये न कदापि धृष्णयुः ।  
 भगवति सरस्वति ! तव चरण शरणं करवाणि ।

विद्या विद्यादाय धनं मदाय

शक्तिं परेषां परिपीडनाय ।

खलस्य साधोर्विपरीतमेतत्

ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय ॥

कुनीने सह सम्पर्कं पण्डितैः सह मितृताम् ।

नातिभिश्च समं मेलं कुर्वीणो न विनश्यति ॥

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।

तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्भुवा नोतिमतिमम ॥

मा कुरु धनजायोवनगव्यं हरति निमेषात् कालं सर्वम् ।

मायासयमिदमखिलं हित्वा ब्रह्मपदं त्वं प्रविश विदित्वा ॥

यह लहको बगौचमें पेड़ोंसे फूल चुनती है ।

उद्योगसे कौन अपना कार्य सिद्ध नहीं कर सकता ?

उन्होंने पुस्तक लानेके लिये उसे काशौ भेजा ।

जो कार्य करते है, अपने उद्योगका फल पाते है ।

अत्र हमलोग गुरुको उपदेशको सुने ।

तुमलोगोंको एक एक करके आना चाहिये दो दो नही ।

हे नाथ ! मैं आपकी शरण आया हूँ मेरी रक्षा कृपिये ।

यद्यपि वह दुर्बल था, तथापि उसने उस वली पुरुषको अपने साथ लडनेके लिये तलकारा, और पराजित हुआ ।

### सन्धाशब्द ।

अध्वर्यु (पु) — एक ऋत्विज्  
 अमात्य (अमात्य) पु — मन्त्री (अमा  
 —प्रत्य०, साय, त्य—प्रत्यय)  
 उत्तरापथ (उत्तरापथ) पु — उत्तरका  
 मार्ग  
 उद्यान (उद्यानम्) न — उगीचा  
 कृपा (स्त्री) — दया  
 कुलीन (कुलीन) पु — अच्छे कुलमें  
 उत्पन्न  
 क्रम (क्रम) पु — क्रम  
 खल (खल) पु — खल, दुष्ट  
 गर्भ (गर्भ) पु — घमड  
 चक्षु फल (चक्षु फलम् न तत्पु  
 चक्षुम् न आस्य + फल—न)  
 —आस्यका फल, देखने योग्य  
 वक्षुका देखना

चन्द्रपूजा (स्त्री तत्पु०, चन्द्र+  
 पूजा) — चन्द्रमाकी पूजा  
 ज्ञाति (पु) — बान्धव  
 धनुर्धर (धनुर्धर) पु — धनुर्धारी  
 निमेष (निमेष) पु — पलक गिरना  
 (निमेषात्—क्षणसे)  
 नियोग (पु) — किसीको अधीन  
 किया हुआ काम  
 नीति (स्त्री) — नीति, सद्ब्यवहार  
 परपीडा (परपीडनम्) न कर्म०, पर  
 विशेष अत्यन्त + पीडन न —  
 बहुत दु ख देना  
 पार्थ (पार्थ) पु — पृथाका पुत्र,  
 अर्जुन  
 पौरुषमाधी (स्त्री) — पूर्णमा  
 बल (बलम्) न — सेना

ब्रह्मण ब्रह्मणदम् (न वृक्षन् न वृक्ष  
+ षद न स्थान) — वृक्षाका स्थान  
भानुमती (स्त्री) — दुर्योधनकी  
रानीका नाम  
भूति (स्त्री) — ऐश्वर्य  
मद (मद) पु — गर्व  
महिमन् (पु) — ब्रह्मपण  
मेल (मेल) पु साथ  
यन (यन) पु — याग  
योगेश्वर (योगेश्वर) पु — योगके  
प्रभु, कृष्ण  
लताजाल (लताजालम्) न (लता-

स्त्री + जाल न) लताश्रीका  
समूह  
षपुम् (न) — शरीर  
विजय (विजय) पु — जय  
विश्रमाताप (विश्रमालाप) पु  
तत्पु, विश्रमपु विश्राम +  
आलाप — पु स्वादि) विश्रामसे  
वातचीत  
विवाद (विवाद) पु — वाद  
सरस्वती (स्त्री) — वाणी  
सामन्त (सामन्त) पु — सामन्तिक गजा  
सोम (सोम) पु — सोमस

विशेषण ।

अनुयात (अनु + या — अ पर +  
त) — अनुसृत  
अन्तरित (अन्तर् + इ + त) — द्विषा  
हुआ  
अपरिमित (नञ्त्तत्पु०, अ + परिमित  
= परि + मा + त) — बहुत  
चक्रवर्तिन् — सार्वभौम  
चिरन्तन — पुराणा  
दुष्कर — करनेकी अशक्य  
दृष्टव्य — देखने योग्य

निर्जल (बहु) — जिससे बल निकल  
गया, अशक्त  
+ पर (सर्वना) — दूररा  
वलिन् — शक्तिमान्  
मायामय — (माया — स्त्री अत्रिद्या,  
मय प्रत्यय है जिसका अर्थ —  
बना हुआ है) — अमय  
विपरीत (वि + परि + इ + त) —  
उलटा  
विरहित (वि + रच् + त) — बिना

\* जब यह साक्षात् होता है तब इसके दो ही रूप होते हैं — परी — परा, परम्परा  
— परात, परमिन् — परी ।



साभिसार (बहु०, स + अभिसार—पु  
सेवक)—सेवकोंके साथ

सावशेष ( बहु०, स + अवशेष—पु )  
—अवशेष, पूर्ण

## धातु ।

अशून्यम् + कृ ( तना उभय. )—  
पूर्ण करना

आप् (आप्नोति—स्वा पर) —पाना,  
प्र या अवशेषे साथ—पाना

कृ ( करोति, कुर्वते—तना उभ. )—  
करना

चि ( चिनोति, चिनुते—स्वा उभ )  
चुनना, एकट्ठा करना,  
वि, समु,वा अवशेषे साथ—एकट्ठा  
करना

तद् ( तनोति, तनुते ) ( तना उभ )  
—फैलाना, प्र, वि, या  
समु,वा साथ—फैलाना

घृष् ( घृष्णोति ) ( स्वा पर )—  
ललकारना

मन्त्रु ( मन्त्रुयते ) ( चु आ )—सलाह  
करना, विचार करना

शक् ( शक्नोति—स्वा पर )—सकना  
शरण कृ ( तना उभ )—शरणगत  
होना

श्रु ( श्रु ) ( श्रुणोति—स्वा पर )—  
सुनना

साध् ( साध्नोति—स्वा पर )—  
सिद्ध करना

सु ( सुनोति, सुनुते—स्वा उभ )—  
कूटना

हृि ( हिनोति—स्वा पर )—भोजना,  
प्र के साथ—( प्रहिनोति )—  
भोजना

## अव्यय ।

आहूय ( आ + हृि का अव्यय सू कृ )  
—पुकारकर

एकदा—एकवार

प्रवेष्टुम् ( प्र + विष् + तुम् )—  
प्रवेश करने के लिये

विदित्वा ( विद् + त्वा )—जानकर

विद्यापरिश्रद्धार्थम् ( तत्पु, चतुर्थी  
के अर्थमें चतुर्थीके साथ अर्थ  
शब्दका समास होता है।  
यद् चतुर्थीतत्पुरुष है। यह

मान्य होता है विकल्पसे नहीं ।  
विद्याया परिग्रह विद्यापरिग्रह  
विद्यापरिग्रहाय इद यथा  
स्रातया )—विद्याप्राप्तिके लिये

स्तोतुम् ( स्तु + तुम् )—स्तुति करानेके  
लिये  
हन्तुम् ( हन् + तुम् )—मारनेके लिये  
दित्वा ( दा का अच् भू कृ )—  
होडकर

साधु—अच्छा

सायम्—सायङ्कालमें

पाठ २६ ।

क्रादिगणके धातु ।

प्राय आकृतिमनुगृह्णन्ति गुणा — प्राय गुण रूपा अनुसरण करते हैं ।  
त्वदर्थं महाजयमश्रमक्रीणाम्—तुम्हारेलिये मैंने बहुत तेज घोड़ा  
परोदा है ।

प्रीणाति य सुचरितै पितर स पुत्र — जो अपने सचरितोंमें पिताको  
प्रसन्न करता है वह पुत्र है ।

पुण्याश्रमदर्शनेन तावदात्मान पुनीमहे—इस लोग पवित्र आश्रमके  
दर्शनसे अपनेको पवित्र करे ( तावत् वाक्पालद्वारके लिये है ) ।

इत गिलातलैकदेशमनुगृह्णातु वयस्य — इस शिलाकी एक ओर मितु  
कृपा करे ( बैठे ) । इत = इमम् ।

शत सुशान्ति देवदत्तम्—ब्रह्म देवदत्तसे सौ सपया चुराता है ( सुश-  
को दो कर्म होते हैं ) । यह द्विकर्मका धातु है ।

हे राजन् । एता तित्तिधेनु दंरधुमिच्छन्ति चेद्वत्समिवासु लोक  
पुपाण—हे महाराज । यदि आप इस पृथ्वीरूपी गौको दुहा चाहते हैं तो  
वत्सके समान इस लोकका पोषण करो ।

इस पाठमें क्रादिगणके रूप दिये गये हैं ।

१ । नित्यसमासके विषयमें इस पुस्तकके अन्तमें गद्यसरहके टिप्पणियोंमें दशमार्धम की  
टिप्पणी, वा ३२ वें पाठमें देखो ।

क्री—क्या उभ ।

पर वर्त ।

आत्म वर्त ।

	ए व	द्वि व	व व	ए व	द्वि व	व व
प्र पु	क्रीणाति	क्रीणीत	क्रीणन्ति	क्रीणीते	क्रीणाते	क्रीणते
म पु	क्रीणासि	क्रीणीथ	क्रीणीथ	क्रीणीधे	क्रीणाथे	क्रीणीध्व
उ पु	क्रीणामि	क्रीणीव	क्रीणीम	क्रीणे	क्रीणीवहे	क्रीणीमहे

पर लोट ।

आत्म लोट् ।

प्र पु	क्रीणातु	क्रीणीताम्	क्रीणन्तु	क्रीणीताम्	क्रीणाताम्	क्रीणताम्
म पु	क्रीणीह	क्रीणीतम्	क्रीणीत	क्रीणीध्व	क्रीणाथाम्	क्रीणीध्वम्
उ पु	क्रीणानि	क्रीणाव	क्रीणाम	क्रीणे	क्रीणावहे	क्रीणामहे

पर लङ् ।

	ए व	द्वि व	व व
प्र पु	अक्रीणात्	अक्रीणीताम्	अक्रीणन्
म पु	अक्रीणा	अक्रीणीतम्	अक्रीणीत
उ पु	अक्रीणाम्	अक्रीणीव	अक्रीणीम

या लङ् ।

प्र पु	अक्रीणीत	अक्रीणाताम्	अक्रीणत
म पु	अक्रीणीया	अक्रीणाथम्	अक्रीणीध्वम्
उ पु	अक्रीणि	अक्रीणीवहि	अक्रीणीमहि

पर विधिनिङ् ।

प्र पु	क्रीणीयात्	क्रीणीयाताम्	क्रीणीयु
म पु	क्रीणीया	क्रीणीयातम्	क्रीणीयात
उ पु	क्रीणीयाम्	क्रीणीयाव	क्रीणीयाम

आत्म विधिलिङ् ।

प्र पु	क्रीणीत	क्रीणीयाताम्	क्रीणीरत्
म पु	क्रीणीथा	क्रीणीयाथाम्	क्रीणीध्वम्
उ पु	क्रीणीथ	क्रीणीवति	क्रीणीमहि

१ । ऊपरके सवोंके देखनेसे यह सातूम होगा कि क्रादिगणका विकरण ना है, और अजिकारक व्यञ्जनादि प्रत्यय पर रहनेपर ना को नी, तथा अजिकारक स्वरदि प्रत्यय पर रहनेपर न् होता है ।

२ । पयाय, मुषाय—पुप्, मुष्, इत्यादि व्यञ्जान्त धातुओंके लोटके मधामपुक्षपके एकवचनका रूप जिकरणके बिना आन लगाके बनता है ।

३ । बन्ध—बन्धाति, ग्रन्थ—ग्रन्थाति—उपान्त्य अनुनासिकका लीप होता है ।

४ । पू—पूनाति, लनाति, धुनाति, क्षृणाति, क्षृणाति—पू, लू, धू, क्षू, वृ, तथा और कुछ धातुओंके अन्तिम स्वरको विकरण आगे रहनेपर द्रव्य होता है ।

मृत ! चोदयावान् । पुण्याश्रमदर्शनेन तावदात्मान पुन महे ।

कथयतु सर्वमनुक्रमेण । सौमन्तरा प्रतिवर्षीतम् ।

मूढ स्वल्पदुरात्मा सुयोधनो वासुदेव भगवन्त स्वीय रूपेण रूप जानातु ।

अहो कल्याणपरंपरा सत्योऽप जनप्रदायी यद् विषद्विषद सम्यत्सम्पद मनुवध्नाति ।

प्रियप्रसन्नदार्ढ्यभाणवक्राज्जानोहि ताज्जस्योत्कण्ठाकारणम् ।

अन्तरा त्वा मा च कमण्डलु ।

न च प्रणोजनमन्तरा चाणक्य स्वप्नेऽपि चेतुते ।

हरिमन्तरेण न सुप्तम् ।

तिलेभ्य प्रतिपच्छति गगान् ।

धनुदिवस परिद्वीपसेऽङ्गै ।  
 श्रीलक्ष्मिस्तया न परिद्वीपते श्रव्या ऊर्वशी ।  
 आरोग्यकाम पथ्यमश्रीयात् ।  
 अनेन बलिना सार्धं कथं विपृच्छणीयाम् ?  
 काले खलु समारब्धा फल वध्नन्ति नीतय ।  
 मार्मिक को मरन्दानामन्तरेण मधुव्रतम् ।

इच्छया कुरुते देहमिच्छया वितनुभवेत् ।  
 क्रीडते भगवाँल्लोके वाल क्रीडनकैरिव ॥  
 'मति बधान सुप्रीवे राक्षसेन्द्रं मुद्याण वा ।  
 अशान भरताद् भोगान् लक्ष्मण प्रवृणोष्व वा ॥  
 सुवर्णपुष्पिता पृथ्वीं विचिन्वन्ति नरास्त्रय ।  
 शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवित्रुम् ॥  
 गुणा गुणज्ञेषु गुणा भवन्ति  
 ते निर्गुण प्राप्य भवन्ति दोषा ।  
 सुखादुतोषा प्रभवन्ति नद्य  
 समुद्रमासाद्य भवन्त्यपेया ॥

यत्कृतेऽरीन् व्यष्टिणीम समुद्रमतराम च ।  
 सा हतेति वदन् राममुपातिष्ठन्मस्तमुत ॥  
 सहसैव सुजङ्गपाशवान् विनिष्टृङ्खाति न यावदन्तक ।  
 अभय कुस तावदाशु मे गतजीवस्य पुन किमौषधै ॥

ज्ञानकी सम्पत्ति बहुत कल्याणकी बढ़ाती है ।  
 पुत्रको चाहिये कि वह अपने अच्छे कामोंसे पिताको प्रसन्न करे ।  
 देवोंने समुद्रसे अमृतको मया ।

मेते यह पुस्तक बर्हें कामसे खरीदी है ।

जब वह अपना वृत्तान्त कह रही है, उसे ब्रीचमें मत रोको ।

“श्रावसिया अबोलो नहो श्राती” इस कहावतको सचाईं श्राज मुझे साजूम पड़ी ।

बलमें भीम दुर्योधनसे कम नहीं था ।

तुमको प्रतिदिन क्षीण होते देख मैं खिन्न हू ।

### संज्ञाशब्द ।

अनुक्रम ( अनुक्रम ) पु —क्रम  
 अन्तक ( अन्तक ) पु —यम  
 अभय ( अभयम् ) न —निर्भयता  
 उत्कण्ठाकारण ( न ) ( तत्पु०  
 उत्कण्ठा—स्त्री —चिन्ता + कारण  
 —न )—चिन्ताका कारण  
 एकदेश ( एकदेश ) पु,—भाग  
 आलक्षिता ( स्त्री )—तेज  
 कमण्डलु ( पु, न )—कमण्डलु  
 कलापरम्परा ( स्त्री तत्पु०,  
 कल्याण—न सुख + परम्परा  
 स्त्री पक्ति )—मुखोंकी पक्ति  
 क्रीडनक ( क्रीडनकम् ) न —खिलौना  
 क्षिति ( स्त्री )—पृथ्वी  
 क्षीरनिधि ( पु तत्पु० )—दुग्ध-  
 समुद्र

वाणक ( वाणक ) पु—चन्द्रगुप्तो  
 मन्त्रोका नाम  
 जनप्रवाह—( पु तत्पु०, जन—पु +  
 प्रवाह—पु उक्ति )—लोगोंकी  
 उक्ति, कहावत  
 जव ( जव ) पु—वेग  
 तिल ( तिल ) पु—तिल  
 तोय ( तोयम् ) न—जल  
 दोष ( दोष ) पु—अपराध  
 भरत ( भरत ) पु—भरत  
 भुजङ्गपाश ( पु )—कर्मघा०, भुजङ्ग  
 —पु—सर्प, पाश—पु )—सर्प-  
 का फदा  
 भोग ( भोग ) पु—उपभोग, सुख  
 मधुव्रत ( मधुव्रत ) पु ( बहु०, मधु  
 —न शब्द + व्रत )—धर्म

मरन्द—पुष्परस  
 मसत्सुत ( पु, तत्पु०, मसत्—पु  
 वायु + सुत—पु—पुत्र )—  
 वायुका पुत्र, हनुमान्  
 माणवक—( माणवक. ) पु—किष्कि  
 पुरुषका नाम ( यहा विदूषकका  
 नाम )  
 माष ( माष ) पु—उरदी  
 मूल्य ( मूल्यम् ) न—दाम  
 राक्षसेन्द्र ( राक्षसेन्द्र पु तत्पु, राक्षस  
 —पु + इन्द्र—पु उत्तम, राजा )  
 —राक्षसोंका राजा, विभीषण  
 लक्ष्मण ( लक्ष्मण ) पु—लक्ष्मण

वत्स ( वत्स ) पु—गौका वत्स  
 वासुदेव ( वासुदेव ) पु—वासुदेवका  
 पुत्र, कृष्ण  
 शची ( स्त्री )—इन्द्रकी स्त्री  
 शिलातल—( पु, न तत्पु०, शिला  
 स्त्री—पत्थर + तल—पु, न )  
 पत्थरका तल  
 सुग्रीव ( सुग्रीव ) पु—सुग्रीव  
 सुचरित ( न कर्मधा, सुष्टु, चरितम् )  
 सचरित्  
 सुधा ( स्त्री )—श्रमृत  
 सुयोधन ( सुयोधन ) पु—दुर्योधन  
 स्वप्न ( स्वप्न ) पु—स्वप्न

### विशेषण ।

श्रेय—पीनेके श्रयोग्य  
 शरीरोग्यकास ( बहु०, शरीरोग्य—न  
 नीरोगता + काम—पु इच्छा )  
 —नीरोगता चाहनेवाला  
 श्राय्य—पूज्य  
 कृतविद्य ( बहु०, कृत—की हुई—  
 + विद्या—स्त्री )—जिसने  
 विद्या प्राप्त की, पण्डित

गतजीव ( बहु०, गत = गम् + त +  
 जीव—पु )—मृत  
 गुण्य ( उपपदस०, गुण जानातीति  
 गुण्यञ् )—गुणोंको जाननेवाला  
 दुरात्मन् ( बहु०, दुर खराब + आत्मन्  
 —पु )—दुष्ट  
 निर्गुण्य ( बहु०, निर्गता गुणा  
 यस्मात् स निर्गुण्य )—गुणहीन

† यह एक तत्पुरुषका प्रकार है, जो उपपदस० कहलाता है, यह सजा तथा धातुजन्य होता है ।

बलिन्—बलवान्  
 मार्मिक—वस्तुको तत्त्वको अच्छौ तरह  
 जाननेवाला  
 वितनु (उद्गु०, विगता तनुपस्य स  
 वितनु, वि + तनु—स्त्री -शरीर)  
 शरीरहीन

समारब्ध—सम् + आ + रभ्—भवा  
 आ + त)—आरब्ध  
 सुवर्णपुष्पित ( तत्पु० )—सुवर्णको  
 फूलोंसे युक्त  
 सुम्बाहु—अतिस्वादयुक्त

अव्यय ।

अनुदिवसम् (अव्य) —प्रतिदिन  
 अन्तरा—१ बीचर्म, २ विना  
 (यद् द्वितीयाको साथ आता है)  
 अन्तरेण—विना ( यद् द्वितीयाको  
 साथ आता है)  
 आशु—शौघ  
 आसाद्य ( आ + सद् का प्रेर०—का  
 अव्य भू कृ )—पाकर

यद्य—केवल  
 यद्—जो  
 यत्कृते ( तत्पु०, यस्य कृते, यद्—जो  
 + कृते अव्य तिप् )—लिखने  
 लिये  
 सद्यसा—अकस्मात्  
 सेवितुम् ( सेव्-भ्या आ + तुम् )  
 —सेवा करनेके लिये

धातु ।

अश (अश्राति, कृत्वा पर) —खाना  
 उप + स्या (उपतिष्ठति—भ्या पर )  
 —पास रहना

क्री ( 'क्रीणाति,—शीते क्रया ऋभ )  
 —खरीदना, विशेष साथ  
 ( आत्म )—बिचना

१ । विक्रीणीते पिक्रीणीते, अवक्रीणीते—परि, वि, अवपूर्वक क्री धातु आत्मनेपद होता है । उभयपदों धातुओंमें जब क्रियाका फल कर्तामें होनेवाला हो तब आत्मनेपद, तथा जब वह अन्यमें होनेवाला हो तो परमापद भीता है । परि, वि, अवपूर्वक क्री धातु क्रियाका फल अन्यगामी होनेपर भी आत्मनेपदी होता है ।



नु पर ।

वर्त ।

लङ् ।

प्र पु	नोति	नुत	नुवन्ति	प्र पु	अनोत्	अनुताम्	अनुवम्
म पु	नोषि	नुथ	नुथ	उ पु	अनवम्	अनुव	अनुम

नियम —

२। नाति, अनवम्—व्यञ्जनादि विकारक प्रत्ययोको पूर्व नु को उ को वृद्धि होतो है ।

३। नुवन्ति, अनुवन्—स्वरादि अविकारक प्रत्ययोको पूव अन्तिम उ वा ऊ को उव् होता है ।

इ—पर ।

वर्त ।

लोट् ।

प्र पु	इति	इत	यन्ति	प्र पु	इतु	इताम्	यन्तु
म पु	इषि	इथ	इथ	उ पु	अयानि	अयाव	अयाम

लङ् ।

विधिलिङ् ।

प्र पु	इत्	इताम्	अयन्	इयात्	इयाताम्	इयु
उ पु	आयम्	एव	रेम			

आ + इ + अन् = आ + य् + अत् ( यन् ) = आयन् । आ + इ + अम् = आ + ए + अम् = आ + अयम् = आयम् ।

नियम —

४। स्वरादि अविकारक प्रत्ययोको पूर्व इ धातुको इको य् होता है ।

अधि इ—आ ।

वर्त ।

लोट् ।

प्र पु	अधीते	अधीयाते	अधीयते	अधीताम्	अधीयाताम्	अधीयताम्
उ पु	अधाये	अधीयते	अधीमहे	अधायै	अधायवहे	अधायामहे

लङ् ।

विधिलिङ् ।

प्र पु अध्येत अध्येयाताम् अध्येत

उ पु अध्येयि अध्येयिषि अध्येयमहि अधीयीय अधीयीषि अधीयीमहि

अधीयते—इ + अते = इयते, अधि + इयते = अधीयते ।

अध्यये—इ + ये = ए + ये = अये, अधि + अये = अध्यये ।

अध्येयि—आ (आगम) + इ + इ = आ + इयि = ऐयि,

अधि + ऐयि = अध्येयि ।

अधीयीय—इ + ईय = इयीय, अधि + इयीय = अधीयीय ।

नियम —

१ । खरादि अकारक प्रत्ययको पूर्व अधि + इ को इ को इय् होता है ।

ब्रू—उभ वर्त ।

पर ।

आत्म ।

प्र पु व्रवीति ब्रूत व्रुवन्ति ब्रूते व्रुवाते व्रुवते

पर ।

लोट्

आ ।

म पु ब्रूहि ब्रूतम् ब्रूत उ पु व्रवी व्रवावहे व्रवामहे

लङ् ।

पर ।

आत्म ।

प्र पु अत्रवीत् अत्रूताम् अत्रुवन् अत्रूषा अत्रुवाषाम् अत्रूष्यम्

उ पु अत्रवम् अत्रूव अत्रूम अत्रुजि अत्रूजिषि अत्रूमहि

विधिलिङ्—प्र पु ए व ब्रूषात्—व्रूषीत् ।

नियम —

१ । व्रवीति, व्रवीत्, अत्रवम्—अत्रनादि त्रिकारक प्रत्ययको पूर्व

इ आगम होता है ।

वर्त ।

प्र पु	आह	आह्तु	आहु
म पु	आत्य	आद्यु	

७। एक दुष्ट धातु को, जिसका अर्थ 'कहना' है, ऊपर लिखे हुए पाच रूप होते हैं । पाणिनि इनको ब्रूषो रूप कहते हैं ।

श्री—आत्म ।

वर्त ।

लोट् ।

प्र पु	शेते	शयाते	शेरते	शेताम्	शयाताम्	शेरताम्
उ पु	शये	शेवहे	शेमहे	शयै	शयावहे	शयामहे

लङ् ।

विधिलिङ् ।

प्र पु	अशेत	अशयाताम्	अशेरत	अशयैत	अशयीयाताम्	अशयामहे
--------	------	----------	-------	-------	------------	---------

नियम —

८। सब सार्वधातुक लकारोंमें श्रीको इ को गुण होता है, विधिलिङ्को छोड़कर इतर सब सार्वधातुक लकारोंमें प्र पु के बहुवचन र-आगम होता है, अर्थात् रते, रताम्, तथा रत—ये प्रत्यय हैं ।

मू—आत्म ।

वर्त ।

लोट् ।

ए व ।	द्वि व ।	व व ।	ए व ।	द्वि घ ।	व व ।		
उ पु	सुवे	सूवहे	सूसहे	उ पु	सुवै	सुवावहे	सुवामहे

लङ् ।

विधिलिङ् ।

प्र पु	असूत	असुवाताम्	असुवत	प्र पु	सुवीत	सुवीयाताम्	सुवीमहे
--------	------	-----------	-------	--------	-------	------------	---------

नियम —

९। सुवै, सुवावहे, सुवामहे—मू धातुको लोट्को उत्तमपुरुषके रूप वचन, द्विवचन, तथा बहुवचनके प्रत्यय अविकारक हैं ।

किं ब्रूय—कुतोऽद्यापि ते तात इति । आ सुदुःखं ननु ॥ ३ ॥

प्रलपता व सदस्रधा न शैर्यमनया विद्वन् ॥

तमेव ( परमात्मानम् ) विद्वित्वातिमनुनेति ॥ ३ ॥

श्रव्यस्य हेतोर्द्वहुं घातुमिच्छन्

विवारमूढं प्रतिभासि मे क्षम ॥

महदपि परदुःखे शीतलं सम्यगाहुः ।

क्षयं क्षये यन्नयतामुपैति तदव शप रमणीयताया ।

कपिलो यदि सर्वत्र कथाशो भेति का प्रमा ।

यस्या कुसुमशय्याऽपि कोमलाङ्ग्या वज्राकरौ ।

साऽधिशेते कथं देवो ह्यलन्तीमधुना चिताम् ॥

किं नु मे स्याद्विदुः कृत्वा किं नु मे स्यादकुर्वत ।

इति कर्मणि सर्ज्जित्य कुर्याद्वा पुरुषो न वा ॥

सरस्वती सदा वन्दे यदुपासि समुच्छ्रिता ।

काव्यानि कुसुमानौव मुधते कविपादपा ॥

कवीन्दुं नोमि धारमीकि यद्य रामायणी कथाम् ।

चन्द्रिकासिध चिन्वन्ति चकोरा इव साधव ॥

ऋक्षानि मे व्यतीतानि क्षमन्ति तत्र चार्द्धन ।

तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्स्य परन्तप ॥

आत्मानं रथिन जिह्वि शरीरं रथमेव नु ।

बुद्धिं तु मारयि वृद्धिं मनं प्रग्रहमेव च ॥

इन्द्रियाणि दयानाहुर्विषयास्तेषु शोचराम् ॥

१०१५

१। अति प्रति के साथ अनित है

मुनि पापा है । प्राचीन संस्कृत मन्वीने

विपरीतेषु कालेषु परिच्छीणेषु बन्धुषु ।

१ त्वाहि मा कृपया कृष्ण शरणागतवत्सल ॥

नमो नम क्षारणवामनाय

नारायणायामितविक्रमाय ।

श्रीशङ्खचक्राङ्गदाधराय

नमोऽस्तु तस्मै पुण्योत्तमाय ॥

वह आश्रम धन्य है जिसका वह प्रभु है ।

हे भगवन् ! मुझ पापीको भयानक नरकसे छुड़ाओ ।

हमलोगोंको प्रातःकाल उठना चाहिये और काव्योंको पढ़ना चाहिये ।

कहिये मुझे जिस मार्गसे पञ्चवटीको जाना चाहिये ।

मुनिने कहा, “महाराज, हम लोग हर अवस्थामें सुखी हैं” ।

योग्य समयपर आरम्भ किये गये काम सफल होते हैं ।

वाह ! यह खूब कहा गया है कि दूसरोंका दुःख हम लोगोंका दुःख नहीं है ।

तुमने व्याकरण पढ़नेको लिये अपने लड़कोंको काशी भेजकर अन्तःकाम किया ।

### सन्दाशब्द ।

अङ्ग, लीयक (अङ्गुलीयकम्) न —  
अगुठी

अग्रदन्त (अग्रदन्त) पु — हाथका

आगेका भाग ( कर्मधा०, अग्र

दासौ दन्तश्च अग्रदन्त )

अञ्ज ( अञ्ज जाम् ) पु, न  
— शङ्ख

अयन (अयनम्) न — मुक्ति

अर्जुन (अर्जुन) पु — अर्जुन

उपासि (स्त्री) — उपासना

शाद ( कथाद ) पु — वीशेषिक  
दर्शनयो कर्ता  
पिल ( कपिल ) पु — कपिलमुनि  
श्रीन्दु ( तत्पु ) कवि-पु + इन्दु पु  
श्रेष्ठ ) — कवियोंने श्रेष्ठ  
रणजामन ( तत्पु०, कारण न +  
वामन — पु विष्णु, जिसने करण  
वश वामनावतार धारण किया ।  
रणकोसर ( किरणकोसर - रम् पु, न  
कर्म०, किरण एव कोसरणि,  
किरण-पु कोसर-पु, न ) —  
किरणरूपी कोसर  
ण ( क्षण ) पु — क्षण  
शा ( स्त्री ) — शशा  
शशी ( स्त्री ) — शशी  
शर ( गोवर ) पु — मार्ग  
क ( चक्रम् ) न — पहिया  
गता ( स्त्री ) — नयापन  
शोत्तम ( पुरुषोत्तम पु तत्पु,  
पुरुषोत्तम, पुरुष — पु +  
उत्तम ) — विष्णु

प्रग्रह ( प्रग्रह ) पु — लगाम  
प्रत्युषस् ( न ) — प्रातः काल  
प्रभाव ( प्रभाव ) पु — बडापन, बल  
प्रभा ( स्त्री ) — ययार्थज्ञान, वस्तु-  
तत्त्वज्ञान  
भृत्य ( भृत्य ) पु — नौकर  
महीभुज् ( पु ) — पृथ्वीपालक, राजा  
मुनि ( पु ) — ऋषि  
रयिन् ( पु ) — सारथि  
राजर्षि ( पु ) ( राजन्-पु + ऋषि ) —  
ऋषितुल्य राजा  
विक्रम ( विक्रम ) पु — पराक्रम  
विषय ( विषय ) पु — इन्द्रियोंका  
विषय  
शय्या ( स्त्री ) — बिछौना  
शरण ( शरणम् ) न — रक्षक  
शार्ङ्ग ( शार्ङ्गम् ) न — विष्णुका धनु  
सन्देह ( सन्देह ) पु — शय्य  
समर ( समर ) पु — युद्धक्षेत्र  
दय ( दय ) पु — घोड़ा  
चेहु ( पु ) — कारण

विशेषण ।

मित ( नञ्०, अ + मित = मा +  
त ) — अपरिमित

अर्ह — योग्य  
अल्प — थोडा

आयुष्मत्—चिरजीवी

उर्ध्वभिन्न ( उद् + भिद् + त ) खुला

हुश्रा, प्रकट

कुसुमित—पुष्पित

कोमलाङ्गी स्त्री ( बहु कोमल—

विशेष + अङ्ग—न कोमल-

शरीरवाली

क्षुद्र—नीच

ज्वलत् ( स्त्री ज्वलन्ती—ज्वल्

भ्वा पर का वर्त कृ ) चम-

कता हुश्रा

धर—पकड़नेवाला, धारण करने-

वाला

परन्तप—अनुश्रोको ताप देनेवाला

परिस्त्रीण ( परि + स्त्रि + त )—नष्ट

भौस—हरपोस

मित ( मा + त ) परिमित

रामायणी ( स्त्री )—रामायणी

सजाकर ( स्त्री करी ) ( सजा स्त्री

हु ख ) हु ख देनेवाला

वत्सल—दयालु, प्रेमी

विचारमूढ़ ( तत्पु )—मूर्ख

व्यतीत ( वि + अति + इ + त )—

बीता हुश्रा

शान्त ( शम् + त )—जितेन्द्रिय

शीतल—ठंडा, सद्य

समुच्छ्रित ( सम् + उद् + त्रि + त )—

आश्रित

सर्वज्ञ ( उपपद स०, सर्वं जानाती

सर्व जाननेवाला

अव्यय ।

सम्यक्—अच्छीतरह

सुखम्—अनायाससे

हा—हाय ।

हातुम् ( हा + तुम् ) क्रीड़नेके लिये

धातु ।

अधि + इ ( अधीते-अ आ )—पढ़ना

इ ( इति अ पर )—जाना, उपके

साथ—जाना

चिन्त् ( चिन्तयति—चु पर )—

सोचना, सम्प्रे साध—सोचना

नु ( नीति अ, पर )—सुति करन

वू ( व्रवीति-व्रूते अ उभ )—ब्रवी

भा ( भाति अ पर )—मालूम हो

प्रतिके साथ—मालूम होने

विद् ( वेत्ति अ, पर )—ज्ञानना

श्री ( श्रते—अ आ )—लेटना ;	घ्न ( घन्ति—अ पर )—मारना ,
अधिके साथ—घोना	नष्ट करना
(सूते-अ आ)—जन्म देना	

पाठ २८ ।

अदादिगणके धातु ।

माणवक धर्म शास्त्रि शुभ—गुरुजी माणवकको धर्मका उपदेश  
ते है ( शास्त्र द्विकर्मक है ) ।

अशूचि प्रमृष्टि मङ्गलकाले रोदितु नोचित ते—आसू पीछे मङ्गलके  
दिन तुमको रोना उचित नहीं है ।

हे दुराचारेन्द्रजित् ! यदि काकुत्स्थ नेडिपे तर्हि न प्राण्यपि  
पाना च नेशिपे—रे दुष्ट इन्द्रजित् ! यदि तुम रामकी स्तुति न करोगे  
न जियोगे और न कपटोंके प्रभु होगे ।

किमिति लोपमाध्वे—तुमलोग चुप क्यों बैठे हो ?

हे राजन् ! भवत् सर्वा प्रजा स्तुवन्ति—हे महाराज ! आपकी  
प्रजायें स्तुति करती हैं ।

शिष्यस्तोष्ट श्राधि सा त्व प्रपन्नम्—मैं आपका शिष्य हूँ, मुझ  
एवागतको पढाइये ।

वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयो—भागुरि अब तथा अपि इन दो  
श्रुतियोंके अ का लोप चाहते हैं । अत एव अकारका लोप विकल्पसे होता  
है । हम लोगोंको इनो प्रकारको रूप मिलते हैं । जैसे अपिधानम् वा  
धानम् (ढाङना), अवगाह वा वगाह (स्नान) ।

११ अधिपूर्वक श्री, स्या, तथा आस् का आधार कर्म हीवा है ।



इस पाठमें कुछ और अदादिगणको धातु दिये गये हैं।

ईश्—आ ।

ईड्—आ ।

वर्त

लीट् ।

प्र पु	ईष्टे	इशाते	ईशते	ईष्टास्	ईडाताम्	ईडताम्
म पु	ईशिषे	ईशाथे	ईशिधे	ईडिध्व	ईडाथाम्	ईडिध्वम्

लड्

लड् ।

म पु	रेष्टा	रेशाथाम्	रेड्ढम्	रेष्टा	रेडाथाम्	रेड्ढम्
------	--------	----------	---------	--------	----------	---------

नियम,—

१। ईशिषे, ईडिध्वे, रेड्ढम्—ईश् तथा ईड् धातुओंमें सृत्त ध्वसे आरम्भ होनेवाले प्रत्ययोंके पूर्व इ आगम होता है, पर लड् म पु व व ) के पूर्व नहीं होता ।

सृज् + त = सृप् त = सृप् + ट = सृष्ट, सृज् + त = सृप् + त = सृप्त + ट = सृष्ट, यज् + तुम् = यप् + तुम् = यप् + टुम् = यष्टुम्, ईश् + त = ईष् + त = ईष् + ट = ईष्टे, परन्तु ईश् + वच्चे = ईश्यच्चे—

( अ ) सृष्ट, दृष्टा, मष्टुम्—ऋच् अस्ज, सृज्, सृज्, यज्, राज्, सृज् तथा शकारान्त और ककारान्त धातुओंके अन्तिम वर्णको, अनुनासिक या अन्त स्वरको छोड़ कोई व्यञ्जन आगे रहनेपर, अथवा पश्चिमी अन्त होनेपर, ष् होता है ।

यद्य एक सामान्य नियम है । ऐसे २ सामान्य नियम बढ़े उपपत्ति हैं और अनेक रूपोंके बनानेमें सहायता देते हैं । वे ( अ ), ( आ ) इत्यादिसे चिन्हित हैं ।

आ + ईश् + घ्वम् = आ + ईष् + घ्वम् = आ + इड् + घ्वम् = आ + ईड् + टुम् = रेड्ढम् ।

( आ ) पदका अनुनासिक या अन्त स्वरके सिवा कोई व्यञ्जन, वर्ण

नीय वा चतुर्थं वर्णं आगे रहने पर, अपने वर्णके तृतीय घण्टमें बदल जाता, ऐसी अत्रस्वामें षु को ड़ होता है ।

( १२ के पाठमें दुष्य इत्यादि रूपोंको देखो ।

रुड्—पर वर्त ।

जत्—पर लोट ।

ए व	द्वि व	व व	ए व	द्वि व	व व
पु रोदिति	रुदिति	रुदिति	जत्तितु	जत्तिताम्	जत्तु

स्वप्—पर लड् ।

पु	अस्वपत् पीत्	अस्वपिताम्	अस्वपन्
पु	अस्वप पी	अस्वपितम्	अस्वपित

जत्—पर लड् ।

पु	अजत्तत् सीत्	अजत्तिताम्	अजत्तु
पु	अजत्त -त्सी	अजत्तितम्	अजत्तित

अम—पर विधि ।

म+अन्—पर विधि ।

म पु अत्रस्यात्—इत्यादि । म पु प्राख्यात्—इत्यादि ।

२। रुड्, स्वप्, अम, अन्, तथा जत् धातुमें विधिलिङ्को विधाता मन् कञ्जादि प्रत्ययोंके पूर्व इ आगम होता है । जत्में म पु को व में अनुनासिकका लोप होता है, तथा लड्को म पु को व व में लगता है ।

सु—उभ ।

पर—वर्त ।

म पु	सुीति सुीति	सुत सुवीत	सुवन्ति
		आत्म ।	

म पु	सुा सुवीते	सुवाते	सुवते
------	------------	--------	-------

नियम —

४ । शिष्य, शिष्य — अज्ञानादि अत्रिकारक प्रत्ययोंके पूर्व शिष्ये को इ होता है । शिष्य लोट्के मध्यमपुरुषके एकवचनका रूप है ।

( इ ) शिष्ट, उषित — शिष्, वस्, तथा घम् को ष् को घृष्टात । यदि अ वा आ को छोड़ उसके पूर्व कोई स्वर वा ववर्गीय वर्ण हो । घृष्ट उदाहरण परोक्षभूतमें आवेंगे ।

५ । शिष्यति, अशिष्य — शिष्, जत्, चकाम्, जाश्, और दरिद्रा धातु वर्तमान तथा लोट्के प्र पु. के बहुवचनमें अनुनासिकका लोप होता है और लङ्के प्र पु के व व में उष् होता है ।

६ । अशिष्यन्-अशिष्य, अशिष्यन्-अशिष्य — द्विप् तथा आकारान्त धातुओंके लङ्के प्र पु के व व में विकल्पसे उष् होता है ।

७ । अशिष्यन्, अशिष्य — उष्के पूर्व धातुके अन्यस्वरको गुण होता है, और आकारान्त धातुओंके आकारका लोप होता है ।

( इ ) अशिष्ये, अशिष्यम् — धकारादि प्रत्यय आगे रहनेपर धातु अन्तिम स्का लोप होता है ।

( उ ) अशिष्य — कात् इ, अशिष्यत्-इ — धातुके अन्तिम स्को लोप म पु के ए व में विकल्पसे तथा लङ्के प्र पु के ए व में नित्य वा इ होता है ।

दरिद्रा—पर ।

	वर्त ।				लोट् ।
	ए व	द्वि व	व व	ए व	द्वि व
प्र पु	दरिद्राति	दरिद्रित	दरिद्रति	दरिद्रातु	दरिद्रिताम्
					दरिद्रितु
					लङ् ।
					विधिलिङ् ।
प्र पु	अदरिद्रात्	अदरिद्रिताम्	अदरिद्रु	प्र पु	दरिद्रियात्—इत्यादि

नियम —

८ । दरिद्राके अन्तिम आ की व्यञ्जनादि अविकारक प्रत्यय आगे रहने पर इ होता है, तथा म्बरादि त्रिकारक प्रत्यय आगे रहनेपर चसका ली होता है ।

अद्—पर ।

वर्त ।

लीट् ।

प्र पु अत्ति अत्त अदन्ति म पु अट्टि अत्तम् अत्त  
लङ् ।

प्र पु आदत् आत्ताम् आदन् म पु आद आत्तम् आत्त  
विधि ।

प्र पु अद्यात्—इत्यादि ।

नियम —

९ । आद, आदत्—अद्को प्र पु तथा म, पु को एकप्रचनमें आ आगम होता है ।

वच्—पर ।

लीट् ।

वर्त ।

प्र पु वक्ति वक्त रूप नहीं होता वक्तु वक्ताम् वक्तु  
म पु वक्ति वक्ष्य वक्ष्य यधि वक्तम् वक्त

लङ् ।

प्र पु अवक्तुर् अवक्ताम् अवचन्  
उ पु अवचम् अवचस्व अवचम् अवचम्

विधि ।

प्र पु वचगात्—इत्यादि ।

१० । वच् एक दीर्घी धातु है । कुछ लोगोंने अनुसार इसने वर्तमान-को प्र पु को व व का रूप नहीं होता, औरोंके मतके अनुसार वच्

इन्द्रजित् ( पु )—रावणका पुत्र,  
रावणि

इतिहास ( इतिहास ) पु —इतिहास

कथा ( स्त्री )—किस्सा

काकुत्स्थ ( काकुत्स्थ ) पु —कुकुत्स्थ

राजाका वंशज, राम

कोविदार ( कोविदार ) पु —एक वृत्त

गाण्डीय ( गाण्डीयम् ) न —शत्रु नका

धनु

गार्गी ( स्त्री )—गार्ग्यकी स्त्री

गिर ( स्त्री )—वाणी

जठर ( जठर —रम् ) पु, न —पेट

जनन ( जननम् ) न —जन्म

जननी ( स्त्री )—माता

जन्मान्तर ( जन्मान्तरम् ) ( न, कर्म०,

अन्तरका अर्थ अन्य है, अन्य-

जन्म जन्मान्तरम् ) दूसरा जन्म

जाति ( स्त्री )—वर्ग

तारका ( स्त्री ) नक्षत्र

दल ( दलम् ) न —पत्ता

देव ( देव ) पु —राजा

धृतराष्ट्र ( धृतराष्ट्र ) पु —कौरवों  
पिता

नलिनी ( स्त्री ) कमलकी लता

निबन्धन ( निबन्धनम् ) न —शाश्व

पितामह ( पितामह ) पु —पिता

पिता ( मह प्रत्यय है )

मत्सर ( मत्सर ) पु —डाह

माया ( स्त्री )—कपट

सुरारि ( पु सुर-पु एक देव + श्री-

शत्रु )—सुर दैत्यका शत्रु,

श्रीकृष्ण

मोक्ष ( मोक्ष ) पु —मुक्ति

वदतो व्याघात ( वदतो व्याघात )

( पु वदत वदत—वदके वर्त

वृ की पशुका ए व, बोलने

वालेका + व्याघात पु विरोध)

—एक दोष है, जो वक्ता जब

अपनी कही हुई बातों विस्तृत

कहने लगता है तब होता है।

विकर्षण ( विकर्षणम् ) न —खींचना

विषद्द्रुम ( पु कर्म०, त्रियदेव द्रुम

१। प्र ए व गी, त दि व गीभ्याम्, स न व गीर्षुं पु, पूर्ण, पूर्ण, धू, धू, धूर्ण—व्यञ्जनादि प्रत्यग आगे रहनेपर गिर्, पुर्, तथा धूर्के इ तथा छ की दीर्घ हीत है। आग्नीमि, आग्नीधु वा आग्नीधु—आग्निस्के उपान्त इ की भी इसी प्रकार दीर्घ हीत है।

वियद्द्रुम, वियत् न आकाश  
+ द्रुम-पु पेड ) आकाशरूपी  
पेड

प्रशामभूमि (भूमि) (तत्पु०, विश्रवास  
पु + भूमि स्त्री ) विश्रवाचका  
स्थान, विश्रान्त मनुष्य

पाधि (पु) —रोग

यत्न (शयनम्) न —सोना

शिष्य (शिष्य) पु —छात्र

सलिल (सलिलम्) न —जल

सव्यसाचिन् (पु) —अर्जुनका नाम  
(सव्य-विशे० द्राया + साचिन्—  
सच् म्वा चम = धनुष  
चटाना । अर्जुन द्राये द्वायसे  
भी द्राण क्कोड सकता था )

विशेषण ।

प्रकण ( बहु०, नास्ति कण  
यस्य सोऽकण, अ + कण—  
स्त्री दया ) —निर्दय

अक्षर—अनक्षर

अधामित ( अधि + आम् अ आ  
+ त ) —वषा हुआ

अनुकम्पित ( अनु + कम्प म्वा आ  
+ त ) —अनुसृत

अपार (बहु०) —लिखका अन्त नहीं,  
अनन्त

अपुत्र ( बहु ) —लिखको लडका  
नहीं वर

अर्हत् (अर्ह-म्वा पर का वर्त कृ )  
—योग्य, पूज्य,

अशरण ( स्त्री-अशरणा, बहु०, अ  
+ शरण—न आगय ) अनाथ

उत्कृष्ट ( उद + कृष + त ) —उत्तम  
उचित—योग्य

उभ—दो ( सर्वदा द्वि व में )

एकाकिन्—अकेला

कृपण—नीच, अविचारी

अक्ष ( अम् + त ) —खाया गया  
हुआ, नष्ट

चपल—चञ्चल

तरल—चञ्चल

दक्षिण—दहना, कुशल

दुराचार ( बहु०, दुष्ट आचारो यस्य स  
दुराचार, दुर खराब, दुरा + प्राचार  
—पु व्यवहार ) दुरे व्यवहारका

रिच्-उभ ।

वर्त पर ।

आत्म ।

प्र	पु	रिणक्ति	रिङ्क्त	रिञ्चन्ति	म	पु	रिष्णु	रिञ्चाय	रिष्णुः
-----	----	---------	---------	-----------	---	----	--------	---------	---------

लोट-पर ।

आत्म ।

म	पु	रिङ्गिध	रिङ्क्तम्	रिङ्क्त	म	पु	रिङ्ग्व	रिञ्जायाम्	रिङ्गधम्
---	----	---------	-----------	---------	---	----	---------	------------	----------

उ	पु	रिणचानि	रिणचाव	रिणचाम	रिणचै	रिणचावहै	रिणचामहै
---	----	---------	--------	--------	-------	----------	----------

लङ्-पर

म	पु	अरिणक्-ग्	अरिङ्क्ताम्	अरिञ्चन्
---	----	-----------	-------------	----------

आत्म ।

म	पु	अरिङ्क्या	अरिञ्जायाम्	अरिङ्गध्वम्
---	----	-----------	-------------	-------------

विधि पर ।

आत्म ।

म	पु	रिञ्चयात्—इत्यादि	रिञ्चयित—इत्यादि
---	----	-------------------	------------------

रिच् + घञ् = रिच् + घञ् = रिङ्ग् + ध्वञ् ( पाठ १३ वा निय. २ ) = रिङ्गावम् ( नीचको २ रे नियमको अनुसार न् षो ड हुश्रा ) ।

२ । पङ्के वीचमें न् तथा युको उषको आगे रटनेवासे व्यङ्गनको ( श् घ्, म् के सिवा ) वर्गका अनुनासिक होता है ( २२ वें पाठका २१ नियम देखो ) ।

भिङ्-उभ ।

वर्त पर ।

आत्म ।

म	पु	भिनत्सि	भिन्त्य	भिन्त्य	म	पु	भिन्ते	भिन्दाते	भिन्दो
---	----	---------	---------	---------	---	----	--------	----------	--------

लोट-पर ।

उ	पु	भिन्दानि	भिन्दाव	भिन्दास
---	----	----------	---------	---------

आत्म ।

म	पु	भिन्ताम्	भिन्दाताम्	भिन्दाताम्
---	----	----------	------------	------------

लङ् — पर ।

प्र पु	अभिनत्-ङ्	अभिन्ताम्	अभिन्दन्
म पु	अभिन-नत्-ङ्	अभिन्ताम्	अभिन्त

आत्म ।

प्र पु	अभिन्त	अभिन्दाताम्	अभिन्दत
म पु	अभिन्द्या	अभिन्दायाम्	अभिन्दन्म

विधि — पर ।

प्र पु भिन्द्यात्—इत्यादि ।

आत्म ।

प्र पु भिन्दीत—इत्यादि

भिन् + छि = भिन्द् + छि = भिन्द् + धि ( २७ वा पाठ, १५ वा नियम ) = भिन्दि ।

द्विष् — पर ।

वर्त ।

लोट् ।

प्र पु द्विनस्ति द्विष् द्विषन्ति म पु द्विन्धि द्विष्ताम् द्विष्ता

लङ् ।

विधि ।

प्र पु अद्विनत्-ङ् अद्विष्ताम् अद्विषन् द्विष्यात्—इत्यादि ।

म पु अद्विन-नत्-ङ् अद्विष्ताम् अद्विष्ता

३ । द्विष् + मि = द्विष् + मि = द्विषन् + मि = द्विषन्ति—यदि धातुमें अनुनासिक हो तो सधादिगणको विकारणको पूर्व उसका लोप होता है ।

४ । अद्विन — नत्, अद्विनत्—लङ् को म पु को ए व में धातुको अन्तिम स् को प्रकल्पसे त् होता है, तथा लङ् को म पु को ए व में नियम ।

द्विष् + छि = द्विष् + छि = द्विष् + धि = द्विष + धि = द्विष् + धि ( २८ वा पाठ, नियम ३ ) = द्विन्धि ।



रिच्-उभ ।

वर्त पर ।

आत्म ।

प्र पु रिणक्ति रिङ्क्त रिञ्चन्ति म पु रिङ्क्ते रिञ्चाये रिङ्क्ते

लोट-पर ।

आत्म ।

म पु रिङ्ग्धि रिङ्क्तम् रिङ्क्त प्र पु रिङ्क्व रिञ्चायाम् रिङ्ग्धम्

उ पु रिणचानि रिणचात्र रिणचाम रिणचै रिणचावहै रिणचामहै

लङ्-पर

प्र पु अरिणक्-ग्

अरिङ्क्ताम्

अरिञ्चन्

आत्म ।

म पु अरिङ्क्या

अरिञ्चायाम्

अरिङ्क्ध्वम्

विधि पर ।

आत्म ।

प्र पु रिञ्चात्—इत्यादि

रिञ्चीत्—इत्यादि

रिच् + घम् = रिन् च् + घम् = रिन्ग् + ध्वम् ( पाठ १३ वा नियम २ ) = रिङ्ग्ध्वम् ( नीचको २ रे नियमको अनुसार न् को ङ् हुआ ) ।

२ । पङ्क्तौ वौचमें न् तथा सूको उषको आगे रहनेवाले व्यञ्जनको ( श्, ष्, म् के सिवा ) वर्गका अनुनासिक होता है ( २२ वें पाठका २ग नियम देखो ) ।

भिङ्-उभ ।

वर्त पर ।

आत्म ।

म पु भिनत्सि भिन्त्य भिन्त्य प्र पु भिन्ते भिन्दाते भिन्दते

लोट-पर ।

उ पु

भिनदानि

भिनदाय

भिनदाम

आत्म ।

प्र पु

भिन्ताम्

भिन्दाताम्

भिन्दताम्

लङ्—पर ।

प्र पु	अभिनत्-इ	अभिन्ताम्	अभिन्दन्
स पु	अभिन-नत्-इ	अभिन्तम्	अभिन्त

आत्म ।

प्र पु	अभिन्त	अभिन्दाताम्	अभिन्दत
स पु	अभिन्त्या	अभिन्दायाम्	अभिन्द्वम्

विधि—पर ।

प्र पु भिन्द्यात्—इत्यादि ।

आत्म ।

प्र पु भिन्दीत—इत्यादि

भिन् + हि = भिन्दु + हि = भिन्दु + धि ( २७ वा पाठ, १५ वा नियम ) = भिन्दि ।

द्विष्—पर ।

वर्त ।

लोट् ।

प्र पु द्विनक्षि द्विष् द्विषन्ति स पु द्विष्वि द्विष्ताम् द्विष्ता

लङ् ।

विधि ।

प्र पु अद्विनत्-इ अद्विष्ताम् अद्विषन् द्विष्यात्—इत्यादि ।

स पु अद्विन-नत्-इ अद्विष्ताम् अद्विष्ता

३। द्विष् + मि = द्विष् + मि = द्विषन् + मि = द्विषन्ति—यदि धातुमें अनुनासिक हो तो सधादिगणयो विकरणयो पूर्व उसका लोप होता है ।

४। अद्विन—नत्, अद्विनत्—लङ् को स पु को र व में धातुको अन्तिम स् को त्रिकल्पसे ल होता है, तथा लङ् को प्र पु को र व में नित्य ।

-द्विष् + हि = द्विष + हि = द्विषम् + हि = द्विष + धि = द्विष + धि ( २८ वा पाठ, नियम ई ) = द्विष्वि ।

लिङ्—अ उभ ।

वर्त, पर, ।

आत्म ।

प्र पु	लेटि	लीठ	लिङ्गति	म. पु	लिते	लिङ्गधे	लीट्
म पु	लेत्ति	,,	लीठ	उ पु	लिङ्गे	लिङ्गधे	लिङ्गधे

लीट्—पर ।

आत्म ।

म पु	लीटि	लीटम्	लीठ	उ पु	लेहै	लेहावहै	लेहामहै
------	------	-------	-----	------	------	---------	---------

लङ्—पर ।

प्र पु	अलेट्-ङ्	अलीटाम्	अलिङ्गन्
--------	----------	---------	----------

आत्म ।

म पु	अलीटा	अलिङ्गायाम्	अलीङ्गम्
------	-------	-------------	----------

विधि पर ।

आत्म ।

प्र पु	लिङ्गात्—इत्यादि ।	लिङ्गीत—इत्यादि ।
--------	--------------------	-------------------

लिङ् + ति = लेह् + ति = लेठ् + ति = लेठ् + धि = लेठ् + धि  
 = लेटि, लिङ् + धे = लिठ् + धे = लिक् + धे [ २८ वां पाठ, नि (ए) ]  
 = लिक् = प = लिते, लिङ् + ध्ये = लिङ् + ध्व = लिङ् + ठ् = लीट्

अलिङ् + त् = अलेह् + त् = अलेह् + अलेठ् = अलेट्—ङ् ।

लिङ् + त (भूत कृ प्रत्यय) = लिठ् + त = लिठ् + ध = लिठ् + ध  
 = लीट ।

लेटुम् ( तुम् ), लीटा ( अथ भू कृ )

लेटि, लीठ—

(अ) अनुनासिक वा अन्त स्थको ङोह कोहं व्यञ्जन आगे होनेपर, त  
 पक्षे अन्तमें होनेपर धातुको अन्तिम ङ् को ठ् होता है ।

(आ) धर्मको घतुर्घ धर्णको वाद आनेवाले प्रत्ययसम्बन्धी त त  
 य को घ होता है ।

( इ ) ङ् आगे रहन पर ङ् का लोप होता है और उसके पूर्व रहने-ले स्वरको ( ऋ को सिवा ) दीर्घ होता है, यदि वह द्रुस्व हो ।

दुह—उभ ।

वर्तं पर ।

आत्म ।

पु	धोत्ति	दुग्ध	दुग्ध	प्र पु	दुग्धे	दुह्यते	दुहते
पु	दोहति	दुह्य	दुह्य	म पु	दुह्ये	दुह्यते	दुह्यते

लोट्—पर ।

आत्म ।

पु,	दुग्धि	दुग्धम्,	दुग्ध	धुत्तु	दुह्यायाम्,	धुग्ध्वम्
-----	--------	----------	-------	--------	-------------	-----------

लङ्—पर ।

आत्म ।

पु अधोक्त्वा अदुग्धाम् अदुह्यते म पु अदुग्धा अदुह्यायाम् अधुग्ध्वम्  
विधि—दुह्यात्—दुहीत ।

दुह् + त = दुह् + त = दुह् + ध = दुग्ध ( भू कृ ), दुह् + तुम् =  
दुह् + तुम् = दोह् + तुम् = दोह् + धुम् = दोग्धुम्, दुह् + त्वा = दुह्या  
अथ भू कृ )—

( ई ) दोग्धि, दुग्धे—इकारादि धातुओंके अन्तिम ह् को घ् होता  
यदि उसके आगे अनुनासिक वा अन्त स्वरको सिवा कोइ व्यञ्जन हो, वा  
इको अन्तमें हो ।

सुह् + त = सुह् + त = सुह् + ध = सुह्य + त, तथा सुह् + ध  
= सुह्य तथा सुग्ध, सह् + त = सह् + त = सह् + ध = सह्य + त =  
सह्य, नह् + त = नह् + त = नह् + ध = नह्य, उपानह् ( जूता )—  
उपानह्—उपानह्य—उपानह्य—उपानह्य—उपानह्य—

( उ ) मूढ, सुग्ध—दृ, ह्, सुह्, स्तुह्, तथा स्निह्के अन्तिम ह् को  
वा घ् होता है, यदि उसके बाद अनुनासिक वा अन्त स्वरको कोइ कोइ  
व्यञ्जन हो, वा पदके अन्तमें हो । इसी प्रकार नह्के ह् को घ्  
आ है ।

( क ) सीट्, त्रीटुस्—ट् आगे रहने पर जत्र ट् का लोप होता है तो सट् तथा वट् धातुओंमें उसके पूर्व रहनेवाले स्वरको ओ होता है ।

दुट् + सि = दोट् + सि = दोघ् + सि ( इ ) = धोघ् + सि ( ए नीचे ) = धोक + सि = धोक् + पि = धोत्ति ।

अदुट् + स् = अदोघ् + स् = अदोघ् = अदोघ् । ( ई ) = अघाघ् ( ए ) = अघोक्-ग् ।

( ए ) धोत्ति—जत्र धातुका कोई अवयव व, ग्, ड्, वा ट् में आरम्भ होता हो और वर्गके चतुर्थ वर्णमें समाप्त होता हो तो व, ग्, ड्, तथा ट् को क्रमसे भ्, घ्, ट् तथा ध् होते हैं, जत्र उसके आगे स् वा ध्व हो, वा वह पदको अन्तमें हो ।

वृह—स पर ।

वर्त ।

लोट् ।

प्र पु वृणोति वृणोति वृणन्ति उ पु वृणहानि वृणहाव वृणहाम  
५ । अत्रोत्-ड्, अत्रोत्सु—वृह् धातुमें व्यञ्जनादि विकारक प्रत्यय आगे रहने पर अन्तिम वर्णको पूर्व न को बदले ने विकरण लगता है ।

मुकरेऽरखयाने पिता मा प्रायुह्क्त दुष्करे रत्न पुनश्चामिति रामो  
भरतमब्रवीत् ।

नियतमानस सन् योगी सदात्मान युञ्जन्नेवास्ते ।

सूनुता वाक् कामान् दुग्धेऽलक्ष्मीं विप्रकर्षति कीर्ति सूते दुष्कृत  
हिनस्ति च ।

पृच्छ तरलिका त्वत्कृते मया धानुभूतावस्था । युगसहस्रमिवाचरन्  
कृच्छ्रं नीतो दिवस प्रसीद । सकृदप्यालप । ईषदपि विलोक्य । पूर्य  
से मनोरथसु । आर्तास्मि भक्तास्म्यनुरक्तान्मनाथारिषि वालारम्भगतिकारिषि ।  
कथय किमपराद्ध, कि वा नानुष्ठित मया, कस्या वा राज्ञायामादृत, कस्मिन्  
वा त्वदनुक्ते नाभिरत, येन कुपितोऽसि ।

लिका ( स्त्री )—एक स्त्रीका नाम  
 ण ( वृणम् ) न —प्राप्त  
 व् ( स्त्री )—स्वर्ग  
 प्रसूत्रता ( स्त्री )—बहुत धीरे २  
 काम करना  
 षकृत ( दुष्कृतम् ) न —पाप  
 वत ( देवतम् ) न —देवता  
 ष्य ( द्रव्यम् ) न —बहुमूल्य वस्तु  
 ष्य ( पथ्यम् ) न —आरोग्यके लिये  
 दितकारी वस्तु  
 ष्यु ( पु )—प्राण्डयोंका पिता  
 ष्यु ( पिण्ड ) पु —खानेकी वस्तु  
 ष्यतिशता ( स्त्री )—सूर्खता  
 ष्यति ( स्त्री )—सम्पत्ति, चन्नति  
 ष्यज ( भेषजम् ) न —श्रीपद  
 ष्यु ( मन्तु ) पु —सलाह  
 ष्यानस ( मानसम् ) न —मन

यत्वन् ( पु )—यागकर्ता  
 यजन ( यवन ) पु —यवन, म्लेच्छ  
 युग ( युगम् ) न —सत्य, द्वापर, त्रेता,  
 कलि, इन चार युगोंमें एक युग  
 योगिन् ( पु )—योगी  
 लव ( लव ) पु —रामका पुत्र  
 शील ( शीलम् ) न —सद्गुण  
 सहस्र ( सहस्रम् ) न —हजार  
 साचिद्य ( साचिद्यम् ) न —मन्त्रीका  
 पद  
 सारमेय ( सारमेय ) पु —सरमाका  
 पुत्र, कुत्ता  
 सौख्य ( सौख्यम् ) न —सुख  
 हरितकी ( स्त्री )—हरा  
 हर्म्य ( हर्म्यम् ) न —महल  
 हविम् ( न )—होमद्रव्य  
 हृद ( हृद ) पु —गरिरा स्थान

### विशेषण ।

बहु०, नास्ति गतिर्यस्या  
 +

अनाथ ( बहु०, अ + नाथ पु )—  
 बिना स्वामीका  
 अनुकुल—योग्य

आत्मा नदी सयमपुण्यतीर्था

सयद्गदा शीलतटा दयोर्मि ।

तत्रावगाह कुरु पाण्डुपुत्र

न वारिणा शुष्यति चाम्तरात्मा ॥

कोई भी पशुओंको न मारे । यह एक बड़ा धार्मिक कर्तव्य है ।  
शत्रुकी सेनाने उस नगरको घेर लियां ।  
उसने उससे पूछा, “क्या तुम अच्छे हो ?”  
झरझर फूलोंका रस चाटते है ।  
उसने गायको दुधा और दूध पिया ।  
मने कौनसा अपराध किया है जिससे प्राय सुभ्रपर कोष करते है ।  
तुम्हारे निमित्त हमने बहुत हानि सही ।  
त्रिपद्में एक दिन हजार युगोंके समान मालूम पडता है ।  
मैं अनाथ हूँ । मुझे कोई आश्रय नहीं । कृपाकर मेरी सहाय  
कीजिये ।

सज्ञाशब्द ।

अरख्ययान ( तत्पु०, अरख्य न वन + यान — न जाना )—वनमें जाना	अवगाह ( अवगाह ) पु —ग अवस्था ( स्त्री )—स्थिति इन्द्र ( इन्द्र ) पु —इन्द्र कर्म ( पु , स्त्री )—तरङ्ग, लक्ष गति ( स्त्री )—सरनेको वाद जाने लगह
अन्तरात्मन् ( तत्पु०, अन्तर—विशे०, भीतरो + आत्मन् पु )—भीतरी आत्मा	गो ( पु , स्त्री )—बैल , गाय चार ( चार ) पु —चर तन्द्री ( स्त्री )—आराध्य
अभूमि ( स्त्री नञ्स० ) अस्थान, अयोग्य स्थान	
अलक्ष्मी ( स्त्री ) दरिद्रता	

धातु ।

+ ऊह् ( अपोहति—भ्वा पर ) —नष्ट करना	खाली होना, अतिके साथ ( कमणि )—बढकर होना, किसीसे बढा होना
+ तप् ( आलपति—भ्वा पर ) —जोलना	सघ् ( स्याद्धि सन्धु-स उभ )— रोकना, समूहो साथ—रोकना
+ इ ( उपैति, अ पर )—पास जाना	लिष्ट ( लेठि लीठि—अ उभ )— चाटना, प्र तथा अव को साथ —चाटना
इ ( हिनत्ति हिनत्ति स उभ )— काटना, उट्को साथ—काटना	वि + विच् ( विविनक्ति वृक्त्—स उभ )—विचार करना
उ ( तपति, भ्वा पर )—तपना	वि + प्र + कृष् ( विप्ररुषति, भ्वा पर )—दूर ले जाना
उ ( दोषिध, हुग्धे—अ उभ ) —दुष्टना	वि + लुक् ( विलोकयति—चु पर ) —देखना
( पूरयति चु पर )—भरना	वृञ् ( व्रजति भ्वा पर )—खाना
इ ( भिनत्ति—भिन्त्ति—स उभ )— टोड़ना	शुघ् ( शुघति—दि पर )—पवित्र होना
जि ( मुनक्ति—स पर )—रक्षण करना, उपभोग करना, ( भुङ्क्ते स आ )—खाना	सङ् [ सीङ् ] ( सीदति, भ्वा पर ) —नष्ट होना
उ ( सुष्यति—ते, मर्षयति—ते—दि, चु उभ )—क्षमा करना	सेव् ( सेवते—भ्वा आ )—सेवा करना
उ ( युक्ति—युङ्क्ते—स उभ )— जोड़ना, अनुको साथ—पूढ़ना; निके साथ—निषेध करना	दिष् ( दिनस्ति—स पर )—नष्ट करना
वृ ( रिणक्ति—रिङ्क्ते स उभ )—	

१। अब भुज का अर्थ रक्षण करना वा उपभोग करना नहीं है तब यह आ है ।



अनुभूत ( अनु + भू + त )—जाना  
हुआ

अनुरक्त ( अनु + रक्त्<sup>१</sup> ) भवा, दि  
उभ रजति रजते, रज्यति-ते +  
त )—अनुरागी

अनुष्ठित ( अनु + स्था + त )—कृत

अपराद्ध ( अप + राध् - दि + त )  
—अपराधी

अभिरत ( अभि + रम् - भ्वा आ  
त )—अनुरक्त

आदृत ( आ + दृ, तु आ )—आदर  
किया गया

आप्त—विश्वस्त

कटु—कड़ुवा

किमपि—कोई अवर्णनीय वस्तु  
( स्तुत्य वा घृण्य )

कियत्—कितना

दुष्कर—करनेमें कठिन

नियत ( नि + यम् [ यच्छ ] + त )  
नियन्तुत

नियुक्त ( नि + युज् + त )—खा  
हुआ

प्रदेय ( प्र + दा + य )—देने योग्य

प्रवृत्त ( प्र + वृत् - भ्वा आ + त  
—लगा हुआ

प्रोज्झित ( प्र + उज्झ् + त )—त

भक्त ( भज् + त )—भक्त

रिक्तदृष्ट ( त्रहु०, रिक्त, रिच् + त  
खाली + दृष्ट दाय )—खा  
दाय

सनियोजित ( स + नि + युज् प्रेर०  
त )—लगाया गया हुआ

संभावित ( स + भू - प्रेर० + त )  
प्रतिष्ठित

सुकर—करनेमें सुगम

सूनृत—सत्य तथा मधुर वाणी

सेवित ( सेव् - भ्वा आ +  
—आश्रित

हातव्य ( हा + तव्य )—होना  
योग्य

१। रजति, सजति, स्वजते, रजति ते, रज्यति ते—दश् पर, सज् पर, स्वज् पर  
रज् उभ इन धातुओंके अनुनासिकका, विकरण आगे रहनेपर, लीप हीता है ।

धातु ।

र + ऊट् ( अपोहति—भ्वा पर )  
 —नष्ट करना  
 र + उण् ( आलपति—भ्वा पर )  
 —बोलना  
 र + इ ( उपैति, अ पर )—पास  
 जाना  
 र् ( क्षिन्ति-क्षिन्ते-र उभ )—  
 काटना, उट्टके साथ—काटना  
 र् ( तपति, भ्वा पर )—तपना  
 र् ( दोग्धि, दुग्धे-अ. उभ )  
 —दुहना  
 र् ( पूरयति-चु पर )—भरना  
 र् ( भित्ति-भित्ते-र उभ )—  
 टोड़ना  
 र् ( मुनक्ति-र पर )—रक्षण  
 करना, उपभोग करना, (मुह्क्ते  
 र आ )—खाना  
 र् ( सृष्यति-ते, सर्षयति-ते-दि,  
 चु उभ )—क्षमा करना  
 र् ( पुनक्ति-पुङ्क्ते-र उभ )—  
 जोड़ना, अनुको साथ—पूछना,  
 निको साथ—नियोग करना  
 र् ( रिशक्ति-रिह्क्ते-र उभ )—

खाली होना, अतिके साथ  
 ( कर्मणि )—बटकर होना,  
 किसीसे बढ़ा होना  
 र्घ् ( रुग्न्ति-रुग्न्ते-र उभ )—  
 रोकना, समूके साथ—रोकना  
 र्घ् ( लेट्टि-लौट्टे-अ उभ )—  
 चाटना, प्र तथा अय के साथ  
 —चाटना  
 वि + विच ( विविनक्ति-हृक्ते—र  
 उभ )—विचार करना  
 वि + प्र + कृष् ( विप्रकृषति, भ्वा  
 पर )—दूर ले जाना  
 वि + लुक् ( विलोकयति-चु पर )  
 —देखना  
 वृक्ष ( व्रजति-भ्वा पर )—जाना  
 शुध् ( शुध्यति-दि पर )—पवित्र  
 होना  
 सद् [ सौद् ] ( सौदति, भ्वा पर )  
 —नष्ट होना  
 सेव् ( सेजते—भ्वा आ )—सेवा  
 करना  
 ह्रिष् ( ह्रिनस्ति—र पर )—नष्ट  
 करना

१। शब्द भुज्ज का अर्थ रक्षण करना वा उपभोग करना नहीं है तब वक्ष् आ है ।

अनुभूत ( अनु + भू + त )—जाना  
हुआ  
अनुरक्त ( अनु + रक्त्<sup>१</sup> ) भ्वा, दि  
उभ रजति रजते, रजति-ते +  
त )—अनुरागी  
अनुष्ठित ( अनु + स्था + त )—कृत  
अपराह ( अप + राध — दि + त )  
—अपराधी  
अभिरत ( अभि + रम्—भ्वा आ  
त )—अनुरक्त  
आदृत ( आ + दृ, तु आ )—आदर  
किया गया  
आप्त—विश्वस्त  
कटु—कटुवा  
किमपि—कोई अवर्णनीय वस्तु  
( स्तुत्य वा घृण्य )  
कियत्—कितना  
दुष्कर—करनेमें कठिन  
नियत ( नि + यम् [ यच्छ् ] + त )  
नियन्तुत

नियुक्त ( नि + युज् + त )—का  
हुआ  
प्रदेय ( प्र + दा + य )—देने योग्य  
प्रवृत्त ( प्र + वृत्—भ्वा आ +  
—तगा हुआ  
प्रोज्झित ( प्र + चज्झ् + त )—  
भक्त ( भज् + त )—भक्त  
रिक्तदृष्ट ( वृह्<sup>०</sup>, रिक्त, रिच् + त—  
खाली + दृष्ट दाय )—खाली  
द्वारा  
संनियोजित ( स + नि + युज् प्रेर<sup>०</sup> +  
त )—उगाया गया हुआ  
सभावित ( स + भू—प्रेर<sup>०</sup> + त )—  
प्रतिष्ठित  
मुकर—करनेमें मुगम  
सूनृत—सत्य तथा मयुर वाणी  
सेवित ( सेव्—भ्वा आ. + त )  
—आश्रित  
हातव्य ( हा + तव्य )—होना  
योग्य

१। दशति, सजति, स्वजते, रजति ते, रचति ते—दश् पर, सज् पर, स्वच्, रज् उभ इन धातुओंके अतुनासिकका, विकरण आगे रहनेपर, लीप होता है ।

धातु ।

प + ऊह् ( अपोहति—भ्वा पर )  
—नष्ट करना

प + लप् ( आलपति—भ्वा पर )  
—बोलना

प + इ ( उपैति, अ पर )—पाष  
जाना

प + इ ( क्लिनत्ति क्लिन्ते स उभ )—  
काटना, उट्टुके साथ—काटना

प + इ ( तपति, भ्वा पर )—तपना

प + इ ( दोग्धि, दुग्धे-अ उभ )  
—दुहना

प + इ ( पूरयति चु पर )—भरना

प + इ ( भिनत्ति-भिन्ते-स उभ )—  
टोड़ना

प + इ ( मुनक्ति-स पर )—रक्षण  
करना, उपभोग करना, (मुङ्क्ते  
स आ )—खाना

प + इ ( मृष्यति-ते, मर्षयति-ते-दि,  
चु उभ )—क्षमा करना

प + इ ( पुनक्ति-पुङ्क्ते-स उभ )—  
जोड़ना, अनुको साथ—पूछना,  
निषेको साथ—निषेग करना

प + इ ( रिशक्ति-रिङ्क्ते स उभ )—

खाली होना, अतिके साथ  
( कर्मणि )—ब्रह्मर होना,

किसीसे बड़ा होना

रुघ् ( रुणद्धि-रुद्धे-स उभ )—  
रोकना, सम्को साथ—रोकना

लिह् ( लेट्टि-लौट्टे-अ उभ )—  
चाटना, प्र तथा अव के साथ  
—चाटना

वि + विच ( विविनक्ति इत्ते—स  
उभ )—विचार करना

वि + प्र + कृष् ( विप्ररुषति, भ्वा  
पर )—घूर ले जाना

वि + लुक् ( विलोकयति-चु पर )  
—देखना

वृञ् ( व्रजति भ्वा पर )—जाना

शुध् ( शुध्यति-दि पर )—पवित्र  
होना

सद् [ सीद् ] ( सीदति, भ्वा पर )  
—नष्ट होना

सेव् ( सेवते—भ्वा आ )—सेवा  
करना

हिष् ( हिनक्ति—स पर )—नष्ट  
करना

१। कश्च मुञ्ज का अर्थ रक्षण करना वा उपभोग करना नहीं है तब यह आ है ।

अनुभूत ( अनु + भू + त )—जाना  
हुआ

अनुरक्त ( अनु + रञ्ज्<sup>१</sup> ) भवा, दि  
उभ रजति रजते, रजति-ते +  
त )—अनुरागी

अनुष्ठित ( अनु + ष्ठा + त )—कृत

अपराह ( अप + राध्—दि + त )  
—अपराधी

अभिरत ( अभि + रम्—भवा आ  
त )—अनुरक्त

आदृत ( आ + दृ, हु आ )—आदर  
किया गया

आप्त—विश्वस्त

कटु—कड़ुवा

किमपि—कोई अवर्णनीय वस्तु  
( क्षुत्वा वा घृण्य )

क्रियत्—कितना

दुष्कर—करनेमें कठिन

नियत ( नि + यम् [ यच्छ् ] + त )  
नियन्तुत

नियुक्त ( नि + युज् + त )—का  
हुआ

प्रदेय ( प्र + दा + य )—देने योग्य

प्रवृत्त ( प्र + वृत्—भवा आ + त )  
—लगा हुआ

प्रोज्झित ( प्र + ज्झ् + त )—रक्त

भक्त ( भज् + त )—भक्त

रिक्तदृष्ट ( वहु०, रिक्त, रिच् + त—  
खाली + दृष्ट दाय )—खाली  
दाय

सनियोजित ( स + नि + युज् प्रेर० +  
त )—लगाया गया हुआ

सभावित ( स + भू—प्रेर० + त )—  
प्रतिष्ठित

सुकर—करनेमें सुगम

सूच्य—सत्य तथा सधुर वाणी

सेवित ( सेव्—भवा आ + त )  
—आश्रित

हातव्य ( हा + तव्य )—होना  
योग्य

१। रजति, सजति, मजति, रजति ते, रज्यति ते—दग् पर, सज् पर, मज् पर, रज् पर उभ इन धातुओंके अनुनासिकका, विकारण आगे रहनेपर, लीप होता है ।



## श्रव्यय ।

हंघत्—घोड़ा  
 उत्सृज्य ( उट + सृज् का श्रव्य भू  
 गृ )—झोंडकर  
 कदाचित्—कभी  
 कृच्छ्रं ( कृच्छ्र न की त् ए व )—  
 कठिनतासे  
 तदर्थम् ( च तत्पु०, तस्मै इदं यथा )

स्यात्तया, क्रियाविशेषे  
 उरुके लिये  
 त्वत्सृजे ( तत्पु०, तज् कृते, त्वत्-  
 सर्व०, + कृते—श्रव्य ) ३  
 निमित्त  
 सवृत्—एक वार

## पाठ ३० ।

## लुहोत्यादि गण ।

देहि मे प्रतिवचनम्—इसको उत्तर दो ।

सृगोर्न विभेत्यथ वीर —यह वीर सरणसे नहीं डरता ।

पावके हविर्जुहुधि—अग्निमें होमद्रव्यका होम करो ।

लोकस्य कोलाहल उदजिहीत—लोगोंका कोलाहल उठा ।

अवधत्ता देवो देवी च—महाराज और महारानी ध्यान दें ।

न न म य य युतेय मालिनी भोगिलोकै—न, न, म, य, तथा

इन गणोंसे युक्त मालिनी, सप तथा लोकोसे ( ७ तथा ८ अक्षर, कर्तोदि

सप तथा ८ लोक है ) = लिखमें न, न, म, य, तथा य, ये गण हों, ।

७ ८ अक्षरोंपर यति वा विराम हो, उसे मालिनी-कृन्द कहते हैं ।

मालिनी एक कृन्द है । तीन अक्षरोंका एक गण होता है । अथ

लिखित आठ गण होते हैं—

मस्त्रगुरुस्त्रिराद्युश्च सकारो भाद्रिगुरु पुनरादिलघुर्य ।

जो गुरुमध्यगतो रलमध्य सौण्डगुरु कथितोऽन्तलघुस्त ॥

मगणमें ३ गुण, तथा नगणमें ३ लघु होते हैं। भगणमें आदि गुण ( और दूसरे दो लघु ), यगणमें आदि लघु ( और दूसरे गुण ), लगणमें मध्य गुण ( और दूसरे दो लघु ), रगणमें मध्य लघु ( और दूसरे दो गुण ), त्वगणमें अक्षर गुण ( और दूसरे दो लघु ), तथा तगणमें अन्तर लघु ( और दूसरे दो गुण ) होते हैं।

दृष्टको लघु, तथा शीर्षको गुरु कहते हैं। यदि सयोग आगे हो तो पूर्व दृष्ट गुण समझा जाता है। पादके अन्तका अक्षर लघु होनेपर भी गुरु कहता है।

ल=लघु, ग=गुरु।

इन्द्रके कुछ अक्षरोंके जाद यति वा त्रिराम होता है। मालिनीमें ८ तथा ७ अक्षरोंपर यति है।

संस्कृतमें उसी इन्द्रके पादमें प्राय इन्द्रका लक्षण कहा जाता है।

इस प्रकार मालिनीके पादका यह लक्षण हुआ —

। । । । । । ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ  
न न म य य यु ते य ॥ मा लि नी भो मि लो कै ॥

। चिन्ह लघुका, ऽ गुरुका, तथा ॥ यतिका चिन्ह है।

इस पाठमें जुहोत्यादि गणके धातुओंका वर्णन किया गया है। इस गणमें प्रत्यय लगानेके पूर्व धातुओंको द्वित्व होता है। लिट् वा प्रोक्ष-भूतमें भी धातुओंको द्वित्व होता है।

द्वित्वके सामान्य नियम।

अद्—अ अद्, ऋ—ऋ ऋ, भी—भी भी, पच्—प पच्।

नियम :—

१। स्वरदि धातुओंमें स्वरको, तथा व्यञ्जनादि धातुओंमें अग्रिम स्वरके साथ व्यञ्जनको द्वित्व होता है।

त्यज्—तत्यज् क्री—क्रीक्री, ऋ—ऋऋ। नियम—



२ । सयोगादि धातुश्रीमें स्वरसहित पूर्ववर्णको द्वित्व होता है।  
 कृ—कृकृ, स्पृश्—स्पृशृश्, रत्यै—तैरत्यै ।

नियम —

३ । यदि धातुके आदिमें सयोग हो जिसका प्रथम वर्ण श्, प्, स् हो और द्वितीय वर्ण अघोष हो, तो स्वरसहित उस अघोष वर्णके द्वित्व होता है ।

४ । द्वित्वके पूर्व भागको अभ्यास कहते हैं—  
 जि—जिजि, कृ—कृकृ, आम्—आ आम् ।

अभ्यासमें परिवर्तन ।

( अ ) भो—भौभौ—भिभो, नी—नीनौ—निनी, धा ५  
 धधा ।

( आ ) कृ—कृकृ—ककृ, स्पृ—स्पृस्पृ—सस्पृ ।

( इ ) खन्—खखन्—कखन्, छिद्—छि छिद्—विछिद्—  
 विच्छिद्, भो—भौभौ—भिभौ—विभी, धा—धाधा—धधा—दधा

( ई ) कृ—कृकृ—ककृ चकृ; खन्—खखन्—कखन्—चखन्, गण्—गण  
 छाण् ।

( उ ) हृ—हृहृ—हृहृ-जहृ, ह्री—ह्रीह्री—ह्रीह्री-जह्री ।

१ । मच्छ, मच्छाया, शिवच्छाया, अच्छिनत्, चिच्छेद ( छिट्—प्र वा उ पु ष व )  
 जब छ्के पूर्व ऋक्ष स्वर रहता है तो उसको च्छ होता है। च्छिद्यते ( यडन्—वत—  
 पु ए व )—यदि छ्के पूर्व दीर्घ ही तो भी उसको च्छ होता है। नक्षत्रीशया—च्छाय  
 पर आच्छादयति, मा च्छिन्दि—नक्षत्रीका इ पदके अन्तमें है। क्योंकि समासके अवयव  
 पद समके जाते हैं, और अन्तिमके सिवा सब पदोंको विभक्तिश्रीका लीप होता है।  
 तथा मा भो पठ ह, क्योंकि अव्ययोंके बाद विभक्ति आकर उसका लीप होता है।  
 पूष यदि दीर्घ ही और वड पदके अन्तमें ही तो विकल्पसे, पर आ तथा मा यदि पूर्व ही  
 निम्न च्छ होता है।

नियम —

५। (अ) पू-पूपु-पुपू, मील् मीमील् मिमील्, चा-जाजा-  
ना-अभ्यासके दीर्घको द्वस्व होता है ।

(आ) तृ-तृत तृत तृत—अभ्यासके ऋ को अ होता है ।

(इ) फल् फफल्—पफल्, भज् भभज्-बभज्—वर्गके द्वितीय वर्णको  
थमं वण, तथा चतुर्थको तृतीय वर्ण होता है ।

(ई) गद्-गगद्-जगद्, क्षम्-क्षक्षम्-चक्षम्—कवर्गीय वर्णको उमी  
ष्याका चवर्गीय वर्ण होता है ।

(उ) हन्-हहन्-लहन्-ह् को ज् होता है ।

भृ उभ ।

पर, वर्त ।

आत्म ।

पु	त्रिभर्ति	त्रिभृत	त्रिभ्रति	त्रिभते	त्रिभाते	त्रिधते
पु	त्रिभर्षि	त्रिभृष	त्रिभृष	त्रिभृषे	त्रिभृषे	त्रिभृषे
पु	त्रिभर्षि	त्रिभृष	त्रिभृष	त्रिभृषे	त्रिभृषे	त्रिभृषे

लड-पर ।

आत्म ।

पु	अत्रिभ	अत्रिभृताम्	अत्रिभरु	अत्रिभत	अत्रिभृताम्	अत्रिभत
----	--------	-------------	----------	---------	-------------	---------

लोट्-पर ।

आत्म ।

पु	त्रिभर्तुं	त्रिभृताम्	त्रिभ्रतु	उ पु	त्रिभरे	त्रिभरावहे	त्रिभराम हे
----	------------	------------	-----------	------	---------	------------	-------------

विधि पर ।

आ ।

पु	त्रिभृयात्—इत्यादि ।
----	----------------------

प्र पु त्रिघीत—इत्यादि ।

द्री—पर ।

घर्त ।

लोट् ।

पु	त्रिघृति	त्रिघृते	त्रिघृयति	उ पु	त्रिघृपाणि	त्रिघृपात्र	त्रिघृयाम
----	----------	----------	-----------	------	------------	-------------	-----------

लङ् ।

विधि ।

प्र पु अजिह्वेत अजिह्वीताम् अजिह्वयु, जिह्वीयात्—इत्यादि ।

दा—पर ।

प्र पु जहाति जहित—जहीत जहति

लोट् ।

प्र पु जहातु जहिताम्-हीताम् जहतु

म पु जहाहि जहिहि जहीहि जहितम् हीतम् जहित हीत

लङ् ।

विधि ।

प्र पु अजहात् अजहिताम्-हीताम् अजहु, जह्यात्—इत्यादि ।

नियम :—

६ । विभक्ति इत्यादि—सर्वधातुक लकारोंमें भुको द्वित्व होने विभू होता है ।

७ । विसति, विसतु—पर प्र पु व व में नू का लोप होता है ।

८ । अत्रिभस—लङ् के पर प्र पु के व व का प्रत्यय उम् है उस् आगे रहने पर धातुके अन्तिम स्वरको गुण होता है और आ का लोप होता है ।

९ । जहिव—हीव, जहित, जह्यात्—त्यागार्थक पर दा के आद्यङ्गनादि अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर इ या इ होता है, तस्वरादि अविकारक प्रत्यय आगे रहने पर और विधिलिङ्गमें उस् आ लोप होता है । लोटके म पु के ए व में तीन रूप होते हैं—अहाति जहिवि, जहीवि ।

जिह्वी + अति—ई को इय् होता है । क्योंकि उसको पूर्व संयुक्तात् है = जिह्वियति ।

भी—पर ।

वर्त ।

पु विभति विभित—विभीत विभ्यति

लोट् ।

पु विभिहि विभीहि विभितम्-विभीतम् विभित विभीत

लङ् ।

पु अविभेत् अविभिताम्-अविभीताम् अविभ्यु

विधि ।

पु विभियात्—विभीयात् ।

नियम —

१० । व्यञ्जनादि अविष्कारक प्रत्यय आगे रहनेपर भीने स्वरको विकल्पसे द्रुख होता है ।

मा—आत्म ।

हा—आत्म ।

वर्त ।

वर्त ।

पु मिमीते मिमाते मिमते जिहीते जिहाते जिहते

पु मिमे मिमीधहे मिमोधे जिहे जिहीवहे जिहीमहे

लट् ।

लङ् ।

पु अमिमौत अमिमाताम् अमिमत अजिहोत अजिहाताम् अजिरत

लोट् ।

लोट् ।

पु मिमीध्व मिमायाम् मिमीध्वम् जिहीध्व जिहायाम् जिहीध्वम्

विधि ।

विधि ।

पु मिमीत—इत्यादि ।

पु जिहीत—इत्यादि ।

नियम —

११। मिमे, जिष्टे—मा तथा गमनार्थक एा आत्म धातुप्रति सां।  
धातुज लकारमें द्वित्य एो फर मिमा तथा जिष्ठा होता है ।

१२। मिमीते, मिमते, जिष्टीषे, जिष्टताम्—मा तथा गमनार्थक एा  
आत्म को आ फो व्यञ्जनादि अधिकारक प्रत्यय आगे रहनेपर ईं होता है,  
तथा खरादि अधिकारक प्रत्यय आगे रहनेपर उमका खाप होता है ।

हु—पर ।

वर्त ।

लोट ।

म पु जुहोति जुहुत जुष्टति म पु जुहुधि जुहुतम् जुहुत  
लङ् । विधि ।

म पु अजुहोत् अजुहुताम् अजुष्टवु जुहुयात्—इत्यादि ।

नियम —

१३। लोट् को मध्यम पुरुषको ए ख का प्रत्यय धि है । २७ वे पाठ  
१५ वा नियम देखो ।

दा—उभ ।

पर वर्त ।

आत्म ।

म पु ददाति दत्त ददति दत्ते ददाते ददते  
म पु ददाषि दत्थ दत्थ दत्थे ददाषे ददषे

लोट्—पर ।

आत्म ।

म पु देष्टि दत्तम् दत्त दत्थ ददायाम् ददध्वम्  
उ पु ददानि ददाष ददाम ददे ददावहे ददामहे

लङ्—पर ।

आत्म ।

म पु अददात् अदत्ताम् अददु अदत्त अददाताम् अददत्  
उ पु अददाम् अदद्व अदद्व अददि अदद्वहि अदद्वि

विधि ।

पर

आत्म ।

पु दद्यात्—इत्यादि ।

दधीत—इत्यादि ।

धा—उभ ।

वर्त —पर ।

आत्म ।

पु	दधाति	धत्	दधति	धत्ते	दधाते	दधते
पु	दधासि	धत्य	दधत्य	धत्से	दधासे	दधसे
पु	दधामि	दध्व	दधम	दधे	दध्वहे	दधमहे

तोट्—पर ।

आत्म ।

पु	धेहि	धत्सु	धत्	धत्स्व	दधायाम्	दध्वाम्
----	------	-------	-----	--------	---------	---------

लङ्—पर ।

आत्म ।

पु	अदधात्	अदधत्ताम्	अदधु	अदधत्	अदधाताम्	अदधत
----	--------	-----------	------	-------	----------	------

विधि ।

पु दद्यात्—दधीत—इत्यादि ।

निपम —

१४ । (अ) दद्, दधम — व्यञ्जनादि अतिकारक प्रत्यय आगे रहनेपर तथा धाको दद् तथा दध् होता है ।

(आ) ददति, दधतु—स्वरादि अतिकारक प्रत्यय आगे रहनेपर इनको आका लोप होता है ।

(इ) धत्य, धत् — अनुनासिक वा अन्त स्वरको छोड़ और किसी व्यञ्जने आरम्भ होनेवाला अतिकारक प्रत्यय आगे रहनेपर धाको धत् होता है ।

(ई) देहि तथा धेहि लोट्के म पु के ए व के रूप है ।

नियम —

११ । मिमे, लिङ्गे—मा तथा गमनार्थक हा आत्म धातुओंके सर्व धातुक लकारोंमें द्वित्व हो कर मिमा तथा जिहा होता है ।

१२ । मिमीते, मिमते, जिहीषे, जिहताम्—मा तथा गमनार्थक हा आत्म धी आ को व्यञ्जनादि अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर ईं होता है तथा स्वरदि अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर ससका लोप होता है ।

हु—पर ।

वर्त ।

लोट् ।

म पु जुहोति जुहुत जुहति म पु जुहुधि जुहुतम् जुहुत  
लङ् । विधि ।

म पु अजुहोत् अजुहुताम् अजुहव् जुहुयात्—इत्यादि ।

नियम —

१३ । लोट्के मध्यम पुरुषको ए व का प्रत्यय धि है । २७ वे पाठ १५ वा नियम देखो ।

दा—उभ ।

पर वर्त ।

आत्म ।

म पु ददाति दत्त ददति दत्ते ददाते ददते  
म पु ददासि दत्थ दत्थ दत्से ददाथे ददथे

लोट्—पर ।

आत्म ।

म पु देहि दत्तम् दत्त दत्स्व ददाथाम् दद्ध्वम्  
उ पु ददानि ददाव ददाम ददे ददावहे ददामहे

लङ्—पर ।

आत्म ।

म पु अददात् अदत्ताम् अददु अदत्त अददाताम् अददत्  
उ पु अददाम् अददह् अददा अददि अददहि अददधि

विधि ।

पर

आत्म ।

पु दद्यात्—इत्यादि ।

ददीत्—इत्यादि ।

धा—उभ ।

घर्त्त —पर ।

आत्म ।

र पु	दधाति	घत्त	दधति	घत्ते	दधाते	दधते
म. पु	दधासि	घत्स्य	दधस्य	घत्से	दधासे	दधसे
व पु	दधामि	दध्व	दधम	दधे	दध्वहे	दधमहे

लोट्—पर ।

आत्म ।

म पु	धेहि	घत्तम्	घत्त	घत्स्व	दधायाम्	दधस्वम्
------	------	--------	------	--------	---------	---------

लङ्—पर ।

आत्म ।

म पु	अदधात्	अदधताम्	अदधु	अदधत्	अदधताम्	अदधत
------	--------	---------	------	-------	---------	------

विधि ।

म पु दद्यात्—ददीत्—इत्यादि ।

नियम —

१४ । (अ) दद्, दधम — ऋजुनादि अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर वा तथा धाको दद् तथा दध होता है ।

(आ) ददति, दधतु—स्वरादि अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर इनको प्राका लोप होता है ।

(इ) घत्स्य, घत्त — अनुनासिक वा अन्त स्वरको छोड़ और किमी ऋजुनसे आरम्भ होनेवाला अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर धाको घत्त होता है ।

(ई) देहि तथा धेहि लोट्को म पु फे ए व फे रूप हैं ।



## नियम —

११। मिमे, जिह्वे—मा तथा गमनार्थक हा आत्म धातुओंके सा धातुक लकारोंमें द्वित्व हो कर मिमा तथा जिहा होता है ।

१२। मिसीते, मिसते, जिह्वीषे, जिह्वताम्—मा तथा गमनार्थक आत्म को आ को व्यञ्जनादि अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर ईं होता तथा खरादि अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर उसका लोप होता है ।

## हु—पर ।

वर्त ।

लोट् ।

प्र पु जुहोति जुहुत जुहति म पु जुहुधि जुहुतम् जुहुत  
लट् । विधि ।

प्र पु अजुहोत् अजुहुताम् अजुह्वु जुहुयात्—इत्यादि ।

## नियम —

१३। लोट्को मध्यम पुरुषको ए व का प्रत्यय धि है । २७ वे पाठ १५ वा नियम देखो ।

## दा—उभ ।

पर वर्त ।

आत्म ।

प्र पु ददाति दत्त ददति दत्ते ददाते ददते  
म पु ददाधि दत्थ दत्थ दत्थे ददाथे ददथे

लोट्—पर ।

आत्म ।

म पु देहि दत्तम् दत्त दत्थ्व ददायाम् ददथ्वम्  
उ पु ददानि ददाव ददाम ददै ददावद्दे ददामद्दे

लङ्—पर ।

आत्म ।

प्र पु अददात् अदत्ताम् अददु अदत्त अददाताम् अददत्त  
उ पु अददाम् अदद्व अदन्न अददि अदद्वहि अदद्वहि

विधि ।

पर

आत्म ।

दद्यात्—इत्यादि ।

ददीत्—इत्यादि ।

धा—उभ ।

घर्त —पर ।

आत्म ।

दधाति

घत्त

दधति

घत्ते

दधाते

दधते

दधासि

घत्स्य

घत्स्य

घत्से

दधाये

दधये

दधामि

दध्व

दधम

दधे

दध्वहे

दधमहे

तोद्—पर ।

आत्म ।

धेहि

घत्तम्

घत्त

घत्स्व

दधायाम्

घद्वध्वम्

लङ्—पर ।

आत्म ।

अदधात्

अधत्ताम्

अदधु

अधत्त

अदधाताम्

अदधत्

विधि ।

दद्यात्—दधीत्—इत्यादि ।

नियम —

१४ । (अ) दद्, दध्म —बहुनादि अतिकारक प्रत्यय आगे रहनेपर दा तथा धाको दद् तथा दध् होता है ।

(आ) ददति, दधतु—स्वरादि अतिकारक प्रत्यय आगे रहनेपर इनयो आका लोप होता है ।

(इ) घन्त्य, घत्त —अनुनासिक या अन्त स्वरको छोड़ और किसी व्यञ्जामे आरम्भ होनेवाला अतिकारक प्रत्यय आगे रहनेपर धाको घत्त होता है ।

(ई) देहि तथा धेहि लोटके म पु फो ए व फो रूप है ।

## निज्—उभ

वर्त पर ।

आत्म खोट ।

प्र पु नेनेक्ति नेनिक्त नेनिजति उ पु नेनिजै नेनिजावष्टै ननिजामाँ

लङ् पर ।

आत्म ।

प्र पु अनेनेक्-ग् अनेनिक्ताम् अनेनिज् अनेनिक्त अनेनिजाताम् अनेनिज्  
उ पु अनेनिजम् अनेनित्व्य अनेनिजम् अनेनिजि अनेनिज्विष्टि अनेनिजिष्टि

विधि ।

प्र पु नेनिज्यात्, नेनिजौत-इत्यादि ।

इषौ प्रकार वेनेक्ति, येवेष्टि इत्यादि ।

१५ । नेनेक्ति, नेनिजै—निज्, विज्, तथा विष् धातुमें अभ्यास  
स्वरको गुण होता है, स्वरदि विकारक प्रत्यय आगे रहनेपर इन धातुओंके  
उपान्तर स्वरको गुण नहीं होता ।

अधारात् सधारात्मन उद्विजते ।

कणो पिधाय शान्त पाप शान्त पापमित्यब्रवीत् ।

हरिशब्दोऽत्र विष्णुमेवाभिधत्ते ।

बहुधा भयमादधानाप्रकाया अत्रारख्ये चरन्ति ।

अय पुत्रकृतको भृगस्ते पदवीं न जहाति पथ ।

रघुर्धनुष्यमोघ सायक समधत्त ।

अनेन समयेन परिणतो दिवस ।

वेवेष्टि व्याप्नोति विश्वमिति विष्णु ।

गुरो पादाववानेनिजम् ।

सहस्रगुणमस्त्रष्टुमादत्ते हि रस रवि ।

जठरं को न विभर्ति पोत्रलम्

प्राय शुभ च विदधात्यशुभ च जन्तो

भवङ्कपा भगवतौ भवितव्यतैव ॥

श्रजिनीत ! किं नोऽप्यनिद्रिशेषाणि सत्त्वानि विप्रकरोषि ? हन्त !

इति ते सरम्म ! ख्याने यज्ञ ऋषिजनेन स्रष्टृदमन इति कृतनामधेयोऽसि ।

पुण्यानि हि नामश्रद्धयान्तापि मुनीनाम् । किं पुनदर्शनानि ? धन्यमिद-

मप्यमयमधिपतिर्यतु । पुण्यभान खट्वमौ मुनयो यदहर्निश मेनमपरमिज

लेनासन मुखामलोकननिश्चलदृष्ट्य पुण्या कथा शृण्वन्त समुपासते ।

श्रीगन्त्वावतु माघीष्ट दत्तास्ते मेऽपि शर्म च ।

सुख वा नो ददात्वोश पतिर्वाऽपि नो हरि ॥

मातेव रक्षति पितेव हिते नियुङ्क्त

भार्यैव चाभिरमयव्यपनोय खेदम् ।

कीर्तिं च दिनु विमला जितनोति लक्ष्मीं

किं किं न साधयति कल्पलतेषु विद्या ॥

ददतु ददतु गालीगालिमन्तो भदन्तो

वपमपि तद्भावाद्गालिदानेऽसमर्था ।

जागति विदितमेतद्द्वीयते वित्यमान

न हि शशकविषाण कोऽपि कस्तौ ददाति ॥

सकृदुच्चरित येन हरिरित्युत्तरद्वयम् ।

वद्व पारकरस्तेन भोक्षाय गमन प्रति ॥

प्रनृत्यैव प्रिया सीता रामस्यासीमहात्मन ।

प्रियभाव म तु तथा स्वगणरव वर्धित ॥

तथैव राम सीताया प्रारब्धोऽपि प्रियोऽभवत् ।

दृश्य तत्रैव जागति प्रीतियोग परस्परम् ॥

रामको इच्छानुसार लक्ष्मणने सीताको निर्जन वनमें छोड़ा ।

रे पापी ! क्या तुम्हें यह खराब वचन कहते लज्जा नहीं आती ?

यागकर्ताओंने अग्निमें आहुति दी ।

हे प्रभो ! कृपा का मुझे वृद्धि दीजिये ।

हम लोगोंको चाहिये कि आपे हुए अतिथिका आसन तथा लक्ष्मण सत्कार करें ।

तुमको अपने भीतरो शत्रुओंके साथ लड़नेके लिये तैयार होना चाहिये

मेरा मित्र मुझे प्राणसे भी अधिक प्रिय था ।

यहा देवशब्द राजाका बोध कराता है ।

वृध स्वयं सधुर है , फिर चीनी मिलानेपर क्या पूछनाहै (कि पुनः)

उस आश्रमके लोत्र मुनिको अपने पुत्रोंसे किसीप्रकार भिन्न न  
( 'अपत्यनिर्विशेष'का प्रयोग करो ) ।

सत्कार ।

अधिपति (पु) — स्वामी

अवलोकन (अवलोकनम्) न — दृष्टि

आश्रमपद (आश्रमपदम् न तत्पु०,

आश्रम-पु + पद — न स्थान)

— तपोवन

कल्पलता (स्त्री मध्यमपदलोपी

समा०, कल्पवृक्षिका लता) —

एक लता जो मंत्र मनोरथोंको

पूर्ण करती है

कोलाहल (कोलाहल) पु — शोर

गाँव (स्त्री) — गाँवी

झाया (स्त्री) — झाया

जंगु (पु) — प्राणी

नलिनासन (नलिनासन — पु बहु०

नलिन-न कमल + आसन न

— कमल जिसका आसन है

ब्रह्मदेव

नामधेय (नामधेयम्) न — नाम

(धेय एक प्रत्यय है जो अर्थ

कोई भेद नहीं करता, नाम

एव नामधेयम्)

पदवी (स्त्री) — मार्ग

किका ( परिकर ) पु —कसरवन्द  
 ( बहु परिकरस्तौ = उभौ  
 कसर वाघी )  
 कक ( पायक ) पु —ग्रग्नि  
 कृतक ( पुत्रकृतक ) पु —दत्तक पुत्र  
 कृति ( स्त्री )—स्वभाव  
 कृतिवचन ( प्रतिवचनम् ) न —उत्तर  
 कृपभाव ( प्रियभाव ) पु —प्रिय होना  
 कृतियोग ( प्रीतियोग ) पु —प्रेमका  
 वन्धन  
 कृतितव्यता ( स्त्री )—दोनहार

कृत्तु ( पु )—मरण  
 कस ( रस ) पु —जल  
 कृपाण ( कृपाणम् ) न —मींग  
 कृशक ( शशक ) पु —खरहा  
 कसम् ( कसम् ) पु —क्रोध  
 कस्य ( कस्यम् ) न —जीव  
 कसदमन ( पु )—दुष्यन्तके पुत्रका  
 नाम ( जो सयको दवाता है  
 वर )  
 कसायक ( सायक ) पु —बाण

विशेषण ।

कसोध ( नञ०, अ + सोघ  
 निष्कल )—सफल  
 कसार ( बहु० )—नि सार, तुच्छ  
 कसना—भाष्यज्ञान  
 कसिल—अचल, स्थिर  
 कसविशेष ( बहु०, निगत विशेष

केम्यस्तानि, निर्विशेषाणि, निरु +  
 विशेष—पु भेद)—भेदरहित,  
 समान

कस्यभाज—कस्यवान्  
 कसवङ्कय ( स्त्री—पा ) — सयको  
 दवानेवाता

धातु ।

कसप + नी ( कसपयति—ते भ्या उभ )  
 —कटना  
 कस + कृन् ( कसिजते—तु आत्म )  
 —कवडाना  
 कदा ( कदाति कते जु उभ )—देना,  
 आके साय ( आत्म )—लेना

कधा ( कधाति कते—जु उभ )—  
 ककडाना, रखना, आके साय—  
 रखना, करना, उत्पन्न करना,  
 अपिके साय—वन्द करना,  
 अभिके साय—कहना, प्रकट  
 करना, अवके साय—ध्यान

रामको इच्छानुसार लक्ष्मणने सीताको निर्जन वनमें छोड़ा ।  
रे पापी ! क्या तुम्हे यह खराब वचन कहते लज्जा नहीं आती ?

यागकर्ताओंने अग्निमें आहुति दी ।

हे प्रभो ! कृपा कर मुझे मुक्ति दीजिये ।

हम लोगोंको चाहिये कि आये हुए श्रतियिका आसन तथा ब्रह्म  
सत्कार करें ।

तुमको अपने भीतरो अनुश्रीको साथ लड़नेको लिये तैयार होना चाहिये ।

मेरा मित्र मुझे प्राणसे भी अधिक प्रिय था ।

यद्यपि देवशब्द राजाका बोध कराता है ।

दूध स्वयं सधुर है, फिर चीनी मिलानेपर क्या पूरुनाहै (किं पुन) ?

उस आश्रमके लोच मुनिको अपने पुत्रोंसे किसीप्रकार भिन्न न  
( 'अपत्यनिर्विणेष' का प्रयोग करो ) ।

सज्ञाशब्द ।

अधिपति (पु) — स्वामी  
अवलोकन (अवलोकनम्) न — दृष्टि  
आश्रमपद (आश्रमपदम् न तत्पु०,  
आश्रम-पु + पद — न स्थान)  
— तपोवन  
कल्पलता (स्त्री मध्यमपदलोपी  
समा०, कल्पपूरिका लता) —  
एक लता जो सब मनोरथोंको  
पूरा करती है  
कोलाहल (कोलाहल) पु — शोर  
गालि (स्त्री) — गाली

हाया (स्त्री) — हाया  
जन्तु (पु) — प्राणी  
नलिनास (नलिनासन — पु बहु०,  
नलिन-न कमल + आसन न )  
— कमल जिसका आसन है,  
ब्रह्मदेव  
नामधेय (नामधेयम्) न — नाम  
(धेय एक प्रत्यय है जो अर्थमें  
कोई भेद नहीं करता, नाम  
एव नामधेयम्)  
पदवी (स्त्री) — मार्ग

रेकर ( परिकर ) पु —कमरउन्द  
 ( बहु परिकरस्तेन = उसने  
 कमर बाधी )  
 प्रक ( पायक ) पु —अग्नि  
 पुत्रक ( पुत्रकृषक ) पु —दत्तक पुत्र  
 कृति ( स्त्री )—स्वभाव  
 तिउचन ( प्रतिवचनम् ) न —उत्तर  
 प्रयभाव ( प्रियभाव ) पु —प्रिय होना  
 तैतियोग ( प्रीतियोग ) पु —प्रेमका  
 वन्धन  
 प्रितिव्यता ( स्त्री )—होनहार

सृत्यु ( पु )—मरण  
 रस ( रस ) पु —लल  
 विषाख ( विषाखम् ) न —सींग  
 शशक ( शशक ) पु —खरहा  
 सरम्म ( सरम्म ) पु —क्रोध  
 सत्त्व ( सत्त्वम् ) न —जीव  
 सर्वदमन ( पु )—दुष्यन्तको पुत्रका  
 नाम ( जो सजको दवाता है  
 वह )  
 सायक ( सायक ) पु —ब्राह्म

विशेषण ।

अमोघ ( नञ०, अ + मोघ  
 निःफल )—सफल  
 असार ( बहु० )—नि सार, तुच्छ  
 घन—भाग्यवान्  
 निश्चल—अचल, स्थिर  
 निर्विशेष ( बहु०, निर्गत विशेष

येभ्यस्तानि, निर्विशेषाणि, निर् +  
 विशेष—पु भेद )—भेदरहित,  
 समान

पुण्यभाज्—पुण्यवान्  
 सवद्भूय ( स्त्री—या ) — सवको  
 दवानेवाता

धातु ।

अप + नी ( अपनयति-ते भ्वा उभ )  
 —हटाना  
 उद् + प्रिच् ( उद्भिजते—तु आत्म )  
 —घउडाना  
 दा ( ददाति-दत्ते लु उभ )—देना,  
 आके साथ ( आरम् )—लेना

धा ( दधाति घत्ते-लु उभ )—  
 पकडना, रखना, आके साथ—  
 रखना, करना, उत्पन्न करना,  
 अपिने साथ—बन्द करना,  
 अभिने साथ—कहना, प्रकट  
 करना, अपने साथ—धान



देना, वि के साथ—करना,  
सम् के साथ—मिलाना  
निज् ( निनेक्ति-नेनक्ति-ञु उभ )—  
धोना, अत्र के साथ—धोना  
भृ ( विभक्ति, विभृते-ञु उभ )—भरना  
द्विज् ( वेवेक्ति, वेविकृत्-ञु उभ )—  
अपराग करना  
वि + प्र + कृ ( विप्रकरोति—कुरुते-  
तना उभ )—विगाडना

विप्र ( वेवेष्टि-वेविष्टे-ञु उभ )—  
घेरना, व्याप्त करना  
सम् + उप + आसु ( समुपास्ते—  
आ )—पूजा करना  
साध् ( साधयति च्चु पर )—सिद्ध  
करना  
ष्टा ( लिष्टीते-ञु आ )—छाना  
उद् के साथ—चटना, रठना  
हु ( जुष्टीति-ञु पर )—होम कर  
ष्ट्री ( लिष्ट्रीति—ञु पर )—लक्षा

अव्यय ।

अर्धर्निशम्—दिनरात  
उत्स्वष्टम् ( उद् + स्व् + तुम् )—  
छोड़नेके लिये, देनेके लिये  
कि पुन—कितना अधिक ? (इससे  
अवधि तथा अतिशयका बोध  
होता है । )  
पश्चात्—अनंतर  
बहुधा—अनेक प्रकारसे

शात्त पापम्—उला टले  
सहस्रगुणम्—( बहु०, सहस्र )  
यस्मिन् कर्मणि यथा स्वात्  
सहस्र न हजार + गुण-सु  
—हजारगुना  
स्याने—योग्य है  
हत्त—हाथ ! बाट ! ( यह !  
वा हर्षमें आता है । )

पाठ ३१ ।

विशेषण तथा क्रियाविशेषण ।

एकादश रुद्रा द्वादशादित्या —ग्यारह रुद्र और बारह मूर्य हैं ।

माणवको ब्राह्मणाना विशतये दक्षिणामयच्छत्—माणवकने बीस ब्राह्मण  
को दक्षिण दी ।

शुभे कुमारसम्भवे च यथाक्रममेकीनविशति सप्तदश च सर्गा—रघुवश  
तथा कुमारसम्भवमें क्रमसे उन्नीस तथा सत्सह मग है ।

लान्तर्गते रश्मौ यत् सूक्ष्म रजो दृश्यते तस्य त्रिशत्तमो भाग परमाणु  
कथ्यते—भूखेसे आगेवाले किरणमें जो सूक्ष्म कण दिखाई देता है  
उसका तीसवा हिस्सा परमाणु कहता है ।

ता प्राणैर्भ्योर्ऽपि प्रेयसो रामस्य—सीता रामको प्राणोंसे भी अधिक  
प्यारी थी ।

चित् कामप्रवेदो—( श्रद्धय ) 'कचित्' अपनी इच्छा प्रकाश करोंमें  
प्रयोग किया जाता है । अर्थात्—“मैं आशा करता हूँ” इस अर्थ-  
में आता है ।

चिन्मगीणामनघा प्रसूति—मैं आशा करता हूँ कि मृगोंके बच्चे  
हु खरहित अर्थात् सुखी है ।

अपि के समान कचित् भी प्रश्न पूछनेमें आता है, पर यह उस प्रश्न-  
में आता है जहाँ अपनी इच्छा प्रकट करनी हो । इसका अर्थ 'मैं  
आशा करता हूँ,' 'मैं समझता हूँ' है । कभी कभी यह केवल प्रश्न  
पूछनेमें प्रयोग किया जाता है ।

दृष्ट्या प्रतिष्ठता युष्माक विघ्ना—सुदैवसे तुमलोगोंके विघ्न नष्ट हुए—  
मैं विघ्नोंके नष्ट होनेपर आपका अभिनन्दन करता हूँ । 'दिष्ट्या' यह  
दिष्टि का तु ए व है ।

यानि खरत्र विवे सज्जति ने दृष्टि—यह योग्य ही है कि मेरी दृष्टि इस  
विषयमें लग रही है । खाने=युज्यते—यह योग्य है ।

काममेतदुर्लभ मास्त्वस्मिन्तुत्सुकम्—मान लिया कि यह दुर्लभ है, पर  
मेरा मन तो इसके लिये उत्सुक है । कामम्=लितना फोड़ चाहे  
उतना, चाहे जितना अधिक ।

स्वयं रोपितेषु तन्मूलपद्यते स्नेह किं पुनरङ्गसम्भवेऽप्रपत्येषु—स्वयं वा  
हुए पेड़ोंपर भी प्रेम उत्पन्न होता है, अपने शरीरसे उत्पन्न लड़के  
पर कितना अधिक होगा ।

किं पुनः, किमुत तथा किमु 'कितना अधिक' इस अर्थमें आते ।  
उनका अर्थ है—इति का वार्ता, इति कि वक्तव्यम् (स्वयं रोपितेषु त  
स्नेह उत्पद्यते तर्हि अङ्गसम्भवेऽप्रपत्येषु उत्पद्यते इति कि वक्तव्य  
इसको कौमुतिकन्याय कहते हैं ।

वरमेको गुणी पुत्रो न च सूर्खशतान्यपि—एक गुणवान् पुत्र अर्थात्  
सूर्ख अर्थात् नहीं ।

वरम् को प्रयोगपर ध्यान दो अथवा वरमिद—न च अथवा न तु न पुनस्त  
—ऐसी रचना है ।

यथा यथा योवामत्यक्रामत् तथा, तथाऽस्या अङ्गानि लावण्यमपुण्यद-  
त्वं २ जवानौ आचली त्वौ २ उसको अङ्ग शोभा बढ़ाने लगे ।

यथा यथा—तथा तथा = त्वौ २ अधिक त्वौ २ अधिक, त्वौ २ कम त्वौ २  
कम ।

क्व सूर्यप्रभवो वश क्व चाल्पविषया मति—सूर्यवंश कहा और नी  
दुष्टि, जिसको विषय छोटे है, कहा ?—इन दोनोंमें बड़ा अन्तर है ।

दो क्व (उव ष्व) बड़ा अन्तर दिखाते हैं (द्वौ क्वशब्दो महदन्तर सूचयते )  
पक्षपातिनावह देवी च—हम और रानी दोनों पक्षपाती (तरफदार) हैं ।

यदि विशेषणसे विशेषित सनाशब्द भिन्न लिङ्गसे अर्थात् एक पु  
तथा दूसरा स्त्री हो, तो विशेषण पु में आता है ।

स च सा च तौ, स च तच्च ते, सा च तच्च ते ह्यं वस्तुनौ—यदि  
सजा शब्द पु वा स्त्री हो और दूसरा नपु हो तो विशेषण न  
होता है ।

सत्य धृति शमस्य तस्मिन् ध्रुवाग्नि—उसमें सत्य, धैर्य, तथा शां  
स्थिर है ।

यदि अनेक विशेष्य अनेक लिङ्गोंके हों तो विशेषण नपु सकमें आता है ।

अथैव देवतया तयो कशलवायिति नामनी प्रभावव्याख्यात—उसी देवताने उनके कुश और लव इन नामों तथा शक्तिका वर्णन किया ।

यहां आख्यात इस विशेषणका लिङ्ग तथा वचन उभयो पूर्व रहनेवाले मन्त्रशब्दके समान हुआ । इसका अन्य मन्त्राशब्दोंके साथ लिङ्गविपरिणामसे श्राव्य होता है । नामनी आख्याते इति लिङ्गविपरिणामेनाश्राव्य ।

इस पाठमें विशेषण तथा क्रियाविशेषणोंका वर्णन किया गया है ।

एकसे दसतरुपे सख्यावाचकोंका वर्णन २३० पाठमें आ चुका है ।

दसके गुणित सख्यावाचक नीचे दिये जाते हैं —

विंशति ( स्त्री )	बीस	शत ( न )	एक सौ
त्रिंशत्	तीस	सहस्र	हजार
चत्वारिंशत्	चालीस	अयुत	दस हजार
पञ्चाशत्	पचास	लक्ष	लाख
षष्टि	साठ	प्रयुत	दस लाख
सप्तति	सत्तर	कोटि	करोड़
अशौति	अस्सी		
सवति	नउत्ते		

विंशतये ब्राह्मणेभ्यो दक्षिणा ददाति नारायण —अथवा ब्राह्मणानां विंशतये दाक्षिणा ददाति नारायण । इस प्रकार विंशति इत्यदि मन्त्राशब्द हैं । जय व विशेषण रहते हैं तो, किसी मन्त्रा शब्दके साथ हों, ए व तथा स्वालिङ्गमें प्रयोग किये जाते हैं ।

एकादशन्—ग्यारह	द्विसप्तति	} बहतर
द्वादशन्—बारह	द्वासप्तति	
षोडशन्—सोलह	त्रिनवति	} तिरानये
त्रयोविंशति—तेईस	त्रयोनवति	
पञ्चविंशति—पचीस	षण्णवति—छात्रवे	
अष्टाविंशत्—अठतीस	द्व्यशीति—बयासी	
द्विचत्वारिंशत्	त्र्यशीति—तिरासी	
द्वाचत्वारिंशत्	अष्टाशीति—अठ्ठासी	
त्रिपञ्चाशत्	एकोनसप्तति	} बहतर
तूय पञ्चाशत्	एकात्रसप्तति	
अष्टषष्टि	जनसप्तति	
अष्टापष्टि		

नियम —१ विंशतिने बादो सख्यावाचकोमें द्वि को द्वा, त्रि का त्रय, तथा अष्ट को अष्टा होता है। अशीति को साथ समास करनेमें परिवर्तन नहीं होते, तथा चत्वारिंशत्, पञ्चाशत्, षष्टि, सप्तति, त्रिनवति को साथ समास करनेमें ये परिवर्तन विकल्पसे होते हैं। पञ्च इत्यादि शब्दोंमें नुका लोप होता है, जिस प्रकार समासमें इतर नकारानु शब्दोंको नुका लोप होता है।

एकोनसप्तति इत्यादि—एकोन जना सप्तति एकोनसप्तति ; एकेन सप्तति एका\*नसप्तति, यद्यपि एक को एकाठ हुआ है।

एकादश —ग्याःएवा	सप्ततितम —सत्तरवा
त्रिंश —त्रिंशतितम -त्रीसवा	चतु सप्त तितम —चौदत्तरवा
त्रिंश त्रिंशतम —तीसवा	अशीतितम -अस्सीवा
षष्टितम —साठवा	एकाशीत -तितम —एक्यासीवा
अष्टापष्टि -ष्टितम —अठसठवा	

प्रथितम् — १० वा

षष्ठत तितम् — १६ वां

शततम् — १०० वा

सहस्रतम् — १००० वा

नियम —

२। एकादशन् से नवदशन् तक शब्दोंसे क्रमिक सख्यावाचक न् लोप करनेसे बनते है ।

३। विंशति से आगे क्रमिक सख्यावाचक तम लगानेसे, वा अन्तिम र का लोप कर वा पूर्व खरके साथ अन्तिम व्यञ्जन का लोप कर आने से बनते है । विंशति में ति का लोप हाता है ।

४। षष्टि, सप्तति, अशीति तथा नवति को क्रमिक सख्यावाचक बल एकही प्रकार से—तम लगानेसे—बनते है ।

सप्तदशोत्तर शतम्-वा सप्तदशाधिक शतम् = ११७ । त्रिसप्तत्यधिकनवदश-ततमा त्रिक्रमानेनवत्सरोऽयम् = सवत्-१९७३ । अष्टात्रिंशदुत्तराष्टादश-ततम शालिवाहनवर्षमिदम् = शक १८३८ । सप्तदशाधिकमेकोन-शतशततम श्लिष्ठाब्दम् = इसवी सन १९१७ ।

५। ऊपरकी सख्या ब्रतानेमें 'अधिक' लगाया जाता है ।

तर तथा तम, इयम् तथा इष्टु आपेक्षिक तथा सर्वोत्कृष्टताद्योक्त प्रत्यय । उनका वर्णन पहिले आ चुका है । कुछ शब्दोंमें इयम् तथा इष्टु आगे नेपर परिचर्त्ता होता है और इस प्रकार उनको रूप अनियत होते है । इस प्रकार है —

केवल	आपेक्षिक	सर्वोत्कृष्ट
प्रशस्त्य क्षत्व	अयस	उष्टु
वृद्ध वृद्धा	ज्यायस-उर्षीयस	ज्येष्ठ उर्षिष्ठ
अन्तिक पास	नेदीयस	नेडिष्ठ
बाह-अच्छा	साधीयस	साधिष्ठ

खूल-मोटा	खवोयस्	खविष्
दूर-दूर	दवीयस्	दविष्
युवन्-युवा	यवीयस्-कनीयस्	यविष् कनिष्
दृम्ब-द्वोटा	दृभोयस्	दृभिष्
क्षिप्र-फुतीटा	क्षिपोयस्	क्षिभिष्
क्षुद्र-नोच	क्षोदीयस्	क्षोदिष्
प्रिय-पारा	प्रोयस्	प्रोष्
स्विर-निश्चल	स्वोयस्	स्वोष्
वरु-चौड़ा	वरीयस्	वरीष्
बहुल-मोटा	वहीयस्	वहिष्
दीर्घ-लवा	द्राघीयस्	द्राघिष्
अल्प-योड़ा	अल्पोयस्-कनीयस्	अल्भिष् कनिष्
पुगु-बडा	प्रयीयस्	प्रधिष्
मृदु-कोमल	मृदोयस्	मृदिष्
कृश-दुबला	क्रशीयस्	क्रशिष्
हठ-मजबूत	दृढीयस्	दृढिष्
बहु-बहुत	भृयस्	भृयिष्

इन सभीमें तर तथा नम भी लगते हैं । ये रूप अनियत नहीं हैं । प्रशस्तर, युधतर ( न् का लोप ), दीर्घतर, प्रियतम, बहुतम, अल्पतम ।

ऊपर दी हुई सूची कक्षाग्र करनेकी आवश्यकता नहीं ।

६ । सर्वनामोंसे अव्यय इस प्रकार बनते हैं —

( अ ) सर्वत, कुत ( किम् से, जिसको कु होता है ), यत, तत, इत, अत — तस् लगानेसे ( जो हर विभक्तिके अर्थमें आ सकता है, पर विशेषतः पचमौ वा सप्तमीके अर्थमें आता है । सार्धं विभक्तिकस्तिथि । )

(आ) तत्र, अमुत्र, सर्वत्र, अन्यत्र, अत्र, यत्र, कुत्र—त्र लगानेसे (सम्यर्थ, स्थलवाचक) ।

(इ) सर्जदा, एकदा, अन्यदा, यदा, तदा, कदा—दा लगानेसे (सम्यर्थ, कालवाचक) ।

(इ) यथा, तथा, सर्वथा, कथम् ( किम् से—कोन प्रकारेण )—था लानेसे ( प्रकारवाचक ) ।

(उ) पूर्वद्यु, अन्येद्यु, अपरेद्यु ( दूसरे दिन )—द्यु लगानेसे (स दिन) ।

भूयान् भेदोऽनयो शिष्ययो ।

अभिरूपभूविद्या परिपदियम् ।

सुदृढतमोऽपि राजा तद्दृत्तान्तमाकर्ष्य यद्विद्युवत् क्षिप्र राजधानीमगच्छत् ।

अभिज्ञात खल्वस्य वचनम् । अथ वा चन्द्रादसृत्तमिति किमत्राश्चर्यम् ।

नास्ति भजतोऽपराध । अहमेवात्रापराद्धा ।

कथं रघुनाथ एष । दिष्ट्या सप्रभातमद्य यदयं देवो दृष्टु ।

तपस्विना प्रतनुतपसामपि तेज प्रकृत्या तु सह भवति किमुत

सकलभुजनवन्दितचरणाना मुनीनाम् ।

प्रियावता सकलमेव गिरा दवीय ।

कश्चिद् भर्तुं स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति ।

कश्चिन्मयापराद्धमननि वा कोन विदम्नदनुष्ठीविना परितनेन ? अति

निपुरामपि चिन्तयन् न पश्यामि ह्यत्रितमल्पमपरात्मनस्त्वद्विषये ।

इव । दिष्ट्या वधसे । प्रतिदत्तास्ति शत्रुः । चिरं जीव । जयं पृथिवीम् ।

यदुत्तरायणं तदहर्द्वानाम् । दक्षिणायनं रात्रिः । सवत्सरोऽष्टोरात्रुः ।



तत्त्रिंशता मास । मासा द्वादश वर्षम् । द्वादशवर्षशतानि दिव्यानि कवि  
 युगम् । द्विगुणानि द्वापरम् । त्रिगुणानि त्रेता । चतुर्गुणानि कृतयुगम् ।  
 एव द्वादश वर्षसहस्रांश्च दिव्यानि चतुर्युगम् । चतुर्युगानामेकसप्तति  
 र्मन्वन्तरम् । चतुयुगसहस्रं च कल्प । स च पितामहस्याह । तावती  
 चास्य रात्रि । सर्वविधेनाहं रात्रेश्च मासवर्षांशमनया सवस्यैव ब्रह्म  
 वर्षशतमायु । ब्रह्मायुषा च परिच्छिन्न पौरुषो दिवस । तस्यान्ते महाकल ।  
 तावत्यवास्य निशा । पौरुषाणामधारांशानामतीतानां रुख्यैव नास्ति । न च  
 भविष्यताम् । आद्यनन्तता कालस्य ।

याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधने लब्धकासा ।

यौवन धनसम्पत्ति प्रभुत्वमविधेक्रिता ।

एकैकमप्यनर्थाप किमु यत्नं चतुष्टयम् ॥

धर हि नरको वासो न तु दुश्चरिते गृहे ।

नरकात् क्षीयते पाप कुमृहात् परिवर्धते ॥

वरमसौ दिवसो न पुनर्निशा ननु निश्चैव वर न पुनर्दिनम् ।

उभयमेतदुपैत्वधत्रा क्षय प्रियलनेन न यत्न समागम ॥

यया यया भोजनपणो विवर्धते सिता त्रिषोकोमिव कर्तुमुद्यतम् ।

तथा तथा मे हृदय विदूयते प्रियालक्षालीधवलत्पशङ्कया ॥

सदृश त्रिषु लिङ्गेषु सर्वेषु च विभक्तिषु ।

वचनेषु च सर्वेषु यत्न व्यति तदव्ययम् ॥

काम नृपा सन्तु सहस्रशोऽन्ये राजश्वतीमाहुरनेन भूमिम् ।

नक्षत्रताराग्रहमङ्गलापि ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रि ॥

स्थाने भवानेकनाधिप सन्नकिञ्चनत्व मखज व्यक्ति ।

पयायपोतस्य सुरैर्हिमाशो कलाक्षयं स्थाय्यतरो हि वृद्धे ॥

हे मुनि ! मैं आशा करता हूँ कि आपकी तपस्याये निर्जित है ।  
यह योग्य है कि ऊर्ध्वशो मज स्त्रियोंमें अधिक सुन्दर कही जाती है ।  
राजा तथा रानी दोनों धार्मिक थे ।

हे मित्र ! उस सत्कायमें सफल होनेके लिये मैं तुम्हें अभिनन्दन  
करता हूँ ।

का तुमने वह किस्सा पढ़ा है जो उस पुस्तकके ११५ वें पृष्ठमें वर्णित  
है ?

यन आदमीको गवी बनाता है । यदि उसके साथ कुछ विद्या और  
ज्ञान पद हो तो फिर का पृकना है ।

का तुमको काशीमें पवित्र गङ्गाजीके तटपर हमलोंगोंके मकानकी  
बाद है ?

स्वयं अवयव शब्दसे ही मालूम पड़ता है कि इसको लिङ्ग, वचन,  
व्यक्ति नहीं लगते ।

स चाशब्द ।

किञ्चनत्वं ( न अकिञ्चनत्वं  
कर्म०, नास्ति किञ्चन यस्य  
सोऽकिञ्चन, (३२ वा पाठ देखो)  
तस्य भावाऽकिञ्चनत्वं वा  
तत्त्वम्) — वरु दशा जिसमें पाँच  
कोई वस्तु न हो, दरिद्रता  
अनर्थ (अनर्थ) पु — विपद्  
अनाद्यनन्तता (स्त्री, नास्त्यदिर्यस्य  
सोऽनादि [बहु०], नास्ति अन्तो  
पश्च सोऽनन्त [बहु०], अनादि-

शाश्वतान्तश्च [कमघा वा विशेषे-  
षणम०] अनाद्यनन्तस्य भाव-  
सत्ता ) आदि-अन्तरहितता  
अभिरूप (अभिरूप) पु — विद्वान्  
अलमाली (स्त्री अलम् पु पेश +  
आगौ-स्त्री पक्ति) घने और  
तर्ज पेशोंकी पक्ति  
अविवेकता (स्त्री न विवेकी अ  
विवेकी नञ्म०, तस्य भावसत्ता)  
— अविचार

अहोरात्र (अहोरात्र) पु अहश्च रात्रि-  
श्चाहोरात्र, अह्, अहन् को अह  
और रात्रि को रात्रि) — दिनरात  
आश्चर्य्य (न) — आश्चर्य्य

उत्तरायण<sup>१</sup> (उत्तरायणम्) न उत्तर  
सर्व + अयन-न जाना) — वे छ  
मास जिनमें सूर्य दक्षिणसे  
उत्तर घूमता है ।

कल्प (कल्प) पु — ब्रह्माका दिन  
(जिसका अन्त होनेपर प्रलय  
होता है)

कलियुग (कलियुगम्) न — कलियुग

कृतयुग (कृतयुगम्) न — सत्ययुग

चतुष्टय (चतुष्टयम्) न — चारधा

समुदाय

जाल (जालम्) न — खिड़की

तारा (स्त्री) — नक्षत्र

त्रिता (स्त्री) — त्रितायुग

दक्षिणायन (दक्षिणायनम्)

दक्षिण-सर्व<sup>०</sup> + अयन-न, जाना

— वे छ मास जिनमें सूर्य

उत्तरसे दक्षिणमें घूमता है ।

द्वापर (द्वापर) पु — द्वापरयुग

निशा (स्त्री) — रात

परमाणु (पु कर्म<sup>०</sup>, परम + अणु-

— सबसे छोटा कण

परिजन (परिजन) पु — सेवक

पितामह (पितामह) पु (मह

है) — दादा

प्रवेदन (प्रवेदनम्) न — कष्ट

प्रसूति (स्त्री) — सन्तति

भोज (पु) — एक राजाका नाम

मन्वन्तर (मन्वन्तरम्) न —

मनुका समय

याज्ञा — मागना, प्रार्थना

१। उत्तररा, उत्तरमात् रात्, उत्तरस्मिन् रे—ये उत्तरके वैकल्पिक रूप नियम — पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर, जिनके उच्चारणसे 'किससे' आकाङ्क्षा अवश्य ही, स्व जिसका अर्थ जाति वा धन न हो, अन्तर जिसका अर्थ बाहर पहिनेका वस्त्र ही, सर्वशाम हैं, और प्र व व, पचमी तथा सप्तमी के एकवचन विकल्पसे सब नामके ऐसे रूप होते हैं। वेमे—पूर्वशां पूर्वाशां वा दिशायाम्, उत्तरा उत्तरं वा मार्गं, स्वे स्वा (आत्मीया), अन्तरे अन्तरा वा गृहा (मासा), अन्तरा वा शाटकां (अथात् परिधानीया) ।

० एक मन्वन्तरमें ४३,२०,००० × ०१ = ३०,६०,२०,००० वर्ष होते हैं ।

म (पु) — किरण  
 धानौ (स्त्री) — गलधानौ  
 य (विषय) पु — विषय  
 परिणाम ( विपरिणाम ) पु —  
 परिवर्तन  
 न्त (वृत्तान्त) पु — द्वाल  
 य (सम्भय) पु — जन्म  
 (सर्ग) पु — सर्ग

सवत्सर ( सवत्सर ) पु — वर्ष  
 सुप्रभात (सुप्रभातम्) न (प्रादिस०,  
 शोभन वा सुष्ठु, प्रभातम्) — शुभ  
 प्रात कात  
 स्खलित (स्खलितम्) न (स्खल-  
 भ्वा पर + त) — गलती ,  
 प्रमाद

विशेषण ।

त ( अति + इ + त ) — वीता  
 दृष्टा  
 गुण (अधिका गुणा यस्य सोऽधि-  
 गुण [बहु०] ) — गुणवान्  
 घ ( स्त्री अनघा बहु०, नास्ति  
 अघ दुःख यस्या सा ) —  
 नौरोग  
 लोधिन् — सेवक  
 राह ( अघ + राघ्-दि पर अघ  
 य करना + त ) — १ (कर्त्तरि)  
 इपराधी २ (कर्मणि) — विरोधित  
 ज्ञात ( अभि + जन् — [जा]  
 दि आ + त) विनीत, कुलीन  
 त ( उद् + यस् [यच्छ्] भ्वा,  
 आत्म + त) — तैयार  
 गुण (बहु०) — वीगुना

ज्योतिष्मत् — प्रकाशमान  
 तावत् — उत्तना  
 त्रिगुण (बहु०) — तिगुना  
 दिव्य — स्वर्गीय  
 दु सद् — सहनेमो कठिन  
 द्विगुण (बहु०) — दूना  
 परिच्छिन्न ( परि + छिद् + त ) —  
 परिमित  
 पौरुष — विष्णुका  
 प्रतनु — (प्रादिस०, प्रकृष्ट तनु) —  
 बहुत क्लोटा  
 प्रतिहत ( प्रति + हन् + त) — नष्ट  
 मखज (मख-पुं यज्ज + ज्जन् + से) —  
 यज्जसे उत्पन्न  
 मोघ — व्यर्थ  
 राजपवत् — जिसमें अच्छा राजा है

रसिक (स्त्री०—का) — रसज्ञ  
 रोषित (रह्-पर + त) — तगाया  
 हुआ  
 वन्दित (वन्द्-भवा आ + त) — प्रणाम  
 किया गया

सकल ( बहु०, कलाभि श्रवण  
 सहित सकलम्) — सत्र  
 सदृश — समान  
 सङ्कल — पूर्ण

धातु ।

वि + अञ्ज् (व्यनक्ति-स पर) — प्रकट  
 करना  
 वि + इ (व्यति-श्र पर) — परिवर्तन-  
 को पहुँचना

वि + इ ( विदुनोति-खा पर ) —  
 हुआ देना  
 सञ्ज् ( सञ्जति-ते-स्वा रभ )  
 जाना, लगाना

अव्यय ।

अतिनिपुणम् — बड़ी कुशलतासे,  
 बड़े ध्यानसे  
 कामम् — मान लिया  
 कञ्चित् — १ ( आशा वा इच्छाको  
 जताता है ) — मैं चाहता हूँ,  
 मैं आशा करता हूँ, २ प्रत्य

क्षिप्रम् — शीघ्र  
 दिष्ट्या — सुदेवसे (दिष्टि का वृ स  
 वरम् — श्रद्धा  
 सहस्रश — सज़ारों

पाठ ३२ ।

समास — अव्ययीभाव तथा तत्पुरुष ।

आरम्भिक समासोंका विवरण ११ वें तथा १२ वें पाठमें, शब्दसङ्घ  
 में, तथा टिप्पणियोंमें दिया जा चुका है । विशेष विवरण इस  
 अग्रिम पाठमें दिया गया है ।

ययाशक्ति, प्रतिदिनम्, उपकृष्णम् — इनमें यया, प्रति, तथा उप का

प्रधान है, इसलिये इन समासोंके अर्थ—‘शक्तिके अनुसार,’ ‘प्रतिदिवस,’ या ‘कृष्णके घास’ ये हैं ।

अव्ययीभाव—इस समासमें प्रायः पूर्वपदके अर्थकी प्रधानता रहती है ।

बाधक—शाकप्रति = शाकस्य लेश शाकप्रति । इसमें उत्तरपद प्रति का र्थ प्रधान है । क्योंकि इस समासका अर्थ ‘शाकका लेश’ है ।

प्रधान अव्ययीभावोंके विग्रह नीचे दिये जाते हैं—

हराविति अधिहरि ( इसको समीचीन विभक्त्यर्थ अव्ययीभाव कहते हैं ) । अधि समीचीनके अर्थमें है, कृष्णस्य समीपमुपकृष्णम्, यावन्त श्लोका विच्छोकमचुरतप्रणामा ( जिष्णुके उतने प्रणाम जितने श्लोक, यावत् प्रधारण वा निश्चयका बोध कराता है ), यावदमत्र ब्राह्मणानामश्रु-  
स्व = यावत् यमत्राणि तावतो ब्राह्मणानित्यर्थ ( जितनी थालिया हों तने ब्राह्मणोंको बुलाओ ), जीवन्पर्यन्त यावज्जीवम्, विधिमनतिक्रम्य प्राविधि, गङ्गाया पारे पारिगङ्गम्-पारिगङ्गाद्वा गङ्गाया मध्ये मध्येगङ्ग-  
ध्येगङ्गाद्वा ( पार तथा मध्य की पारे तथा मध्ये होता है और समास-  
जमोके रूपमें भी प्रयोग किया जाता है ), दिने दिने प्रतिदिनम्,   
णमप्यपरित्यज्य सत्कृष्णम् ( जैसे सत्कृष्णमिति ), अरण पर परोक्षम्   
पर को परा ), अरण प्रति प्रत्यक्षम्, स्वस्थ योग्यमनुरूपम्, हरे   
द्यादनुहरि, ज्यैष्ठ्यानुक्रमेण अनुज्येष्ठम्, हिमाचलमारभ्य आहिमाच-  
लम् आहिमाचलाद्वा, सेतुपर्यन्तम् आसितु आसितोर्वा, मत्तिकाणाम-  
पत्रो निर्मत्तिकाणम् ( ‘कृत त्वया साग्रत निर्मत्तिकाणम्’—तुमने अत्र   
हामे सबका पत्र दिया है, तुमने इस स्थानको मत्तिकासे भी शून्य कर   
दिया है । )

समासान्त प्रत्यय—आत्मानमधिकृत्विति अध्यात्मम्, अहनि अहनि   
इति प्रत्यह प्रत्यह वा—अव्ययीभावमें शब्दके अन्तिम अन् का लोप होता   
है और उसको अ लगाया जाता है । यदि वह अन्त शब्द नपुंसक हो तो   
ये परिवर्तन विकल्पसे होते हैं ।

तत्पुरुष'—

द्विजायाय द्विजार्थं, श्रोत्रेण, द्विजायेय द्विजार्था यवागू, द्विजायेय  
द्विजार्थं पय—

चतुर्थीतत्पुरुष चतुर्थ्यन्त पद तथा अर्थशब्दका होता है, शो  
समासकी विशेष्यका लिङ्ग, वचन, तथा विभक्ति होती है । इसकी नित्य  
समास कहते हैं । खट्वाखट्ट का अर्थ है जावम वा नीच, इसका विग्रह  
वाक्य नहीं दिखा सकते । इसलिये इसको नित्यसमास कहते हैं । विद्यापीठ  
को जमीनपर सोना चाहिये । यदि वह खटियापर सोरे तो वह खट्टा  
अर्थात् अविनीत कहा जाता है । खट्टामाखट्ट से यह अर्थ नहीं निकलता  
अर्थ शब्द लगाकर द्विजार्थ का विग्रहवाक्य नहीं दिखा सकते । इसलिये  
यह नित्यसमास है । वह समास जिसका विग्रह ही न हो सके, वा समास  
के पदोंको अलग वाक्य बनाकर नहीं दिखाया जा सके, उसको नित्यसमास  
कहते हैं । अधिष्टान्, प्रतिदिनम्, इत्यादि सब नित्यसमास हैं ।  
प्रकार—अविग्रहोऽस्त्रपदविग्रहो वा नित्यसमास ।

अश्वघास.—अश्वस्य घास, रन्धनस्थाली—रन्धनस्य स्थाली । ये पृथु  
तत्पुरुष समास हैं । यूपाय दास यूपदान—चतु तत्पु तभी होता है  
प्रकृतिविकृतिभाव हो । यूपदानमें दास प्रकृति वा मूल कारण है और  
विकृति वा उससे बनी हुई वस्तु है । इस प्रकारका सम्बन्ध अश्व  
घासमें नहीं है, और न रन्धन और स्थाली में, इस लिये अश्वघास  
रन्धनस्थाली इत्यादि पृथीतत्पुरुष समास हैं, चतुर्थीतत्पुरुष नहीं ।

पुरुषोत्तम—पुरुषेषु उत्तम, नृषु श्रेष्ठ नृश्रेष्ठ द्विजेषु चर द्विजेषु  
द्विजेषु उत्तम द्विजसत्तम—

पुरुषाणामुत्तम वा पुरुषेषु उत्तम, नृणामुत्तम अथवा नृषु उत्तम  
दोनों प्रयोग शुद्ध हैं । ऐसी जगहपर पृथी तथा सप्तमी निर्धारणपट्टी त  
निर्धारणमसमौ कहाती है, क्योंकि एक व्यक्ति गुणको निमित्त जा

वर्ग) से अलग की जाती है, ( निर्धारण=निश्चय ) और निश्चित की जाती है । निर्धारणषष्ठीका समास निषिद्ध है । इसलिये इस अर्थमें हा समास हो उसकी सप्त तत्पु समझना चाहिये, षष्ठी तत्पु नहीं ।

एकदेशिसमास वा अत्रयविसमास—पूर्व कायस्य पूर्वकाय , पर कायस्य अपरकाय मध्य रात्रे मध्यरात्रे , मध्यमह्ने (अह्न काय ) मध्याह्ने , सायमह्ने सायाह्ने —

यह अवयव तथा समुदायका समास है । एकदेशका अर्थ है पत्र, तथा एकदेशीका अर्थ है अवयवी—समुदाय ।

कर्मधारय—पूर्व स्नात पद्मादनुलिप्त स्नातानुलिप्त ( पहिले नहा । फिर चन्दन लगा चुका )

मेघ इव श्यामो मेघश्याम , चन्द्र इव सुन्दर चन्द्रसुन्दरम्, सप्त च ते यथ मत्पर्यय (सत्ताजाचक), श्रौत च तदुष्ण च शीतोष्णम् (विशेषण-स), पुरुषो व्याघ्र इव पुरुषव्याघ्र , वदन कमलमिव वदनकमलमपमितसमास , क्योंकि पुरुष वदनम् इत्यादि उपमित वा उपमेय अतः सादृश्यका विषय है ) । पुरुषो व्याघ्र इव शूर —यहा समास नहीं है । साधारण धर्मका प्रयोग हो वहा समास निषिद्ध है ।

नञ्त्तत्पुरुष—न ब्राह्मण अब्राह्मण  
द्विगु—त्रयाणा लोकाना समाहारस्त्रिलोकी , पञ्चाना पात्राणा समा-  
र पञ्चपात्रम्, अष्टानामध्यायाना समाहारोऽष्टाध्यायी , चतुर्णा-  
णा समाहारश्चतु सूत्री—

ये समाहारद्विगुका उदाहरण है । समाहारका अर्थ है समुदाय । तारान्त समाहारद्विगु स्त्रीलिङ्गमें होता है । समासको अन्तिम प्य का अर्थ होता है और उसकी जगह ईं होता है ।

मासो जातस्यास्य मासजात , एव सवत्सरजात —ये तत्पुरुष जाते हैं ।



अनास्त्रिबुन्मनि न कृतमवदात कर्मांसाभि । जन्मान्तरकृत हि  
फलमुपनयति पुरुषस्येह जन्मनि ।

किमत्र क्रियते दैवायत्तं वस्तुनि । मुख्यता शोकानुबन्ध । एतस्येदृश  
दर्शनेन कौटुम्भो मे हृदयानुबन्ध इति जानासि ।

पर हि दैवतसृषय । यत्रेनाराधिता यथासमीहितफलाना दुर्लभानामिति  
वराणा दातारो भवन्ति ।

प्रायेणाकारणमित्राण्यतिक्रमणाद्रांश्चि च सदा भवन्ति सता चेतासि ।

दिवसस्येयमतिक्रमणा दशा वर्तते । तथा हि रविरम्बरतलमध्यवर्ती स्फुरत्  
मातपमनवरतमनलधूलिनिकरमिव विकिरति करे । अधिकासुपजनय  
वृषाम् । सन्तप्तपामुपटलदुर्गमा भू । अतिप्रबलपिपासावसन्नानि गतुमल  
मपि मे नालमङ्गकानि । अप्रभुरसरात्मन । सीदति, मे हृदयम् । अन्धकारत  
मुपप्याति चक्षु । अपि नाम खलो विधिरानिच्छतोऽपि मे भरणमद्यैवेति  
पादयेत् ।

ज्ञाने मौन क्षमा शक्तौ त्यागे स्नाघाविपर्यय ।

गुणा गुणानुबन्धित्वात्तत्र सप्रसवा इव ॥

कुलेन फान्त्या वयसा नयेन

गुणैश्च तैस्तैर्विनयप्रधाने ।

त्वमात्मनक्षुल्यममु वृषोऽत्र

रत्न समागच्छतु काञ्चनेन ॥

शरण करवाणि कामद ते

चरण वाणि चराचरोपलौघम् ।

करुणामसृषी कटाक्षपाते

कुम्भ मामम्य कृतार्थसार्थवाहम् ॥

इस गावका रहनेवाला कोई ब्राह्मण ज्ञानसम्पादनके लिये दूसरे गाव ।

सज्जनको अपनी किये हुए पापका विचार जन्मभर दुःख देता है ।

द्वारकाद्वीप समुद्रके बीचमें है ।

गर्मी तथा ध्यासका सताया मैं एक पग भी नहीं चल सकता ।

मेरा शरीर दिन २ क्षीण हो रहा है । कदाचित् मेरी इच्छा न रहनेपर पस मेरे प्राण लेले ।

यद्यपि वह निधन था तो भी बड़ा उदार था, अथवा इसमें आश्चर्य है ? क्योंकि वह दयालु था ।

वह सब अध्यापकोंमें उत्तम था, उसके विद्यार्थी उसको पिताके मान मानते थे ।

क्योंकि तुम अधिक काम करोगे त्योंही तुम्हारा नाम होगा ।

### सञ्ज्ञाशब्द ।

क ( अङ्ग + क-एक प्रत्यय जो कोमलताके अर्थमें आता है )

न —कोमल अङ्ग

ल ( अन्ल ) पु —अग्नि

वन्ध ( अनुबन्ध ) पु — १ बन्धन,

सातत्य, २ प्रेम

म्वा ( स्त्री ) —माता

म्बर ( अम्बरम् ) न आकाश

तप ( आतप ) पु —गर्मी

कटाक्ष ( कटाक्ष ) पु —चितवन

कर ( कर ) पु —किरण

काञ्चन ( काञ्चनम् ) न —सुवर्ण

गुणानुबन्धित्व ( न गुण पु —अनुबन्ध-

पु बन्धन, सातत्य ) —गुणोंका

लगातार चलना

तल ( तलम् ) न —तल

तृषा ( स्त्री ) —प्यास

त्याग ( त्याग ) पु —दान

१। सं ए व हे अक्ष, पर अम्बिका नियत है, हे अम्बिकी ।

देवत ( देवतम् ) न — देवता  
 धूलि—तया धूली ( स्त्री )—धूल  
 निकर ( निकर ) पु — समूह  
 पटल ( पटलम् ) न — राशि, समूह  
 पांसु ( पु ) — धूलि  
 पात ( पात ) पु — गिरना  
 पिपासा ( स्त्री ) — प्यास  
 प्रसव ( प्रसव ) पु — जन्म

मोन ( मोनम् ) न — चुप रहना  
 वर ( वर ) पु — वर  
 विपर्यय ( विपर्यय ) पु — वैपरीत्य  
 विरोध  
 साघा ( स्त्री ) — क्षुति  
 सार्थवाह ( सार्थवाह ) पु — समुदाय  
 का अगुआ

## विशेषण ।

अचर—अचल  
 अतिकष्ट—अतिदु खदायी  
 अतिप्रबल—अतिबलौ  
 अप्रभु—असमर्थ  
 अवदात ( अव + दै—भ्वा पर + त )  
 —शुद्ध, पत्रितु  
 अवघ्न ( अव + घ्न [ घीद् ]  
 भ्वा पर + त )—डूबता हुआ,  
 —भुका हुआ  
 आयत्त ( आ + यत्—भ्वा आ + त )  
 अधीन  
 आराधित ( आ + राध्—चु पर + त )  
 पूजित

आर्द्र—गोला  
 उपजीव्य ( उप + जीव्—भ्वा पर  
 य )—आश्रय  
 कामद—सत्र मनोरथोको  
 करनेवाला  
 कृतार्थ—कृतकृत्य  
 चर—चल  
 दुर्गम—पार करनेमें कठिन  
 मरुण—कोमल  
 सन्तप्त ( सम् + तप्—भ्वा पर +  
 —गरम  
 समीहित ( सम् + ईह्—भ्वा  
 + त )—इष्ट

## घातु ।

उप + जन् ( प्रेर उपजन्वति )—उत्-  
 पन्न करना

उप + नी ( उपनयति—भ्वा पर  
 खाना, उत्पन्न करना

+पद् ( प्रे उपपादयति )— उत्पन्न काना		सद् (सौदति भ्वा पर )—भुकना, डूबना
+या (उपधाति—अ पर )— समोप जाना, पाता		सम् + आ + गम् (समागच्छति भ्वा पर )—मिलना
+कृ (त्रिकिरति—तु पर )— विखेरना		

श्रव्यय ।

रतम् ( अद् + अय + रम् + त ) निरन्तर		( यद् सम्भज तथा इच्छा का बोध कराता है । )
नाम—सम्भव है, जैसा मैं वाहता हू ।		अलम्—समर्थ अल्प—चोड़ा

पाठ ३३ ।

बहुव्रीहि तथा द्वन्द्व समास ।

बहुव्रीहि—प्राप्तमुदक य स प्राप्नोदको ग्राम, वीरा पुंस्या  
ए स वीरपुरुषको ग्राम, पीतमम्बर यस्य स पीताम्बरो हरि ।  
ये समासके पद समानाधिकरण अथवा एक विभक्तिमें होते है )  
मासमें दो वा अधिक पद होते और वे समानाधिकरण रहते हैं ।

अधिकरण बहुव्रीहि—असि पाणो यस्य स असिपाणि, दण्ड  
पक्ष्य स दण्डपाणि । इस बहुव्रीहिमें पद समानाधिकरण नहीं  
इस प्रकारका समास कहीं २ होता है, सर्वत्र नहीं ।

हुणसविज्ञान तथा अतद्गुणमविज्ञान—हम लोग कहते है—  
णिमानय जब लम्बकरण ( लम्बी कर्णो यस्य स, गर्दभ इत्यर्थ )  
गर्दहा आता है तो उसको लंबे कान भी उसको साय आते है,

इस प्रकार उसके गुणकी—लवे कानकी—पहिचान (सविज्ञान) है।  
 लिये यह तद्गुणसविज्ञान बहुव्रीहि हुआ। अब हम लोग कहते हैं  
 दृष्टसागरमानय (दृष्ट सागरो येन स दृष्टसागरस्त दृष्टसागरम्), तो  
 गुणकी कोई पहिचान नहीं है—इस लिये यह अतद्गुणसविज्ञान  
 व्रीहि हुआ।

सीतया सह वर्ततेऽसौ—वा वर्तमान ससीत सहसीतो वा (स  
 को विकल्पसे स होता है), उत्तरस्य पूर्वस्य दिशोऽन्तराल  
 सुत्तरपूर्वा, दक्षिणस्य पूर्वस्य अन्तराल दक्षिणपूर्वा—इस  
 समास बहुव्रीहि कहते हैं।

वक्तु कामो यस्य स वक्तुकामः, गन्तु मनो यस्य स गन्तु  
 (काम और मनस् आगे रहनेपर तुमके सू का लोप होता है।)

आहित अग्निर्येन स आहिताग्निः, अग्न्याहितो वा, अहि  
 येन स अस्यद्यत (कहीं २ तप्रत्ययान्त उत्तरपद भी होता है)।

बहुव्रीहि समासमें प्राय अन्यपदार्थ प्रधान रहता है।

बाधक—द्वित्रा (द्वौ वा त्रयो वा) इत्यादि। इसमें  
 दोनों पदोंके अर्थ प्रधान है।

समासान्त प्रत्यय—सस्तीक, सवधूक, बहुकर्तृक—  
 यदि बहुव्रीहिका उत्तरपद ऋकारान्त दीर्घ ईं वा ऊकारान्त स्ती  
 हो तो समासको क लगता है। सकर्मकम्, अकर्मकम्—(२)  
 बहुव्रीहि समासके अन्तमें क लगता है।

एको वा द्वौ वा एकद्वा, द्वौ वा त्रयो वा द्वित्रा, त्रयो वा चतु  
 त्रिचतुरा, चत्वारो वा पञ्च वा चतुष्पञ्चा, पञ्च वा षड् वा ष  
 दशाना ममीये ये सन्ति ते उपदशा, द्विदश द्विरावृत्ता वा दशद्वि  
 त्रिंशत्तरिका अधिकाविंशा, आसन्नत्रिंशा, अदूरपञ्चाशा, अ  
 चत्वारिंशा—(३) सख्यावाचकका सख्यावाचकसे साथ, अव्ययके

अन्तिम स्वर वा उपात्य स्वरके साथ अन्तिम व्यञ्जनका लोप होता है। विशेष-प्रसगता है। विशतिके त्ति का लोप होता है और चतुर-लगता है।

केशेषु केशेषु वृहीत्वेद युद्ध प्रवृत्तमिति केशाकेशि, दण्डैर्दण्डैश्च युद्ध प्रवृत्तमिति दण्डादण्डि, सुष्टीमुष्टि—(४) ऐसे समासों-गणना बहुव्रीहिमें होती है। इसमें पूर्वपदके अन्तिम स्वरको लोप होता है और समासके अन्तमें इ लगता है। यह समास अव्यय और क्रियाको पुनरुक्ति (कर्मव्यतिहार) का बोध कराता है।

कमले इवाक्षिणी यसर स कमलाक्ष, हरिणसर अक्षिणी इव अक्षिणी यसरा सा हरिणाक्षी—(५) बहुव्रीहिके अन्तमें अक्षिको लोप होता है (स्त्री अक्षी)।

नास्ति प्रजा यस्य स अप्रजा, दुष्टा मेधा यस्य स दुर्मेधा, शोभना यस्य स सुप्रजा, —(६) नञ् (अ), हुष्, तथा सु पूर्व रहनेपर प्रजा मेधाको प्रजस् तथा मेघस् होता है।

सीता जाया यस्य स सीताजानि —(७) बहुव्रीहिके अन्तमें जायाको लोप होता है।

धामधिष्ठमधिज्यम्। अधिष्य धनुर्धस्य स अधिज्यधन्वा (जिसके धनुष पर धनुष्य वा डोरों चढ़ी हुई है) —(८) बहुव्रीहिके अन्तमें धनुषको लोप होता है।

शोभनो पादौ यस्य स सुपाद्, द्वौ पादौ यस्य स द्विपाद्—(९) सुपाद् शोभनावाचक पूर्व होनेपर पादको पाद् होता है। चतुःपद—द्विपाद्, चतुःपदाम्—यत्त व ।

शोभनो गन्धो यस्य स सुगन्धि, सद्गतो गन्धो यस्य स उद्गन्धि, शोभनो गन्धो यस्य स सुरभिगन्धि, पद्मसेय गन्धो-यस्य स पद्मगन्धि—

(१०) उद, पूति, सु, सुरभि पूर्य रहनेपर, वा जहा समास सादृश्यमें हो, बहुव्रीहि समासके अन्तिम 'गन्ध'को 'गन्धि' होता है ।

हन्द् — यह दो प्रकारका होता है, इतरेतरहन्द् और समाहार रामलक्ष्मणी, हरिहरौ, युधिष्ठिरार्जुनौ, इत्यादि इतरेता उदाहरण है ।

पाणिपादम् ( पाणी च पादौ च तयो समाहार ), श्वारोहम्, मार्दङ्गिकपाणविकम्, यूकालिचम्, इत्यादि समाहारहन्द्के उदाहरण है । शरीरावपववाचकोका, अवपववाचक, वा वाद्य ( वाजा ) वाचकोका, चन्द्रान्तुवाचकोका, स्वाभाविक विरोध रखनेवाले पाणिवाचकोका समास समाहारहन्द् से स्थानपर इतरेतर योग नहीं मानते । पाणिपादौ नहीं होता ।

देवताहन्द्—मितुश्च वरुणश्च मित्रावरुणौ, सूर्यश्च चन्द्रमाश्च चन्द्रमसौ ; अग्नीषोमौ, अग्नीवरुणौ ( पूर्वपदके अन्तिम स्वरको होता है, ) ।

इतरेतरहन्द्में दोनों पदोंको श्रयोको प्रधानता रहती है, पर हारहन्द्में समुदाय प्रधान रहता है ।

एकशेष—माता च पिता च पितरौ, आता च स्वभा च भ्रातृपुत्रश्च दुहिता च पुत्रौ, हसी च हसश्च हसौ, श्वश्रूश्च श्वशुरश्च श्वशुरौ

अलुक्समास—युधिष्ठिर, परस्मैपदस्, आत्मनेपदस्, विशां सरसिजम् इत्यादि ।

स्वर्गश्च पन्था स्वर्गपथ, रम्य पन्था यत्र स रम्यपथो देश ( स अन्तमें पथिन्को पथ होता है ), विष्णो पू विष्णुपुरम्, राम्य गज्यधुरा ( पुर तथा धुरको अ लगता है ) ।

पृषोदरादि—पृषत ( बूदका ) चंदर पृषोदरम् वा पृषत पत्र तत् पृषोदरम् ( पवन ), मनस ईषिण ( विचार करने

येण' ( पण्डित ), धारोणां वाचक वलाहक, ( मेघ )—कुछ  
में पूर्वपदके कुछ अक्षरोंका लोप होता है । ऐसे अनियत समासों-  
स गणमें समावेश होता है ।

सुसुप्समास—पूर्व भूत भूतपूर्व, पूर्व दृष्ट दृष्टपूर्व—यह ऐसा  
है जिसकी गणना अव्ययीभा०, तत्पु०, बहु०, वा द्वन्द्वमें नहीं हो  
ती । इसमें—एक, सुवन्त ( जिसकी अन्तमें सुप् अर्थात् विभक्ति हो )  
अरे सुवन्तके साथ समास होता है ।

सन्देहदोषाधिष्ठे मे चेत ।

न शक्नोमि भवन्त विना क्षमप्यवस्थातुमेकाकी । कथमपरिचित  
दृष्ट पूर्व इवाद्य सामेकपद उत्सृज्य प्रयासि !

सखे ! नेतदनुदप' भवत । सुद्वजनस्तुष्य एषः मार्गः । धैर्यधना हि  
यः । किं य कश्चन प्राकृत इव विह्वलीभवन्तमारमान न रुणत्सि ?

अहह ! हृदयमर्मच्छिद खल्वमी कथोद्घाता ।

किमपि वक्तुकामोऽस्मि ।

यत्स ! कथय किमप्यन्यचेतसा मया नावधारित किमनयोक्तमिति ।

अन्तरेणापि शब्दप्रयोग बहुव्रीह्यां गम्यन्तेऽपि निकोचै प्राणिविहारैश्च ।

यत्का कश्चिदाद्यभिधायी भवति । प्राण्य वर्णानभिधत्ते । कश्चिच्चिरेण ।

चिच्चिररेण । तदाया । तमेवाध्वान कश्चिदाद्य गच्छति । कश्चिच्चिरेण

ति । कश्चिच्चिरतरेण गच्छति । रथिक प्राण्य गच्छत्यश्चिरेण पदाति-

तरेण ।

गुरुवदस्मिद् गुरुपुत्रे वर्तितव्यमन्यत्रोच्छिष्टभोजनात् पादोपसंग्रहणाच्च ।

च गुरुपुत्रोऽपि गुरुर्भवति तदपि कर्तव्य भवति ।

प्रतिमहद्विदमाश्रयंभाख्यातव्यम् । अरपशेषमह । प्रत्याधीदति च

प्राणसमय । तदुत्तिष्ठन्तु भवन्त । सर्वे एवाचरन्तु यथोचितं दिवस-



व्यापारम् । अपराह्णसमये- भगतामादित प्रभृति सर्वमावेदयामि ।  
यज्ञानेन कृतमपरस्मिन्नमनीह लोके यथास्य समूतिः । -

तद्गुणोऽतद्रुणश्चेति बहुव्रीहिरिदं धा मत ।

लम्बकर्णश्च कर्णाटो दृष्टमागरपूरुष ॥ -

अहो दुर्गासदोऽप राजसहिमाः तथाहि—

न च न परिचितो न चाप्यगम्यश्चकितमुपैमि तथापि पार्श्वमध्य  
सलिलनिधिरिव प्रतिक्षण मे भवति स खव नवो नवोऽपसरथो

बहुधाप्यागमेभिर्द्वा पन्थान सिद्धिहेतव ।

त्वय्येव निपत्योघा ज्ञान्दवीया इवार्णवे ॥ -

वाह ! समुद्रके बीच यह द्वीप कैसा सुन्दर है ।

आप यहाँ तीन या चार दिन ठहरें । इतने अवसरमें मैं आपका  
सिद्ध करेका यत्र करुगा ।

दौनोंकी रक्षा करना आपको उचित ही है, क्यों कि आप अपने  
पुत्रोंके कार्यका अनुकरण करते हैं ।

अरे ! यह सबेरा हो गया । मुझे शीघ्र उठना चाहिये । अथवा मैं  
उठकर क्या करुगी ? मेरे-हाथपैर तो चलते-नहीं ।

सृगया ( शिकारः ) से लौटे हुए राजाने गोदावरीके तटपर-  
किया, और नदीसे आनेवाले मन्दपवनसे उसकी थकावट मिट गयी ।

मेरा मन दूसरी ओर लगा था, इसलिये मैंने तुम्हारी कही हुई  
न सुनी ।

वह मित्तु, जो राजाको अच्छी-सलाह नहीं देता, खराब मित्तु है ।

जब वह राजा, जिसके धनुष डोरी-चट्टी हुई थी, जिसके  
दीर्घ ये तथा छाती चौड़ी थी, युद्धक्षेत्रमें उतरा, उसके सब शत्रु  
क्षण-क्षणसे शरण आये ।

सन्नाशब्द ।

(शरण्य) पु — समुद्र  
 (श्रागम) पु — शास्त्र, वेद  
 हृद्य (उपसङ्गहयाम्) न —  
 धीरे२ दवाना  
 (श्रोघ) पु — समूह  
 द्घात (कथोद्घात) पु —  
 कयाका आरम्भ  
 ट (कर्णाट) पु — कर्णाटक  
 शेषका वाघो

दोला (स्त्री) — भूला  
 निकोच (निकोच) पु — सकोच  
 पदाति (पु) — पैदल सवार  
 रथिक (रथिक) पु — रथासुद्ध  
 विहार (विहार) पु — क्रीड़ा, हिलना  
 व्यापार (व्यापार) पु — काम  
 सम्भूति (स्त्री) — जन्म

विशेषण ।

रुठ (अधि + रुठ् + त) —  
 बड़ा हुआ  
 रथ — योग्य  
 धारित (अत्र + धृ + च् + पर + त)  
 — विचारित  
 कष्ट (रुठ् + शिष् + रु + पर + त)  
 — नुठा  
 किकिन् — शरहेला  
 हवीय — गङ्गाका

दुरासद — कठिनाईसे पाने योग्य  
 प्राकृत — सामूली  
 मर्मच्छिद्र (मर्मन् + न) —  
 मर्मस्थानको काटनेवाला  
 विक्रवीभवत् — व्याकुल होता  
 हुआ  
 लुण (लुट् + रु + ल + त) —  
 कुचला गया हुआ  
 लुट् — तुच्छ

१। न विक्रव विक्रव यथा सम्पद्यते तथा भवतीत्यर्थः — यहाँ अभूततद्भाव अर्थ है।  
 २। 'म' से 'ग' वा विशेषण कोड़ लगाया जाता है और 'रु' के बाद 'रु', 'भु', 'सु' धातुओं  
 'रु' जोड़े जाते हैं।

धातु ।

आ + विद् (प्र) — कहना,  
निवेदन करना

प्रति + आ + सद् [ सीद् ] प्रत्यासी-

दति म्वा पर ) — पास प  
प + या (प्रयाति — अ प) —

~ अव्यय ।

अहह — आ ! (आश्चर्य दिखाता है) ।

आशु — शीघ्र

एकपदे — एकस्मात्

चकितम् ( चक्-म्वा सम् + त )

डरा हुआ वा आश्चर्ययुक्त  
पार्श्वम् ( पार्श्वं पु, न ) —  
प्रभृति — आरम्भ कर

पाठ ३४ ।

कारक ।

कारकोंके अर्थ इवे पाठमें दिये गये हैं । विशेष धातुओं और उपसर्गोंके योगमें उनके प्रयोग शब्दसंग्रह तथा टिप्पणियोंमें कहे गये हैं । विद्यार्थियोंके सुभीतेके लिये इस पाठमें विस्तारसे उनका वर्णन किया जाता है ।

घट्टीको छोड़ और सब विभक्तियाँ कारकविभक्तियाँ कहानी क्योंकि वे क्रियाके साथ अश्वित होती हैं । घट्टी इस प्रकार क्रियाके अश्वित नहीं होती । यह विशेषणके अर्थमें आती है और विशेष विभक्ति कहानी है ।

- प्रथमा — यह नाम की विभक्ति है । इसका अर्थ नाम अथवा पदिक है । कतरि प्रयोगमें कर्ताके अर्थका क्रियासे बोध होता है । लिये प्रथमान्त, यद्यपि वह कर्ता हो, कर्ताके अर्थमें नहीं कहा जाता । क्योंकि कर्ता अभिहित अर्थात् क्रियासे बोधित है ।

ग्रो लिखित प्रथमाके अर्थ है—

१।। माणवक पुस्तक लिखति—प्रातिपदिकार्थ, नामार्थ, या अर्थ । यह कर्तरि प्रयोग है और कर्ता क्रियासे उक्त है ।

२। द्रोणो ब्रौहि —परिमाण यह द्रोणका अर्थ है द्रोणपरिच्छिन्न, नामक परिमाणसे नया हुआ ।

३। रश्च देवदत्त—सम्बोधन ।

द्वितीया—इसका अर्थ है अनभिहित कर्म । कर्मणि प्रयोगमें कर्मका क्रियासे अभिहित होता है । इसलिये कर्म प्रथमान्त होता है ।

१। माणवको ग्रन्थ लिखति—यह कर्तरि प्रयोग है । यह कर्मका अर्थ बोध नहीं होता और इस प्रकार, वह अनभिहित है । इसलिये प्रथमा हुआ । माणवकेन ग्रन्थो लिख्यते—यह कर्मणि प्रयोग है और कर्म लिख्यते' से अभिहित है, द्वितीयासे इसका बोध नहीं होता । इसलिये उपदिक् अर्थमें 'ग्रन्थ' से प्रथमा हुई ।

विषट्क्षोऽपि सवर्ध स्वय हेतुमसाम्प्रतम्—यहा असाम्प्रतम् इस अर्थसे कर्मका बोध होता है क्योंकि इसका अर्थ 'न युज्यते' ( योग्य नहीं ) है । इसलिये विषट्क्षसे प्रथमा हुई ।

स्वयमेव दृश्यन्ते दुष्टजनदोषा —यह कर्मकर्तरिप्रयोग कहाता है । दोष कर्ता भी है और कर्म भी । इसका अर्थ है—दोष और किसीसे नहीं जाते, वे स्वय अपनेहीसे देखे जाते हैं ।

२। सुष्टु, याच्, इत्यादि द्विकर्मक धातु है । ( १०६ वे दृष्टुमें देखो ) इन धातुओंके अर्थके दूसरे धातु द्विकर्मक होते हैं ।

गा. शीघ्र पय, , ब्रजमयकण्ठि गाम्, माणवक माग पृच्छति, अत्र गां भिच्छते याचते वा, पुत्र धम ब्रूते अनुशास्ति वा, वृत्तमव कर्षति फत्रानि, अजां ग्राम नयति-हरति वधति-कर्षति वा, तण्डुला नयति, अत मुष्णाति देवदत्तम्, इत्यादि ।

इन उदाहरणोंमें एक प्रधानकर्म है, दूसरा गौणकर्म। पय, मार्गम्, ग्रामम्, धर्मम्, फलानि, अजाम्, अदिनम् और शतम् प्रधान कर्म है; इतर कर्म गौणकर्म है।

गा दोरिध पय — गौर्दुच्छते पय, वृत्तमवचिनोति फलानि—  
ऽवचीयते फलानि, अजा ग्राम वहति—अजा ग्राममुच्छते—

३। नी, हृ, कृष, तथा वहको कर्मणि प्रयोगमें प्रधान कर्म, इतर दुहादि धातुओंको कर्मणि प्रयोगमें गौणकर्म क्रियासे अभिहित है, इसलिये वह प्रथमामें रहता है और दूसरा कर्म द्वितीयामें।

प्रेरणार्थक प्रयोगोंमें ये नियम हैं —

हरि पुस्तक लिखति (अख्यन्तरचना, लिच् वा णि प्रेरणार्थक प्रत्ययान्तरचना = प्रेरणार्थक प्रयोग, और अख्यन्तरचना = अप्रेरणार्थक प्रयोग)

माणवको हरिणा पुस्तकं लेखयति—ख्यन्तरचना अथवा प्रेरणार्थक प्रयोग। माणवक हेतुकर्ता कदाता है।

माणवकेन हरि पुस्तक लेख्यते—प्रे कर्मणि प्रयोग।

४। अख्यन्त रचनाका कर्ता ख्यन्त रचनामें वृत्तीयान्त होता है।

गच्छति भृत्यो ग्रामम् । गमयति भृत्य ग्राम राजा । गम्यते भृत्ये राज्ञा । देवा अमृतमश्नन्ति । हरिर्देवानमृतमाशयति । हरिणा अमृतमाशन्ते ।

अत्रूतगमयत्स्वग वेदार्ये श्वानवेदयत् ।

आशयच्चामृत देवान् वेदमध्यापयद्विधिम् ॥

आशयत्सलिले पृथ्वीं य स मे श्रीहरिर्गति ॥

दर्शयति हरि भक्तान्—

५। गमनार्थक, भानार्थक, भक्षणार्थक, तथा रेखे धातु त्रिनकार्थक हो, तथा अकर्मक धातुओंका अख्यन्त रचनाका कर्ता ख्यन्त र

तृतीयान्त होता है, तृतीयान्त नहीं। ऊपर दिये हुए श्लोकोंमें इस प्रकारके सब उदाहरण हैं। दृश्, धातुमें भी वैसा ही प्रयोग होता है। नाययति वाहयति वा भार भव्येन । हारयति कारयति वा भृष्य भृत्येन वा

३।—  
६। नी तथा वह् धातुका अण्यन्त रचनाका कर्ता अण्यन्त रचनामें यान्त रहता है, और हृ तथा कृ का अण्यन्त रचनाका कर्ता अण्यन्त रचनामें-द्वितीयान्त वा तृतीयान्त रहता है।

बोधते माणवक धर्म, बोध्यते माणवको धर्ममिति वा। भोव्यते इण ओदनम्, भोव्यते ब्राह्मणमोदन इति वा। शिष्यो वेदमध्याप्यते, अथ वेदोऽध्यापयत इति वा।—

७। धानार्यक, भक्षणार्यक, तथा अण्यकर्मक धातुओंमें ऊपर दिये गये दोनो प्रकारके प्रयोग होते हैं।

अपन्नसति—अनुवसति—अधिवसति—आवसति वा वैकुण्ठं हरि (१९६ वे' पृष्ठमें टिप्पणी देखो)।

अन्तरा त्वा मा च कमण्डलु । अन्तरेण हरि न सुखम् (१५५ वे' पृष्ठ-शब्दसंग्रह देखो)।

अधिगते—अधितिष्ठति—अध्यास्ते वा वैकुण्ठं हरि (१२६ वे' पृष्ठमें टिप्पणी देखो)।

हा कृष्णाभक्तम् । बुभुक्षित न प्रतिभाति किञ्चित् (हा तथा प्रति को योगमें द्वितीया होती है)।

धिग्रा छासमान् । धिग्न कृष्णाभक्तम् (५६६ वे' पृष्ठमें शब्दसंग्रह देखो)।

धिगार्या कष्टसञ्चया । धिगिय दरिद्रता । धिङ् मूर्खं । (इस प्रकार धिङ् के योगमें द्वितीया, प्रथमा, तथा सम्बोधन होता है।)

मासमधीते—क्रोश कुटिला (अत्यन्तसयोगयाचक)—

८। कान वा अलङ्कौ ध्यापकताये अर्थमें द्वितीया होती है।

यह अत्यन्तसयोग कदाता है । इसका अर्थ क्रियाका काल वा स्वयंसाध घना सम्बन्ध है ।

तृतीया—यह कर्ता वा करण अर्थमें होती है ।

प्रकृत्या चारु , प्रायेण यान्त्रिक , गोत्रेण भार्य , समेनेति ( समेन मार्गैस्तेतीत्यर्थ ) , त्रियमेत्येति ।

अदना क्काण । कर्णेन दधिर । पादेन खड्ग । पुत्रेण सह साधं साक वा गत पिता ।—

१ । ऐसे उदाहरणोंमें तृतीया होती है ।

पुष्पेन दृष्टो हरि । अध्ययनेन वसति ।—

२ । यह तृतीया हेतुके अर्थमें है ।

अल महीपाल तव अमेण ( अमेण न किमपि साध्यमित्यर्थ ) । अल मतिविस्तरेण । कृत प्रयत्नेन ।

३ । 'पर्याप्त' इस अर्थके अलम् तथा कृतम् के योगमें तृतीया होती है । यद्वा साधन क्रिया गम्यमान अर्थात् अभ्याहृत है और अम उसका करण है ।

जटाभिस्तापस , द्युतिच्छत्रेण राजानमपश्यत् , कमण्डलुना क्कान् —

४ । यह लक्षणतृतीया कदाती है , क्योंकि यह मनुष्यके लक्षणको वताती है ।

चतुर्थी—यह सम्प्रदान वा तार्थ्यके अर्थमें होती है ( तस्मै हृद तदय तदर्थस्य भावस्त्वादर्थम् ) । जिसको कोई वस्तु दी जाय वा जिसके सम्बन्धमें कोई क्रिया की जाय वह सम्प्रदान है । जैसे—  
विप्राय सा ददाति , युद्धाय सन्नद्यते ( युद्धके लिये तैयार होता है ) ,  
रान् कर्मर्पयति , शिष्याय शास्त्रमुपदिशति गुरु , अतिथये पादामुपनयति ।

हृद्ये रोचते भक्ति । यज्ञइत्ताय स्वइतेऽरूप ( अरूप = मालपुत्रा )—  
यद्वा प्रमन्न होनेवाला ( प्रीयमाण ) सम्प्रदान है ।

हरये क्रुध्यति—कुप्यति—द्रुह्यति—ईर्ष्यति असूयति वा, परन्तु क्रूरमभिनुध्यति अभिद्रुह्यति वा—क्रोध, द्रोह (डाह), ईर्ष्या, तथा असूयार्थक घातुश्रोके योगमें जिसके ऊपर क्रोध इत्यादि हो उससे चतुर्थी होती है, परन्तु उपसर्गपूर्वक क्रुध् तथा द्रुह् के योगमें द्वितीया होती है ।

भक्तिर्नानाय कल्पते सम्पद्यते जायते वा (६८ वें पृष्ठमें शब्दसंग्रह देखो) ।

देवदत्ताय गा प्रतिशृणोति आशृणोति वा ( प्रतिज्ञा करता है ) ।

फलेभ्यो याति ( फलान्वाहर्तुं यातीत्यर्थ ) ।

यागाय याति ( यष्टु यातौत्यर्थ ) ।

नमो भगवते वासुदेवाय । प्रजाभ्य स्वस्ति । अग्नये स्वाहा । पितृभ्य स्वाहा । दैत्येभ्यो हरिररुन्म ( समर्थ प्रसुर्वा ) । वपट् ( यह एक शब्द है जो देवताके उद्देशसे होम करनेमें प्रयोग किया जाता है ) इन्द्राय ।

ग्राम ग्रामाय वा गच्छति—गमनार्थक घातुश्रोके योगमें द्वितीया वा चतुर्थी होती है, पर पश्यान् गच्छति—जहा जाना हो वह यदि मार्ग हो तो केवल द्वि० होती है, मनसा हरि व्रजति—यदि वास्तविक गमन वा चलना अर्थ न हो तो केवल द्वि० होती है ।

उपपदविभक्ति—नम इत्यादि अव्ययोंके योगमें होनेवाली विभक्ति उपपदविभक्ति कहती है और इससे इतर विभक्ति कारकविभक्ति कहती है । वाक्यमें क्रियापद प्रधान रहता है, इतर पद उपपद वा गौण पद होते हैं । उपपदविभक्तिसे कारकविभक्ति प्रबल होती है ( उपपदविभक्ति कारकविभक्तिर्बलीयसी ) । जैसे नृषिह नमस्करोमि ( यहाँ नम के योगमें चतुर्थी होनेवाली नृषिह और करोति के योगमें द्वितीया, चतुर्थी उपपदविभक्ति है, और द्वितीया कारकविभक्ति, इसलिये द्वितीया हुई ) ।

नृषिहाय नमस्करोमि इत्यादि प्रयोगोंका समाधान, 'फलेभ्यो याति' के समान 'नृषिहमनुकूल क्रतुं नमस्करोति' ऐसा अर्थ करनेसे होता है ।



भक्ताय धारयते मोक्षं हरिः ( हरिः अधर्मणं वा ऋणं लेनेवाला है और भक्त उत्तमण अथवा ऋण देनेवाला ) ।

पुष्पेभ्य स्फुटयति, परन्तु यदि इच्छा आद्यन्त प्रबल हो, तो पुष्पाणि स्फुटयति ।

न त्वा लृणाय मन्ये—मैं तुम्हें तिनका भी न हूँ, समभक्ता ।

पञ्चमी—यह अपादान तथा हेतुके अर्थमें होती है । अपादान वह है जिससे कोई वस्तु अलग होता हो ।

चौराद् विभक्तिः । चौरात् त्रायते । अध्ययनात् पराजयते ( गलानो भवति, मुर्झाता है ) । यवेभ्यो गा धारयति । मातुर्निलीयते कृष्ण । कृष्ण उपाधयोपादधोते । ब्रह्मण प्रजा प्रजायन्त । हिमवतो गङ्गा प्रभवति । तिलेभ्य प्रतियच्छति भाषान् ।

पृथग् रामेण रामाद्राम वा । विना रामेण रामाद्राम वा ।

प्रासादात् प्रेक्षते ( प्रासादमारुह्य प्रेक्षते ), आसनात् प्रेक्षते ( आसने उपविश्य प्रेक्षते ), सायुरा पाटलिपुत्रकेभ्य आढ्यतरा ।

अन्यो भिन्न इतरो वा कृष्णात् ।

आ मुक्ते ससार ( आ=तक—मर्यादा ) । आ मूलाच्छोतुमिच्छामि ( आ=से—अभिविधि वा आरम्भ ) ।

भवात् प्रभृति आरभ्य वा सेव्यो हरिः ।

ऋते कृष्णात्, ऋते यो योगमें कभीर द्वितीया भी होती है ऋतेऽपि त्वा न भविष्यन्ति सर्वे । ऋते याताद्वात वा वृक्ष पतति । रामादृते धनुर्धरो न ।

पृष्ठी—यह सम्यग्ब्रह्मका बोध कराती है ।

किं निमित्तं वर्धति । कोन निमित्तेन, कस्मै निमित्ताय, इत्यादि । निमित्त शब्द तथा इस अर्थको और इच्छाको योगमें सब विभक्तिया होती है ।

वृथा वृष्टु वा दृष्ट श्रेष्ठ — निर्धारणशुी वा निर्धारणसप्तमी  
( २२० तथा २२१ वा पृष्ठ देखो ) ।

रुन्ति ( पुत्रादिके ) रुदतो ( पुत्रादिकम् ) वा प्रात्रजत्— यद्यपि पुत्र  
रव्यादि रो रचे थे, तो भी वह सन्यासो हुआ । यह अनादरपशुी वा  
प्रनादरसप्तमी है । इसका अर्थ है— रुदन्त पुत्रादिकमनादृत्य ।

मातु स्मरति बाल । मातर स्मरति वा । ( श्च के योगमें षष्ठी वा  
द्वितीया होती है । )

राना मतो ब्रुह पूजितो वा । ( यहापर षष्ठी तृतीयाशो अर्थमें तथा  
वृत्तकृदन्त वर्तमान कृदन्तके अर्थमें है । ) “अहमेव मतो महीपतेरिति  
वर्ष प्रकृतिष्वचिन्तयत्”—रघुवश—८—८ ।

तुल्य सदृश समो वा कृष्णम्य कृष्णेन वा ।

दक्षिणेन वृत्तवाटिकामालाप इव श्रूयते , दक्षिणेन ग्राम ग्रामस्य वा ,  
उत्तरेण ग्राम ग्रामस्य वा—दक्षिणेन तथा उत्तरेण एन—प्रत्ययान्त अघ्यय  
है शोर इनके योगमें द्वितीया वा षष्ठी होती है ।

सप्तमी—यह आधार वा अधिकरणका बोध कराती है ।

गोषु हुह्यमानासु गत —सप्तिसप्तमी ।

प्रसित उत्सुको वा हरिणा हरौ वा ।

अयि वत्स ! कृत कृतमविनयेन । अनेककारमपरिस्रय परिध्वजस्त्र माम् ।  
कुशलवो भगवता वारमोकिना धात्रीकर्म वस्तुत परिशुद्ध पोषितो  
परिरचितो च । वृत्तचूडो च त्रयीवर्जमितरा विद्या सावधानेन परिपाठितो ।  
समन तर च गर्भैकादशे वर्षे चान्नेण कल्पेनोपनीय गुरुणा त्रयीविद्यामध्या-  
पितो ।

शा देव । एष मया विनाहमप्येतेन विनेति स्वप्नोऽपि षोडस सम्मावित

मासीत् । तन्मुहूर्त्तकमपि जन्मान्तरत इव लब्धदर्शनं वाप्यसलिलान्तरे  
प्रक्षेपे तावद्दत्तसलमार्यपुत्रम् ।

अनया कालकलया शुद्धरमपक्रान्तं स पापकृदिति मनसिकृत्य तत्  
मूलान्निष्क्राम्य सलिलसमीपं सर्तुं प्रयत्नमकरधम् ।

सा तु प्रक्षाल्य लोचने वल्कलोपान्तेन वदनमपमृज्य दीर्घमुष्णं च  
निश्चय्य शनैः प्रत्यवदत्—राजपुत्र ! किमनेनातिनिर्घृणहृदयाया मम मन्द  
भागिन्या पापाया जन्मन प्रभृति वैराग्यदृष्टान्तेनाऽश्रवणीयेन श्रुतेन । तथापि  
यदि महत् कुतूहलं तत् कथयामि । श्रूयताम् ।

अतिक्रम्यास्वप्नवस्थामु जौघितनिरपेक्षा न भवन्ति खलु जगति प्राणिनः  
वृत्तयः । नास्ति जीवितादन्यदभिमततरमिह जगति सर्वजन्तूनाम् । एवमुप  
रतेऽपि सुगृहीतनाम्नि ताते यदहमविकलेन्द्रियं पुनरेव प्राणिमि । धि  
सामकस्यमतिनिष्ठुरमकृतञ्चम् । उपकृतमपि नापेक्षते खलं हि खलु  
हृदयम् ।

प्रियप्राया वृत्तिर्विनयमधुरो वाचि नियम

प्रकृत्या कल्याणी मतिरनवगीत परिचय ।

पुरो वा पश्चाद्वा तदिदमविपर्यासितरस

रहस्यं साधूनामनुपधि विशुद्धं विजयते ॥

चिरं जीव चिरं नन्द चिरं पालय मेदिनीम् ।

चिरमाश्रितलोकानां पूरय त्वं मनोरथान् ॥

कमलमूतनया मुखपङ्कजे

वसतु ते कमला करपल्लवे ।

वपुषि ते रमता कमलाङ्गज

प्रतिदिनं हृदये कमलापति ॥

सूर्यको उपदेश उसकी सूर्यता बढानेके लिये होता है ( ऋप् ) ।

वह उसको बुद्धिमान् नहीं बनाता ।

हाय ! बड़ी बुरी बात हुई ! शकुन्तलाने किसी पूज्य ऋषिना

उपराध किया ।

ऋषिके सिवा और कौन आदमीको जला सकता है ?

गोब्रसे बिच्छू उत्पन्न होता है ।

मैं नहीं जानता कि अबतक वह राजपुत्र कितना चतुर हुआ है ।

नौव आदमी दूसरेके उपकारके तरफ ध्यान नहीं देता ।

सज्जनोंका धर्मि सर्वोत्तम है, जो सर्वदा सब बोलते है, और

कभी नीचोंके मागसे नहीं चलते ।

रामने लङ्का जानेके लिये नलसे समुद्रपर पुल बनवाया ( कतरि तथा

किर्मणि प्रयोग करो ) ।

कृपाकर उसे बीचमें न छेड़िये । मैं आरम्भसे वह किस्सा सुननेके लिये

बड़ा उत्सुक हू ।

मनाशब्द ।

अवस्था ( स्त्री )—स्थिति  
 उपकृत ( उपकृतम् ) न उप + कृ  
 + त )—उपकार ।  
 कमलमू ( पु )—ब्रह्मा ( त्रिष्णुके  
 नामिकमलसे उत्पन्न )  
 मला ( स्त्री )—लक्ष्मी  
 मलाद्भ्र ( अद्भ्र पु पुत्रु ) पु—  
 लक्ष्मीका पुत्र, प्रद्युम्न  
 अपसुत्र ( कर पु + पसुत्र पु , न )

पु , न —पसुत्रके समान कोमल  
 धाय  
 कल्प ( पु )—विधि  
 कायशला ( स्त्री )—कालका मूत्रम्  
 अश  
 चूडा ( स्त्री )—केशान्तमस्कार  
 सौवित ( सौवितम् ) न ( नोड् + त )  
 —जीवन  
 धात्री ( स्त्री )—घाड

परिचय (परिचय) पु —परिचयान्  
 वाय (वाय -पु) पु, न —आसू  
 रस (रस) पु —अनुराग, प्रेम  
 रहस्य (रहस्यम्) न —गूढ बात  
 वल्कलोपान्त (वल्कल पु, न —

काल + उपान्त पु किनारा )—  
 कालके बने हुए वल्कल किनारा  
 वृत्ति (स्त्री) —मानस व्यापार  
 वैराग्य (वैराग्यम्) न —साक्षात्  
 सुखोंसे घृणा

### विशेषण ।

अकृतज्ञ—जो किये हुए उपकारको  
 नहीं मानता, कृतघ्न  
 अतिकष्ट—बहुत दुःख देनेवाला  
 अतिनिष्ठुर—कठोरहृदय,  
 अतिक्रूर  
 अध्यापित (अधि + इ—अ आ  
 प्रे० + त) —पढ़ाया गया  
 अनवगीत (अन् + अव + गीत =  
 गै—एजा पर + त) —अनिन्दित  
 अनुपधि—निष्कपट (उपधि-पु —  
 कपट)  
 अधिकल—अध्याकुल  
 अविपर्यसित (अ + वि + परि +  
 अस—तु पर प्रे० + त) —  
 अपरिवर्तित  
 उपक्रान्त (उप + क्रम् एजा, दिं पर  
 + त) —गथा हुआ  
 उपरत (उप + रम् भ्या आ + त)  
 —सृत

कल्याणिन्—दूसरोंका हितचिन्तक  
 चातु—क्षत्रियसम्बन्धी  
 गर्भकादश—गर्भसे ग्यारहवा  
 निरपेक्ष—निस्पृह, अपेक्षाहीन  
 परिपाठित (परि + पठ्—प्र + त)  
 पढ़ाया गया  
 पापकृत्—पापी  
 प्रियप्राय (स्त्री—प्रियप्राया) (बहु  
 प्रिय + प्राय—पु एक बढ़ा  
 हिस्सा) —प्राय प्रिय, बहुत  
 कर प्रिय  
 मन्दभागिन्—अभागा  
 मद्युग्—कोमल, मधुर  
 सम्भावित (सम् + भू—प्र + त)  
 —विचारित, चिन्तित  
 सुसृष्टीतनामन् (बहु०) —शुभ नाम  
 विशुद्ध (वि + शुध्—दि पर + त)  
 —अयन्त पवित्र

## धातु ।

प्रप + मृज् (अपमाष्टि—अ पर) —  
 पोंहना  
 उप + नी ( उपनयति—ते—भ्वा  
 उम )—यज्ञोपवीत करना  
 नन्त् ( नन्वति—त्रा पर )—प्रसन्न  
 होना  
 न्कम् (निष्कामति—म्यति—भ्वा,  
 दि—पर )—निकलना

परि + खञ् ( परिच्छजते—भ्वा  
 आ )—गले लगाना, आलि-  
 ङ्गन करना  
 प्र + क्षल् ( प्रक्षालयति—चु पर )  
 —धोना  
 मनसि कृ ( तना० )—सोचना

## श्रव्यय ।

अपरिस्रयस्—गाढ़  
 अनेकवारस्—कई बार  
 वष्णस्—गरेम  
 कृतस्—वस  
 तत्—तो  
 त्रयीर्जम् ( त्रयी स्त्री तीन वेद,  
 तत्पु०, क्रियाविशेष० )—तीन  
 वेदके सिवा  
 लघस्—लबां  
 पद्यात्—पौके

पुर —सामने ।  
 प्रभृति—आरम्भसे ( तत प्रभृति—  
 तत्रसे )  
 सुहु —वार २  
 वस्तुत —सबमुच  
 समनन्तरम्—बाद  
 सावधानेन ( अथ अवधानेन सहित  
 यथा स्यात्तथा )—ध्यानपूर्वक  
 सुदूरम्—श्रतिदूर

पाठ ३५ ।

लुट्, लृट्, लृट् ।

भविष्यत् तथा क्रियातिपत्ति ।

न जाने प्रातः काले किं भविष्यति—मैं नहीं जानता कि सबरे क्या होगा ।  
शत्रून् विजेष्ये वा मरिष्यामि वा—मैं शत्रुओंका जीतूंगा वा मर  
जाऊंगा ।

सुवृष्टिश्चेद्भविष्यद् दुर्भिक्षं नैव सम्पत्स्यत्—यदि अच्छी वृष्टि होती  
तो अकाल कभी न होता ।

अथ धर्मं व्याख्यास्यामः । कृत्स्नं धर्मं व्याख्यास्याम इति यावत्-  
हमलोग सम्पूर्ण धर्मकी व्याख्या करेंगे । अथ धर्मं व्याख्यास्याम का अर्थ  
कृत्स्न धर्म व्याख्यास्याम—अर्थात् हमलोग सम्पूर्ण धर्मकी व्याख्या करेंगे  
यावत् 'अर्थात्' के अर्थमें आता है ।

अथ भगवान् कुशली काश्यप । अत्र प्रथार्थाऽथशब्दः । "मङ्गलानन्तरा  
रम्मप्रश्नकात्स्वैष्वथो अथ" इत्यमरात्—क्या भगवान् काश्यप सुखी है ?  
यद्वा अथ का अर्थ प्रश्न है । क्योंकि अमरकोशके अनुसार अथो तथा अथ के  
अर्थ ये हैं—मङ्गल, अनन्तर, आरम्भ, प्रश्न तथा पूर्णता ।

अद्या' क्रोशेन वा ऽनुवाकोऽधीतो मया । तेन तु मासमधीतो नायात्—

१। अहन् के रूप इस प्रकार होते हैं —

प्र	अह	अही हनी	अहानि
दि	"	"	"
स	"	"	"
ल	अह्रा	अहीभ्याम्	अहीभि
स	अहि हनि	अही	अह सु अहस्सु

नियम —अहन् के प्र, दि तथा स के ए व, में अह रूप होता है । ळतीत्य  
दिवचनसे लेकर व्यञ्जनादि प्रत्यय आगे रहनेपर अहन् के न् की विसर्ग होती है ।

मैने एक दिन वा एक 'कोसमें अनुवाक' पढ़ा, उसने तो एक महीना पढ़ा पर यह न आया ।

इस प्रयोगकी ओर ध्यान दो । जब क्रियाके फलकी प्राप्ति हो तो तृतीया, तथा जब वह न हो तो द्वितीया (मासम्) होती है ।

इस पाठमें दोनों प्रकारके भविष्यत्, तथा क्रियातिपत्तिका वर्णन किया गया है ।

अत्रतक वर्णन किये गये लकार सार्वधातुक लकार थे । क्योंकि इन लकारोंमें धातुको विकरण जोड़ा जाता था, अथवा विकरणको निमित्त होनेवाला परिवर्तन—जैसे द्विव्व इत्यादि—धातुमें होता था । अब जिन लकारोंका वर्णन इस पाठमें तथा अग्रिम पाठोंमें किया जायगा वे आर्धधातुक लकार कहलाते हैं । इनको रूप बनानेमें धातुको विकरण जाननेकी कोई आवश्यकता नहीं होती ।

य के सिवा आर्धधातुक व्यञ्जनादि प्रत्यय आगे रहनेपर कुछ धातुओंको इ आगम होता है, कुछ धातुओंको नहीं होता, और कुछको विकल्पसे होता है । वे धातु जिनमें इ आगम होता है, सेट् (स+इ), जिनमें वह नहीं होता वे अनिट्<sup>१</sup> (अन्+इट्—इ पो विना),

१ अधोनिखित दो कारिकाओंमें अनिट् धातु गिनाये हुए हैं । पहिलीमें स्वरात्, तथा दूसरीमें व्यञ्जनान् धातु दिये हुए हैं ।

(अ) ऊर्ध्वोर्ध्वीतिरुत्थुशीसुत्तुश्चिडीङ् शिभि ।

उड्ढञ्भ्यां च विनैकावीजनेषु निहता धृता ॥

अजन (अच—स्वर) धातुओंमें ऊकारान्, (ऊन्—ऊ), चकारान्, यु र, षण्, शी, सु, उ, च, शि, डी (आत्म, ड् आत्मनेपदका बोध कराता है), शि, ह, (आत्म), व (उभ—अ से उभयपदका बोध होता है), इन धातुओंके सिवा और सब एकाच् धातु निहता वा अनुदात्त हैं । वेदमें अनिट् धातुओंकी अनुदात्त स्वर होता है । इस निये अनुदात्त स्वर वा निहताशब्द अनिट् के बराबर है । इसप्रकार अजन धातुओंमें ऊकारान्, चकारान्, तथा यु इत्यादि कारिकाओंमें गिनाये हुए धातु सैट् हैं । और इतर



तथा-जिनमें वह विकल्पसे होता है वेट् ( वा + इट् ) कहाते हैं ।

प्रायः रूपही से मालूम पड़ता है कि धातु सेट्, अनिट्, वा वेट् है साहित्यमें सेट् धातुओंसे- अनिट् धातुओंका प्रयोग अधिक मिलता है । ये धातु टिप्पणीमें दिये गये हैं । नये विद्यार्थियोंको-उनको-कण्ठाग्र कर नेकी आवश्यकता नहीं है । तथापि वे लोग, जो चाहते हैं कि व्याकरणका ज्ञान अच्छीतरह हो, उन्हें कण्ठाग्र करें ।

दो प्रकारके भविष्यत्काल हैं । एक अनद्यतन ( आजका नहीं ) अथवा स्वस्तन ( कलहका ) भविष्यत्काल, - क्योंकि यह आज होनेवाली

एकाच् धातु अनिट् है । ऐसे धातु जिसमें एकसे अधिक अच् वा स्वर हों, सेट् हैं । अत एव मूलज धातु—जैसे प्रेरणार्थक इत्यादि—सेट् हैं ।

- (ग) शक्त्पच् मुच् रिच् वच् विच् सिच् प्रच्छित्यज्निजिर्भज ।  
 भृज् भृज् भृज् मज्जिज् यज् युज् रुज् र्भविज् रुक् सिञ्ज् सृज् ॥  
 अट्टुद्विखि द्द्विदत्तुदिनुद पद्यभिद्वियतिर्विनद ।  
 शदसदी भिद्यति स्तन्दिद्वदी क्रुध्नुधिभुध्यति ॥  
 बन्धिर्युधिरुधीराधिव्यधयध साधिसिध्यतो ।  
 मन्यद्दन्नाप्चिप्कुपितप्तिपस्यतिद्व्यतो ॥  
 लिप्तुप्त्वपशपम्बपृष्टपियभ रभलभगन्मथमो रमि ।  
 क्रुग्निर् दग्निदिशीदृग्मृग् रिग् रुग् लिग् विग् मृग् -रुपि ॥  
 लिप्तुप्द्विपदुष्युष्यपिष्यविष् शिष् शुष् श्लिष्यतयो घसि ।  
 वसतिदंष्टदिहि दुही नहु मिहुरुहलिह्वहिसया ॥  
 अनुदात्ता हलन्तेषु धातवो ह्यधिक गताम् ॥

हलन्त धातुओंमें ( हल-व्यञ्जन ) कारिकामें दिये हुए १०२ धातु अनिट् हैं, और इतर सेट् । कारिकामें दिये हुए धातुओंका क्रम अन्तिम वर्णके अनुसारसे है—अर्थात् पहिले ककारान्त, फिर चकारान्त इत्यादि । यदि कई धातुओंका अन्तिम वर्ण एकही है तो वे वर्णानुक्रमसे दिये हुए हैं । कुछ धातुओंमें इ, ति, तथा विकरण कन्दके अनुगोचसे लगाये गये हैं ।

१। चम्, सृज्, गृह्, गाह्, सिध ( भ्वा पर क्रमसे रखना ), कृप्, म्यद्, नश्, दृह्, मुह्, सृह्, सिह्, ह्यप्, ह्यप्, इत्यादि वेट् धातु हैं ।

कपाका बोध नहीं कराता, और दूसरा सामान्यभविष्यत्काल  
 दाता है ।

अनद्यतनभविष्यत् वा लुट् ।

जि—पर ।

कृ आत्म ।

पु	जता	जंतारो	जंतार	कर्ता	कर्तारो	कर्तार
पु	जंतासि	जंतास्य	जंतास्य	कर्तासि	कर्तास्ये	कर्तास्ये
पु	जंतासि	जंतास्य	जंतास्य	कर्तासि	कर्तास्ये	कर्तास्ये

सामान्यभविष्यत् ।

ख्या-पर ।

दा-आत्म ।

पु	ख्यास्यति	ख्यास्यत	ख्यास्यन्ति	दास्यते	दास्यते	दास्यन्ते
पु	ख्यास्यसि	ख्यास्यथ	ख्यास्यथ	दास्यसे	दास्यथे	दास्यथे
पु	ख्यास्यामि	ख्यास्याव	ख्यास्याम	दास्ये	दास्यावहे	दास्यामहे

जि पर ।

शी-आत्म ।

पु	जेष्यति	जेष्यतः	जेष्यन्ति	शयिष्यते	शयिष्यते	शयिष्यन्ते
----	---------	---------	-----------	----------	----------	------------

क्रियातिपत्ति ।

ख्या पर ।

दा आत्म ।

पु	अख्यास्यत्	अख्यास्यताम्	अख्यास्यत्	अदास्यत	अदास्यताम्	अदास्यन्त
पु	अख्यास्यसि	अख्यास्यतम्	अख्यास्यथ	अदास्यथा	अदास्यथाम्	अदास्यथम्
पु	अख्यास्याम	अख्यास्याव	अख्यास्याम	अदास्ये	अदास्यावहे	अदास्यामहे

नियम .—

१। प्रत्यय ये हैं —

लुट् वा अनद्यतन भविष्यत् ।

पर .।

आत्म ।

पु	ता	तारो	तार	ता	तारो	तार
----	----	------	-----	----	------	-----

म. पु	तासि	तास्य	तास्य'	तासि	तासाथे	ताथे
उ. पु	तासि	तास्य	तास्य	तासि	तास्यहे	तास्यहे

लुट्, वा सामान्यभविष्यत् ।

पर ।

आ ।

प्र पु	स्यति	स्यन्	स्यन्ति	स्यते	स्येते	स्यन्ते
म पु	स्यसि	स्यथ	स्यथ	स्यसे	स्येथे	स्यथे
उ पु.	स्यामि	स्यथ	स्याम	स्ये	स्यथहे	स्यामहे

लुङ्, वा क्रियातिपत्ति ।

पर ।

आत्म ।

प्र पु	स्यत्	स्यताम्	स्यन्	स्यत	स्यताम्	स्यन्त
म पु	स्य	स्यतम्	स्यत	स्यथा	स्यथाम्	स्यध्वम्
उ पु.	स्यम्	स्यथ	स्याम	स्ये	स्यथहि	स्यामहि

२ । जेता, जेष्यति—ये विकारक प्रत्यय है । इसलिये उनको आगे रहनेपर धातुश्रींसे अन्तिम स्वर तथा उपान्तर इत्स्व स्वरको गुण प्रादेश होता है ।

गम्—पर ।

सगम्—आत्म ।

सामान्य—भवि ।

सामान्य—भवि ।

प्र पु	गमिष्यति	गमिष्यत	गमिष्यन्ति	सगम्यते	सगम्येते-	संगम्यन्ते
--------	----------	---------	------------	---------	-----------	------------

हन्—पर ।

कृ—पर ।

प्र पु	हनिष्यति—इत्यादि ।	करिष्यति—इत्यादि ।
--------	--------------------	--------------------

हृ—पर क्रियाति ।

भृ—आत्म क्रियाति ।

प्र पु	अहरिष्यत्—इत्यादि ।	अभरिष्यत्—इत्यादि ।
--------	---------------------	---------------------

३ । सामान्यभविष्यत्को प्रत्यय आगे रहनेपर गम् पर, हन्, तथा ऋकारान्त धातुश्रींको इ होता है ।

४। जो नियम सामान्य भवि में लगते हैं वे ही क्रियातिपत्ति में लागते हैं ।

वृत्—वृत्तिष्यते—वृत्स्यति, वृध्—वर्धिष्यते—वृत्स्यति, स्यन्—  
 'न्दिष्यते स्यत्स्यते—ति, कृष्—कल्पिताद्ये—कल्पाद्ये—कल्पास्ति,  
 सिष्यते—कल्पस्यते—ति ।

नियम —

५। वत्, वृध्, स्यन्, तथा कृष् धातु सामा भवि में विकल्पसे  
 स्मेपदों होते हैं और उनके पर रूपोंमें इ नहीँ लगता, कृष् में  
 गयतनभविष्यत्के समान भी कार्य होता है ।

दृष्—दृष्टा दृष्टारो दृष्टार, दृत्तरति—दृत्तरत् दृत्तरन्ति, दृष्टुम् (तुम्)  
 दृष्टु ( देखनेवाला ), पन्तु दृष्ट, दृष्टा, दृष्टि ।

सृज्—सृष्टा सृष्टारो सृष्टार, सृत्तरति सृत्तरत् सृत्तरन्ति, सृष्टुम्,  
 सृष्टु, पर सृष्ट, सृष्टा, सृष्टि ।

तृप्—तर्पिता, तृप्ता, तर्प्ता, तर्पिष्यति, तृप्स्यति, तर्प्स्यति ।

नियम —

( अ ) 'अनुनासिक वा अन्त स्यके सिवा हलादि विकारक प्रत्यय आगे  
 रहनेपर दृष् तथा सृज् के अ को नित्य र होता है, तथा इतर अनिट्  
 धातुओंमें विकल्पसे होता है । जैसे—

दृष् + ता = द्रृष् + ता = द्रृप् + ता [ २० वा पाठ ( अ ) ] = द्रृप् +  
 ता = द्रृष्टा, दृष् + स्यति = द्रृष् + स्यति = द्रृप् + स्यति = द्रृक् + स्यति  
 [ २० वा पाठ र. ] = द्रृक् + स्यति = द्रृत्तरति, सृज् + तुम् = सृज् + तुम् =  
 सृज् + तुम् = सृप् + तुम् = सृष्टुम्, यज्—यष्टा, यत्तरति, यष्टुम्, यष्ट,  
 यष्टा, सन्—मार्जिता—मार्ष्टा; मार्जिष्यति—मार्त्तरति ( पाठ २०  
 वा क ) ।

इन रूपोंमें ज् को ष् हुआ है ( २० वा पाठ अ ) । तुम् विकारक

गुह्याय कृतनिश्चयोऽयं दृश्यते दुरात्मा । तद्यदि कदाचित् तीरथ  
 गृह्णाम्या स्वामिन प्रहरिष्यति तन्महानर्थं सपत्स्यते ।  
 न ज्ञायते किमद्य वडवांसिना विहङ्गमाना संक्षयो भविष्यति ना वा  
 मया सह सुभाषितगोष्ठीमुखमनुभवन् सुखेन कालं नेष्यति । न लप्स्य  
 कृते विन्ता कार्या ।

ब्रह्मचर्यं समाप्य गृहो भवेद्गृहो भूत्वा वनो भवेद्गृहो भूत्वा प्रव्रजेत्  
 यदि वेतरथा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेद्गृहं गृहाद्वा वनाद्वा । यदहरव  
 रजंत्तदहरेव प्रव्रजेत् ।

विज्ञानार्थं गुहमेवाभिगच्छेत् समित्पाणि श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठम् ।  
 वादे वादे ज्ञायते तत्त्वबोधः ।

गतानुगतिको लोको न लोकं पारमार्थिकं ।

प्राशा बलवती राजन् शल्यो लेप्यति पाण्डवान् ।

भयूरो बहिष्णो बर्ही नीलकण्ठो भुजङ्गमुक् ।

केका वाणी भयूरस्य समो चन्द्रकमेचकौ ॥—इत्यमरः ।

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् ।

द्विचतु पादयोर्ह्रस्व सप्तम दीर्घमन्ययो ॥

मन्मना भव मङ्गलतो मद्याजौ मा नमस्फुर ।

मासेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादात्सयाचुरत ।

स्थितोऽस्मि गतसदेह करिष्ये वचनं तव ॥

‘त्वया सह निवत्सयामि वनेषु मधुगन्धिषु ।

इति हा’रमतेवासो रनेष्टस्तस्या स तादृश ॥

जप्तो तु वयस्वमुदीरित जगो ।

१ । “मे वनीमं गुहारि (राम) साथ सैर करुगी” — इस विचारसे सीता  
 हीती थी, उसका (रामपर) मेस वैसा ही था ।

( वृद्धम् ) न — सौग  
 ( लोक ) पु — अनुष्टुभ् इन्द  
 ( सप्तय ) पु — नाश  
 ( सन्देह ) पु — सशय  
 ( सुभाषितम् ) न —  
 मधुरवाणी

सुवृष्टि ( स्त्री ) — अच्छी वृष्टि  
 सेतु ( पु ) — पुल  
 सुताम्रपर्णी स्त्री ( सुश्रव्य  
 अच्छी + ताम्रपर्णी स्त्री ) —  
 सुन्दर ताम्रपर्णी नदी

विशेषण ।

कारणद्वेषण ( बहु०, न कारण  
 यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा  
 अकारणम् ( श्रव्य० स० ) अकारण  
 द्वेष अकारणद्वेष ( कर्म० ),  
 अकारणद्वेष पर प्रधान वस्तु  
 यस्य स ) — बिना किसी  
 कारणसे दूसरोसे साथ द्वेष  
 करनमें लगा हुआ

सख्य — श्रगल्य

गौरत ( उद् + ईर् + त ) —

उक्त, कथा गथा

सम्पूर्ण, सत्र

तानुगतिक ( बहु०, गत — गम् +  
 त + अनुगति — स्त्री अनुगमन  
 + क — एक प्रत्यय ) — देखा  
 वगैरे चलनेवाला

सौख्य — सौख्य

योग्य ( ह्ये + य ) — ध्यान करने योग्य

पारमार्थिक — यथाथमार्गसे चलनेवाला  
 ब्रह्मनिष्ठ ( बहु०, ब्रह्मन् — न पर-  
 ब्रह्म + निष्ठा — स्त्री भक्ति ) —  
 ब्रह्ममें लीन

मद्याजिन् ( तत्पु०, मत् + याजिन् )  
 — दृमको पूजनेवाला

मधुगन्धि — मद्यसे समान गन्धसे  
 युक्त, अथवा यह मधुगन्धिन्  
 शब्द है — मधुन गन्ध मधु-  
 गन्ध, स एवामस्तीति मधु-  
 गन्धानि वनानि — मकरन्दको  
 सुगन्धसे सुगन्धित

रामेश्वराख्य ( बहु०, रामेश्वर — पु  
 + आख्या — स्त्री नाम ) —  
 रामेश्वरनामक

वटवासिन् ( वट-पु वृटवृत्त +  
 वासिन् ) — वटके वृक्षपर  
 रहनेवाला

वध्य—मारने योग्य  
 श्रोत्रिय—वैदिक  
 समर्पित ( सम् + ऋ—प्रे + त )—  
 —रखा हुआ  
 समित्पाणि ( व्यधि० बहु०, समिध्—  
 —खी यज्ञकाष्ठ + पाणि—पु

हाय )—हाथमें यज्ञकाष्ठ लिए  
 हुआ  
 सुनिष्पन्न ( सु श्रव्य अच्ची तरह +  
 निष्पन्न—निस् + पद् + त )  
 अच्ची तरह भया हुआ

धातु ।

अनु + भू ( अनुभवति भ्वा पर )—  
 अनुभव करना , भोगना  
 परि + तुष् ( परितुष्यति-दि पर )  
 प्रेर—प्रसन्न करना  
 प्र + कृ ( प्रकुप्यति दि पर )—  
 आ त्त क्रुपित होना  
 प्रति + ज्ञा [ ज्ञा ] ( प्रतिज्ञानाति-ते-  
 क्रम उभ )—प्रतिज्ञा करना  
 प्र + व्रज् ( प्रव्रजति स्वा पर )—

संसारका त्याग करना , स्वयं  
 लेना  
 वि + आ + पद् ( व्यापद्यते ति  
 आत्म ) प्रे—मारना  
 वि + रज्ज् ( विरजति ते, विरजयति  
 भ्वा उभ, दि उभ )—संसार  
 घृणा करना , वैराग्य करना  
 सम् + पद् ( सम्पद्यते दि आ )—  
 होना

श्रव्यय ।

प्रालोड्य— ( प्रा + लुड्—भ्वा पर  
 प्रे गय्य भूत कृ )—सयकर,  
 खूब चिन्तार कर  
 इत्थं—इस प्रकार  
 इत्थं—इस प्रकार  
 चतुश्च— ( चत् + श्चिश् श्रव्य भू कृ )  
 चारकर

निवध्य—( नि + बन्ध्—श्रव्य  
 कृ )—रचकर, बनाकर  
 नियतम्—अवश्य  
 नो—नही  
 विज्ञानार्थम् ( चतु० तत्पु०, क्रियावि  
 विज्ञान न + अर्थ )—ज्ञानसे ति  
 सत्यम्—सच  
 दृ—निश्चय

पाठ ३६ ।

परोक्षभूत वा लिट् ।

दुदोह गा स यज्ञाय मध्याय मघवा दिवसु—उस ( रघु ) ने यज्ञके  
ये पृथ्वीको दुधा ( प्रनाश्रोसे कर लिया ), ( और ) इंद्रने स्वर्गको  
हा (अन्नके लिये दृष्टि की ) ।

मघजन्—पु

मघवानम्

मघवानौ

मघोन्

मघोनि

मघोनो

मघवसु

मघवन्

मघवानौ

मघवान

मघोन्—मघवन् का भ अङ्ग है ।

शिवधनुर्नामयित्वा राम भौता परिणिनाय—शिवको धनुको तोड़कर  
मने सीताको विवाह किया ।

म राना सुगया कर्तु वन जगाम—वह राना शिकार करनेके लिये  
को गया ।

सेनयोस्तुमुल युद्ध बभूव—दोनों सेनाओंमें घोर युद्ध हुआ ।

तत् त्रिपाशसाभ्यां वैश्वमेक ददश स—वह द्वाहणके आश्रमके  
भीष उसने एक बनिषेको देया ।

उपविष्टौ कया काश्चिच्चक्रतुर्वैश्वपार्थिवौ—वैश्व और राधा जे  
ये, अनक प्रकारकी बातें करने लगे ।

बहु जगद् पुरस्तात्तया मत्ता किताहम्—भेते उमको नामने बहुत  
कों, निशय मैं मत्त थी ।

कन १ स्र्वेष्वगिको ववाधे तस्मिन् वन गोसरि गारुड—  
राने वनमें प्रवेश किया, प्राणियोंमें बली दुर्जलको नहीं सकता ।



इस पाठमें परोक्षभूतका वर्णन किया गया है । संस्कृतमें तीन भूतकालिक लकार है । पहिले उनको अर्थमें भेद था, पर उससे बादके साहित्यमें विना भेदके उनका प्रयोग किया गया है ।

पहिले परोक्षभूतसे दूरकी भूतकालिक क्रियाका बोध होता था । संस्कृत साहित्यमें इसका बहुते प्रयोग आता है । उत्तम पुरुषसे मालूम होता है कि वक्ता वेदोश था । जैसे—बहु जगद पुरस्तात्तस्य मत्तकिलाहम् ।

## परोक्षभूत ।

## गङ्—पर

## विश्र—पर

प्र पु	जगाद	जगदतु	जगदु	विवेश	विविशतु	विविशु
म पु	जगदिय	जगदयु	जगद	विवेशिय	विविशयु	विविश
उ पु	जगद	जगाद	जगदिय	जगदिम	विवेश	विविशिय

## मुङ्—आत्म ।

## वृध्—आत्म ।

प्र पु	मुमुदे	मुमुदाते	मुमुदिरे	ववृधे	ववृधाते	ववृधिरे
म पु	मुमुदिषे	मुमुदाये	मुमुदिध्वे	ववृधिषे	ववृधाये	ववृधिध्वे
उ पु	मुमुदे	मुमुदिवहे	मुमुदिमहे	ववृधे	ववृधियहे	ववृधिमहे

## नु—पर ।

प्र पु	नुनात्	नुनुवतु	नुनुवृ
म पु	नुनविय	नुनुवयुः	नुनुव
उ पु	नुनव—नाव	नुनुविव	नुनुमिम

इन रूपोंसे यह मालूम पड़ेगा कि

१ । परोक्षभूतमें धातुओंको द्वित्व होता है । द्वित्वको नियम ३० वे पाठमें दिये गये हैं ।

३। परोक्षभूतकी प्रत्यय ये छे —

	पर ।				आत्म ।	
पु	अ	अतुम्	उस्	ए	आते	इरे
पु	य	अयुस्	अ	से	आये	इये
पु	अ	व	म	ए	वहे	महे

३। इन प्रत्ययोंमें व, म, य, और वहे, महे, से, तथा घ्य में इ आगम हो सकता है ( ३५ वा पाठ देखो ) ।

४। विशेष, विविशिव, इत्यादि—परस्मैपदके एकवचन विकारक , द्विवचन, बहुवचन तथा आत्मनेपदके सब प्रत्यय अविकारक है ।

५। विशेष, जगद-जगाद, नुनव नुनाव—विकारक प्रत्यय आगे रहनेपर अन्तिम स्वर तथा उपान्तर् द्रस्व स्वरको गुण आदेश होता है, प्र ए व में अन्तिम स्वर तथा उपान्तर् अ को नित्य वृद्धि होती है, आर उ पु ए व में विकल्पसे होती है ।

६। मुनुविव इत्यादि—अजादि अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर आनुके अन्तिम उ को उव् होता है ।

कृ—उम पर ।

आत्म ।

पु	चकार	चक्रतु	चक्रु	चक्रे	चक्राते	चक्रिरे
पु	चकार्य	चक्रयु	चक्र	चक्रुषे	चक्रायें	चक्रुर्हे
पु	चकर कार	चक्रुज	चक्रुम	चक्रे	चक्रुवहे	चक्रुमहे

शु—पर ।

ए—पर ।

पु	शुग्राज	शुशुवतु	शुशुवु	समार	समृतु	सचु
पु	शुशोय	शुशुवयु	शुशुव	ससर्ग	समृयु	समृ
पु	शुशव याव	शुशुव	शुशुम	ससर सार	मस्य	मसृभ

इन रूपोंमें मालूम होगा कि इनमें इ आगम नहीं होता ।

## नियम —

७। कृ, छ, भृ, ष्ट, क्षु, द्रु, क्षु, तथा शु धातुके परोक्षभूतमें आगम नहीं होता ।

८। चकृद्ध—श्र वा आ के सिवा कोई मूलज स्वर पूव होनेपर च को नित्य ढ़ होता है ।

क्री—पर ।

आत्म ।

प्र पु	चिक्राथ	चिक्रियतु	चिक्रियु	चिक्रिये	चिक्रियाते	चिक्रियरे
म पु	चिक्रीय-	चिक्रियथु	चिक्रिय	चिक्रियिषे	चिक्रियाधे	चिक्रियिषे
	चिक्रियिष					

च पु	चिक्रय-क्राय	चिक्रियिव	चिक्रियिम	चिक्रिये	चिक्रियिवहे	चिक्रियिम
------	--------------	-----------	-----------	----------	-------------	-----------

प्रच्छ—पर ।

त्यज्—पर ।

प्र पु	पप्रच्छ	पप्रच्छतु	पप्रच्छ	तत्याज	तत्यजतु	तत्यजु
म पु	पप्रच्छिय-	पप्रच्छयु	पप्रच्छ	तत्यजिष-	तत्यजयु	तत्यज
	पप्रयु			तत्यिष्य		
च पु	पप्रच्छ	पप्रच्छिव	पप्रच्छिम	तत्यज त्याज	तत्यजिव	तत्यजि

शृ—आत्म ।

हृ—पर ।

प्र पु	समार	सम्रतु	सम्रु	जहार	जह्रतु	जह्रु
म पु	समर्य	सम्रथु	सम्र	जह्र्य	जह्रथु	जह्र
च पु	समरमार	सम्रिव	सम्रिम	जहर-हार	जह्रिव	जह्रिम

## नियम —

९। तत्यजिव, सम्रिम, पप्रच्छिम, चिक्रियिषे, चकृव, सखम, हुद्, ह्र्यादि—कृ, छ, भृ, वृ क्ष, द्रु, क्षु, तथा शु को छोडकर और सब धातुके श्र वा आ के सिवा सब प्रत्ययोंके पूर्व इ आगम होता है ।

यहो नियम अनिट् धातुश्रीके लिये भी है ।

१० । ममर्घ, जहर्घ—ऋकारान्त अनिट् धातुश्रीमें घ को पूर्व इ म नही होता ।

११ । तत्प्रजिय—तत्प्रकथ—पप्रच्छिय—पप्रष्टु, चिक्रियिथ—चिक्रियिथ अजन्त वा अकारवान् अनिट् धातुश्रीमें घ को पूर्व त्रिकरपसे इ आगम ता है ।

१२ । विक्रियिथु, निन्थु, इत्यादि—अज्ञादि अविकार प्रत्यय आगे मपर धातुको अन्तिम इ वा इ फो इय् होता है, यदि उसको पूर्व काक्षर हो । यदि उसको पूर्व सयुक्ताक्षर न हो, तो य् होता है ।

१३ । ममार इत्यादि—ऋ धातु परोक्षभूतमें परस्मैण्णी है । यह भी भविष्यत् लकारों तथा क्रियातिपत्ति में भी पर है ( पाठ ३५, अम ७ देखो ) ।

१४ । चिक्रियिध्व—ङ्—लव ध्व को इ होता है और उस इ को य्, र, ल्, व, वा ङ् होता है, तो उसको विकल्प से ङ् होता है ।

भू—पर ।

जि—पर ।

पु	बभूव	बभूवतु	बभूवु	जिगाय	जिग्यतु	जिग्यु
पु	उभूजिय	उभूवथु	उभूव	जिगयिय-गेथ	जिग्ययु	जिग्य
पु	उभूव	उभूविव	उभूविस	जिगाय गाय	जिग्यिव	जिग्यिस

हि—पर ।

चि—उभ ।

निघाय—इत्यादि । चिवाय—काय इत्यादि । चिद्ये चिकी इत्यादि ।

१५ । भू को रूप बभूव् प्रकृतिसे बनते है ।

१६ । परोक्षभूतमें जि धातुको ज् को गु, हि को ङ् को घ्, तथा चि ङ् को विकल्पसे क् होता है ।

पा—पर ।

ह्रौ—पर ।

प्र पु	पपौ	पपतु	पपु	मस्रौ	मस्रतु	मस्रु
म पु	पपिच-	पपयु	पप	मस्रिय-	मस्रयु	मस्र
	पपाथ			मस्राथ		
उ पु	पपौ	पपिव	पपिम	मस्रौ	मस्रिव	मस्रिम

ञा—जन्तौ , ग्ले—जग्लौ ।

नियम —

१७। आकारान्त धातुश्रीमें प्र पु तथा उ पु के ए व का प्रत्यय श्रौ है । अजादि अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर, तथा इ आगम कर य आगे रहनेपर इस आ का लोप होता है ।

१८। ग्ले—ग्लाता, ग्लास्यति, जग्लौ—ए, ऐ, ओ, तथा श्रौकार धातुश्रीको सब आर्धधातुक लकारोंमें आकारान्त समझना चाहिये ।

गम्—पर ।

ह्रन्—पर ।

प्र पु	जगाम	जगमतु	जगमु	जघान	जघ्नतु	जघ्नु
म पु	जगमिच-	जगमयु	जगम	जघनिय-	जघ्नयु	जघ्न
	जगन्थ			जघन्थ		

उ पु	जगाम	गाम	जगिमव	जगिमम	जघा-घान	जघ्निव	जघ्निम
------	------	-----	-------	-------	---------	--------	--------

घस्—जघाम जत्तु जत्तु , खन्—चखान चखन्तु चखन्तु ,

जन्—जच् जज्ञाते जन्निरे , अट्—आद जघाम, आदिय—जघमि

नियम —

१९। आद—जघाम—परोक्षभूतमें अट् को विकल्पसे घस् होता तथा य को पूर्व अट् तथा ऋ को नित्य इ होता है ।

२०। जगमतु, जघ्नतु—अजादि अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर गम्, ह्रन्, जन्, खन्, तथा घम् के उपान्त्य आ का लोप होता है , अ

प होने पर घ् को र् को घ् होता है, और घम् को (घस्—कस्—  
) घ्, तथा लन् को (लन्—ज्ज्) ज् होता है ।

२१ । घस् धातु अङ्गको परोक्षभूतमें लोनेवाला एक आदेश है । इस  
अङ्ग इसके परोक्षभूतमें रूप नहीं होते ।

पुरा किल समस्ती त्तिमिच्छते सुरथो नाम राजा बभूव । श्रीरसान्  
मुनिश्च प्रजा सम्यक् पालयतस्तस्य केचिद् भूपा शत्रुवो बभूवुः । ते  
ह्यतिप्रजस्य तस्य युद्धं बभूव । शूनैरपि तैर्युद्धं स जिग्ये । ततः स स्वपुर-  
यातो निजदेशाधिपोऽभवत् । तत्रापि स प्रजलारिभिराक्रान्तः । दुर्बलस्य  
स्य कोशो बलं च सर्वं स्वपुरेऽपि दुरात्मभिर्बलिभिररिभिरपलङ्घ्यं । ततो  
तस्वाम्यः स भूपतिर्मुग्धाध्याजैर्न ह्यमारुद्यैकाकी गहनं धनं जगाम ।  
तु च कश्चिच्च द्विजवर्यसराश्रमपदं ददर्श । तेन मुनिना सत्कृतस्तस्मिन्ना-  
मे स कश्चित् कालं तस्यौ समत्वाकृष्टचेतनं सन्नचिन्तयच्च । यत् पुर-  
तपूर्वं पूर्वं पालितं तदधुना मया हीनम् । न जाने मद्गतैरसद्वृत्तैर्धर्मत-  
न्वितैर्नो वा । धनभोजनैरित्य प्रसादिता मदनुयायिनोऽद्यान्ममहीभृता  
ति कुर्वन्ति । अतिदुःखेन सचित्तं कोशस्तोषामसद्वर्यैः तय गमिष्यतीति ।

जया वसन्ततिलका तभजा जगौ ग ।

रात्रिगमिष्यति भविष्यति सुप्रभात

भास्वानुदेष्यति दृषिष्यति पङ्कजश्री ।

इत्येव चिन्तयति कोशगते द्विरेफे

दा हन्त हन्त नलिनीं गत उन्मुमूल ॥

न तज्जल यन्न सुचारुपङ्कज

न पङ्कज तद्यदलौनपट्टपदम् ।

न पट्टपट्टोऽसौ न जगुञ्ज य कल

न गुञ्जित तन्न जहार यमन ॥

एको हि दोषो गुण संनिपाते  
 निमज्जतीन्दोरिति यो वभाषे ।  
 नून न दृष्ट कविनापि तेन  
 दारिद्र्यदोषो गुणराशिनाशौ ॥  
 वासानि लीर्णानि यथा विद्याय  
 नद्यानि शृङ्गाति नरोऽपराधि ।  
 तथा शरीराणि विद्याय जीर्णानि —  
 नान्यानि मयाति नवानि देही ॥

जिस प्रकार पिता अपने लड़कोंका हितचिन्तन करता है उसी प्रकार राजाको हृदयसे प्रजाका हितचिन्तन करना चाहिये ।

उस प्रचण्ड पवनने, जो कभी किसोने पहिले सुना नहीं था, वायु सब पेड़ोंको जड़से उखाड़ दिया ।

पाण्डव तथा कौरवोंमें अठारह दिन तक घोर युद्ध हुआ । अन्तमें कौरव हारे ।

एक बार राजा दुष्यन्त शिकारके लिये वनमें गया । उसने कण्वमुनि आश्रममें प्रवेश किया । उस आश्रमके एक वसीचेमें उसने दो सखियों साथ पेड़ोंको सींचती हुई शकुन्तलाको देखा । उन दोनोंमें परस्पर हुआ और उसने शकुन्तलासे गान्धर्व विवाह किया ।

सन्नाशब्द ।

अभ्यास ( पु )—सामौष		चित्तिमण्डल न ( चित्ति—स्त्री
असहय ( असहय ) ( पु कर्म०,		पृथ्वी )—भूमण्डल
असत्—असत् + व्यय—पु खर्च)		गो ( स्तो )—पृथ्वी
—अयोग्य खर्च [२ कतो		चेतन ( चेतन ) पु —मन
कोश ( कोश ) पु —१ खजाना ,		दारिद्र्यदोष (दारिद्र्यदोष) पु क

द्वारिद्र्य—न निर्धनता +  
 श्लेष पु )—निर्धनताका दोष  
 इन् ( पु )—आत्मा  
 इन् ( न )—धनु  
 ननौ ( स्त्री ) कमलकी लता  
 स्रत् ( पु )—सूर्य  
 इवन् ( पु )—इन्द्र  
 इव ( समत्वम् ) न—ममता  
 इमिन् ( पु )—राजा  
 इयाव्यान् पु ( इयाया—स्त्री +  
 इयाव्—पु )—शिकारका वधना

वसन्ततिलका-क ( स्त्री, न )—एक  
 कृदका नाम  
 वासम् ( न )—वस्त्र  
 विप्र ( विप्र ) पु—ब्राह्मण  
 वृत्ति ( स्त्री )—जीविका  
 षट्पद ( षट्पद ) पु—धमर  
 सनिपात ( सनिपात ) पु—समूह  
 सस्य ( सस्यम् ) न—शत्रु  
 सुरय (सुरय ) पु—एक राजाका नाम  
 स्वाम्य ( स्वाम्यम् ) न—मालक्रियत,  
 प्रभुता

विशेषण ।

अपत्रल—बहुत बली  
 आपिन्—अनुगामी  
 इत्त ( बहु० )—दुस्वरित्  
 इत् ( आ + कृत् + त )—  
 पीचा गया  
 इन्त ( आ + कृत् + त )—  
 —आक्रमण किया गया  
 इत् ( उप + प्रिञ् + त )—  
 बैठा हुआ  
 इवल  
 इ ( उरस - १ से )—स्वय  
 इपना

कल—अम्पट्ट मधुर  
 गहन—घना  
 गुणराशिनाशिन—गुणके समुदाय  
 को नष्ट करनेवाला  
 गोप्त—रक्षक  
 जीण ( जू—इ पर—जीर्यति—का  
 मू कृ )—गला हुआ  
 हुमुल—घोर  
 द्विजवर्य—द्विजोंमें श्रेष्ठ  
 निज—अपना  
 न्यून—दुर्बल



प्रसादित ( प्र + सद् - प्रे + त )

—प्रसन्न किया गया

सञ्चित—( सम् + चि + त ) एकट्ठा

किया गया

सत्कृत—जिसका सत्कार किया गया

समस्त—सब

सुचास ( प्राश्न०, सुष्ठु, चास )

अतिसुन्दर

हीन ( हा—छोड़ना, +त )—

शून्य

### धातु ।

अप + हृ ( अपहरति—भ्वा पर )—

हरना, ले जाना

उद् + मूल ( उद्मूलति—भ्वा पर )—

उखाडना

गद् ( गदति भ्वा पर )—बोलना

गाह् ( गाहते—भ्वा आ )—प्रवेश

करना

गुञ्ज् ( गुञ्जति भ्वा पर )—गूजना

नि + मञ्ज् [ मञ्ज् ] ( निमञ्जति—

तु पर )—ढूँढना

परि + नी [ णी ] ( परिणयति भ्वा

पर )—विवाह करना

पालय ( पा-अ पर प्रे )—रक्षण कर

वाध् ( वाधते—भ्वा पर )—

दु ख देना, सताना

सम् + या ( समाति—अ पर )—

प्रवेश करना

हम् ( हसति—भ्वा पर )—हस

### श्रवण ।

किल—निश्चयसे, लोग ऐसा

कहते है

नामयित्वा ( नम्-प्रै श्रव्य

भू कृ ) भुकाकर

नृनम्—निश्चयसे

पुरा—पूर्वकालमें

पूर्वम्—पहिले

पाठ ३७ ।

परोक्षभूत ।

जनको हि 'वैदेहो, बहुदक्षिणेन यज्ञेन ईजे ( यन्नेजे )—निश्चयसे विशेहके राजा जनकोने यज्ञ किया, जिसमें बहुत दक्षिणा दी गयी थी ।

ते कपौन्द्रा मन्यु रोद्धु न शेकु, — वे उत्तम कवि क्रोधको न रोक सके ।

तयोस्तुमुल युद्ध समापेदे — उन दोनोंमें घोर युद्ध हुआ ।

निश्चय देवानुचरम्य वाच मनुष्यदेव पुनरप्युवाच — देव ( शिव ) को विश्वकर्मा वात सुनकर मनुष्योंके स्वामी ( राजा ) ने फिर कहा ।

त्रिश्रामितृमागत प्रेत्य वसिष्ठु स्वागत व्याजहार — त्रिश्रामितृको प्राये हुए देख वसिष्ठुने स्वागत वचन कहा ।

परोक्षभूत ।

पच्—पर ।

प्र पु	पपाच	पेचतु	पेचु
म पु	पेचिय पपचथ	पेचगु	पेच
उ पु	पपच पाच	पेचिव	पेचिम

शक्—पा ।

प्र पु	शशाक	शेकतु	शेकु
म पु	शेकिय शशकथ	शेकथु	शेक
उ पु	शशक-शाक	शेकिउ	शेकिम

तृ—पर ।

धम्—पर ।

प्र पु	तत्तार	तेरतु	तेर	वधाम	वधमतु-धमगु	वधसु	धेतु
--------	--------	-------	-----	------	------------	------	------

भज्—पर ।

राज्—पर ।

प्र पु	प्रभाज	भेजतु	भेजु	गराज	गराजतु-रेजतु	गराज्-रेजु
--------	--------	-------	------	------	--------------	------------

तृप्—आत्म ।

वष्—पर ।

म पु त्रिपिण्डे-त्रिपिण्डे त्रिपापे त्रिपिण्डे-त्रि-ध्वे म पु ववाम ववमत्तु वः

भञ्जु—पर ।

५ पु = इ वभञ्जतु वभञ्जु

नियम —

१ । पेचतु, वभञ्जतु, चकन्दतु, पेचिथ—यदि किसी धातुमें दा-  
द्वे 'व' प्र हो और उसके प्रथम व्यञ्जनमें द्वित्व होनेपर कोई  
अक्षर चलाता हो, तो अभ्यासका लोप होता है और अविष्कारक  
प्रत्यय ' ' के सहित य आगे रहने पर अ को ए होता है ।

इत्तु, भञ्जयु, फेलिव, त्रेपे, वधमिव संमिव—तृ, फल्, भञ्ज-  
चप इ दिन यह एत्व तथा अभ्यासलोप नियम, तथा भस्, तृप्-  
राज्, झाल् इत्यादिमें विकल्पसे होता है ।

३ । ववमत्तु—वकारादि धातुओंमें यह परिवर्तन नहीं होता ।

स्मृ—पर ।

ऋ—पर ।

प्र पु सस्मार सस्मारतु सस्मरु म पु आरिथ आरयु आर

ऋ—पर ।

प्र पु चकार चकारतु चकस

४ । सस्मारतु, चकारतु, आरतु, जजागरतु—चकारान्त धातु, जिन  
पूर्व ध्युक्तात्तर ही, ऋकारान्त धातु, ऋ, तथा जायु धातुओं परीक्षमूत  
अविष्कारक प्रत्यय आगे रहनेपर भी गुण आदेश होता है ।

यज्—पर ।

वह्—पर ।

प्र पु इयाज	इंनतु	इंजु	उवाह	ऊहतु	ऊहु
म पु इयजिथ-इयपु	इंनयु	इंज	उवहिय उवोठ	ऊहयु	ऊह
उ पु इयाज	इंजिव	इजिम	उवह-वाह	ऊहिय	ऊहिम

यञ् + थ = इ अयञ् + थ = इयञ् + थ = इयप् + थ ( २८ वा पाठ, ) = इयप् + ठ = इयष्टु ।

यञ् + अयु — इञ् + अयु — इइञ् + अयु = इजयु ।

ग्रह्—पर ।

वस्—पर ।

पु जग्राह जगृहत् जगृहु चवाम ऊणु जयु

वव्—पर ।

वच्—कर्मि ।

पु सवाच ऊचतु ऊचु ऊचे ऊवात् ऊचि

५। यञ्, वट्, वप्, वङ्, व्यध्, वव्, वस् ( ५३ ), गन् स्तप्, तथा और कृक धातुओंके परोक्षभूतमें अभ्यासको सप्रसारण जाता है । अधिकारक प्रत्यय आगे रहनेपर धातुओंको द्वित्व होनेको पूर्व सप्रसारण होता है ।

इष्—पर ।

इ—पर ।

प्र पु इषेय इंषतु इंषु इयाय इंषतु इंषु  
म पु इषेपिष इंषयै इंष इयपिष-इषेय इया् इष

स्वप्—पर ।

सि—आत्म ।

२ पु सुष्वाप सुषुपतु सुषुपु सिष्विये सिष्वियान् ।मसिष्विये

( अ ) इष् + इय = इइष् + इय = इ एष् + इय = इय् + एष् + इय = इषेपिष ।

इइ + अ = इ ऐ + अ = इ आय् + अ = इय् + आय् + अ = इयाय ।

( ब ) इइ + अतु = इय् + अतु = इंप् + अतु = इंषतु ।

( क ) स्वप् + अ = सु अ स्वाप् + अ = सु स्वाप् + अ = सुष्वाप् + अ = सुष्वाप ।

सि + ए = सिस्सि ए = सिष्वि + ए = सिष्विय् + ए = सिष्विये ।

६। ( अ ) इयेष, उवोख, इयाय—असवर्ण अच् आगे ॥  
अभ्यासके इ वा उ को इय् वा उव् होता है ।

( ब ) ईयतु—अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर धातुके इ को य  
अभ्यासके इ को दीर्घ होता है ।

( क ) सुध्वाप, सिन्धिये—ध्वप् तथा सिन्धि के स् को ष् होता है  
श्वि—भवा पर का शिष्यय-श्वाय, शुश्रव—श्राव, शिष्ययिष—शु  
( क्योंकि यह धातु सेट् है ), ह्—हु—जुहु—जुह्व—हाव—

७। शि को परोक्षभूतके रूप विकल्पसे शु से बनते है, आ  
नित्य हु से बनते है ।

अर्त्—पर ।

अर्त्—पर ।

म पु आनर्त् आनर्त्तु आनर्त्तु आनर्त् आनर्त्तु  
अश्—स्वा आत्म म पु—आनशिषे-आनक्षे आनशाथे अ  
आनङ्ठे ।

नियम —

८। अकारादि धातुओंमें, जिनमें सयुक्ताक्षर हो, अभ्यासके  
आ होता और उसके बाद न् आगम होता है । अश्—स्वा में  
वेट् है, यह नियम लगता है ।

( अ ) ईश—म पु ये व—ईशाचके ईशाम्बभूव—ईश  
उन्द—उन्दाचकार—वभूव—आस ।

( ब ) दय्—दयाचके—वभूव—आस, अय्—अयाचके—  
आस, आस्—आषाचके, विद्—विवेद,—विदाचकार, जासु—  
—जागराचकार, भौ—विभाष—विभयाचकार, भु—वभार—  
चकार, ह्री—जिह्वाय—जिह्वाचकार, हु—जुहाव—जुह्वाचका

( क ) चुर—चोरयाचकार—वभूव—आस, कृ—प्रि—का  
चकार—वभूव—आस ।

नियम —

६। (अ) — अ वा आ को छोड़कर अजादि धातुओंमें, जिनका अच् दीर्घ हो वा ह्रस्व होकर उसको पूर्व कोइ सयुक्तात्तर हो, वाद आम् लगाकर कृ, भू, वा अस्, धातुको परोक्षभूतका रूप जोड़ने-तेक्षभूतको रूप बनते है ।

(आ) इय्, अय्, तथा आस् को परोक्षभूतको रूप भी इसी प्रकार है, विद्—ग्र पर, जास्, भी, द्नी, भू, तथा हु में आम् इत्यादि लगे होते है । जब ये होते है तब सार्वधातुक लकारोंकी तरह तो हित्व होता है । आम् विकारक प्रत्यय है, वह आगे रहनेपर ग्र पर कोइ को गुण नहीं होता ।

(इ) चुरादिगणको धातु, प्रेरणार्थक तथा इतर मूलज धातुओंको भूतमें इसी प्रकार रूप बनते है ।

(ई) यदि धातु आत्म हो तो कृ को भी आत्मनेपदको रूप इसको है, पर भू तथा अस् को पर को रूप लगते है ।

७। कर्मणि वा भावे—तत्पत्ने, बभूवे—कर्मणि वा भावे प्रयोगको रूप नेपद प्रत्यय लगाकर बनाये जाते है ।

मीहमानाना चाधीयानानां च केचिदर्थैर्बुजन्तिऽपरे न । तत्र किमस्माभि  
र्तुं शक्य स्वाभाविकमेतत् ।

ब्राह्मणानामनुचानतम स एषा वीर्यवत्तम ।

तत्रहु प्रिकल्पय । रान समत्तमेवावयोरधरोत्तरव्यक्तिभविष्यति ।

एषा पुत्रेषु फलाधारार्थं वन गतेषु नियतव्रता जमदग्निं स्त्री रेणुका  
काम । आगच्छन्ती यदृच्छया चितुरथं नाम नृपमृद्धिमन्त सभाय  
। दृष्ट्वा च तत्पुत्रमधिगन्तुमियेष । एतस्माद् दुष्टप्रचारात् सा  
ननुचुचुशे । आत्रस च तुक्ता प्रविशेत् । जमदग्निस्ता ब्राह्म्या तद्व्या

विवर्जिता धैर्याञ्चुरता दृष्टवान् । धिक्शब्देन च ता जगह ।  
 आनुपूर्व्याच्चतुर पुत्रान् मातरं हन्तुमादिदेश । ते तु मातृस्नेहाद्विभे-  
 न किञ्चिद् वभाषिरे । तस्मात् क्रोधाग्निस्ताञ् शशाप, पञ्चम  
 परशुराम च मातृजव कर्तुं शशास । मातर्यतौव क्षिप्रघोऽपि पापुषे  
 पितुराना शिरसि कृत्वाऽस्या शिर परशुना चिच्छेद । ततो जग-  
 प्रससादेत्यमुवाच च ।

ममेद वचनात्तात कृतं ते कर्म दुष्करम् ।  
 वृणीष्य कामान् धर्मज्ञ यावतो 'वाञ्छसे हृदा ॥  
 स वत्रे मातृमृत्यामस्मृति च वधस्य वै ।  
 पापेन तेन चाख्यं आतृणा प्रकृति तथा ॥  
 प्रप्रतिद्वन्दिता युद्धे दीर्घमायुश्च भारत ।  
 ददौ च सर्वान् कामास्तान् जगदग्निर्महातपा ॥

हा राम हा रमण हा जगदेकवीर

हा नाथ हा रघुपते किमुपेक्षसे माम् ।

इत्य विदेहतनया मुहुरालपन्ती—

मादाय राक्षसपतिर्नभसा जगाम ॥

मातुलमृदादागतस्य भरतस्य कैषेय्याश्च सत्रादोऽयम्—  
 मातस्तात क्व यात, सुरपति भवन, हा कुत, पुत्रशोकात्,  
 कोऽसौपुत्रश्चतुर्णां, त्वमवरजतया यस्य जात, क्रिमस्य ।  
 प्राप्सोऽसौ काननान्त, क्रिमिति, नृपगिरा, क्रि तथासौ वभाषे,  
 महारवद्दु, फल ते क्रिमिह, तत्र घराधीशता, हा हतोऽस्मि ।  
 यस्योदयेनेह जगत् प्रवृध्यते प्रवर्तते चाखिलकर्मसिद्धये ।  
 प्रह्लाद्विनारायणमृद्वन्वित स न सदा यच्छतु मङ्गल रवि ॥

111 वेद, छ वेदाङ्ग, सौमसा, नाय, पुराण, तथा धर्मशास्त्र ये चौदह  
तो शखायं है ।

112 का गमसे आठवें वष, चात्रियका ग्यारहवें, तथा वैश्यका बारहवें  
नयन ( यज्ञोपवीत ) करना चाहिये ।

113 नने रात्र्यसे पूछा कि वसिष्ठ और विश्वामित्रमें शत्रुता क्यों  
हुइ ।

114 शिशुका पुत्र गाधि नामका एक बडा राजा था । उसका विश्वामित्र  
अति प्रतापी पुत्र था । किसी समय विश्वामित्र श्रमयार्थ वन  
115 र वृषासे पीड़ित हो वसिष्ठको आश्रममें घुमा । वसिष्ठने उसका  
116 किया । विश्वामित्रने वसिष्ठसे उसकी कामदुघा गौ देनेको भिये  
117 को, पर वसिष्ठन उसे गौ न दी ।

118 शिशुका काम नहीं है । आओ, हम लोग लड़े, जिससे लोग समझ  
119 कि हम दोनोंमें अधिक बली कौन है ।

### सज्ञाशब्द ।

तरकृति ( स्त्री )—दोनोंमें  
120 रना सत्कृष्ट वा निकृष्ट  
121 नका स्पष्ट होना

122 दृग्गता—( स्त्री अ + प्रति-

123 दिन्—पु शत्रु + ता )—

124 श्रयणा जिसमें कोई शत्रु

125 ही

126 ता ( अथर सर्ज ० ब्राह्मण, )

127 यज्ञपु छोटा भाई )—छोटा

128 र्द्वेन

129 ( पु )—म्यशका शभाव

अरकृति ( स्त्री )—भूलना

अनुपूर्व्य ( आनुपूर्व्यम् ) न—काम,

रकृते वाद हृमरेका होना

उत्थान ( उत्थानम् ) न—उठना

कानन ( काननम् )—घन

चितुरय ( चितुरय ) पु—एक राजाका

नाम

जमदग्नि ( पु )—एक ऋषिका नाम

तात ( तात ) पु—वत्स, तडफे,

शिष्य इत्यादिके सम्बोधाने

प्रयोग किया जाता है



धराधीशता ( स्त्री )—पृथ्वीका  
 अधिपति होनेकी दशा  
 परशु ( पु )—फरसा, कुठार  
 परशुराम ( परशुराम ) पु —जमदग्नि-  
 का पुत्र जिसने पृथ्वीको २१ बार  
 क्षत्रियशून्य कर दिया  
 भारत ( भारत ) पु —भारतवर्षीय,  
 अर्जुन  
 मनु ( पु ) १. क्रोध, २. शोक  
 मातुल ( मातुल ) पु —मामा

मानस ( मानसम् ) ( न )—मन  
 रेणुका ( स्त्री )—जमदग्नि  
 वैदेह ( वैदेह ) पु —विदेहका  
 जनक  
 सुरपति ( पु )—देवोंका  
 इन्द्र  
 स्वागत ( स्वागतम् ) न ( प्रादि  
 सुष्ठु आगतम् )—स्वागत  
 हृद् ( न )—हृदय ( इसके प्रथम  
 रूप नहीं होते । )

## विशेषण ।

अखिल—सब

अधीयान ( अधि + इ + अ  
 आ का वर्त कृ )—पदता हुआ  
 अनुचानतम—गुरुसे साङ्ग वेद पढ़ने-  
 वालोंमें उत्तम ( अनु + वच् )

ईदमान ( ईच्—भा आ का वर्त  
 कृ )—चेष्टा करता हुआ

श्रद्धिमत्—समृद्ध

एक—अद्वितीय, अनुपम

एवविध ( बहु०, एव विधा यस्य स  
 एवविध, एवम् + विधा—  
 स्त्री प्रकार )—इस प्रकारका,  
 ऐसा

चुगत ( चु + त, स्त्री चुगता )

गिरा हुआ

तावत्—उतना

तृप्त ( तृष् + त, स्त्री तृप्ता )

डरा हुआ

धर्मज्ञ—धर्मको जाननेवाला

नियतव्रत ( बहु०, नियत—नि

यम् + त, व्रत-न—स्त्री

—जो नियमसे व्रत करता

ब्राह्म ( स्त्री ब्राह्मी )—पवित्र

ब्राह्मणसम्बन्धी

भविष्य—भविष्यत्

महातपम्—शिक्षका तप बड़ा

यावत्—जितना

विनाश करता हुआ,  
विनाशसे आनन्द देता हुआ  
तिष् ( उहु० )—उदास

विवर्णित ( वि + वृञ्—चु उभ,  
स्वी—ता )—रहित

धातु ।

प्र + ईत् ( अभिप्रेक्षते—  
भ्या आ )—देखना  
+ दिश् ( आदिशति—तु पर )  
—श्राप्ता करना  
+ इत् ( उपेक्षते—भ्या आ )  
—उपेक्षा करना  
प्र + खन ( उपजायते—दि आ )  
—उत्पन्न होता  
प्र + आ + सप् ( उपसर्पति—भ्या  
पर )—पहुचना, पास जाना  
+ ईत् ( गर्हित—भ्या आ )—निन्दा  
करना  
+ ( च्यते—भ्या आ )—  
गिरना

नि + शम् ( निशाम्यति—दि पर )  
—सुनना

प्र + बुध् ( प्रबोधति—भ्या पर )  
—जागना

वाञ्छ् ( वाञ्छति—भ्या पर )—  
—चाहना

वि + क्त्य ( विकृत्यते—भ्या आ )  
—सौटना, अपनी स्तुति करना

वि + आ + हृ ( आहरति—भ्या पर )  
—कटना

शप ( शपति ते भ्या उभ )—  
शाप देना ( कसम खानेको अर्थ-  
में चतुर्थी को साथ—शपे ते  
मनुजाधिप )

श्रव्यय ।

प्रत—श्रागे  
आचारार्थम्—(चतु० तत्पु०,  
फल—न + आचार—पु ) फल  
खानके लिये  
म्—बहुत  
म्—( यदृच्छा—स्वी को तु  
का र व )—अकम्भात्

वै—निश्चयसे, वाकालङ्कारमें प्रयोग  
क्रिया जाता है ।

समक्षम्—सामने, किसीकी उप-  
स्थितिमें ( श्रव्य श्रवण योग्यम्  
—वा समीपम् )

सुखम्—सुखसे

## पाठ ३८ ।

कुछ अनियत रूप ।

समाह्नो मध्याह्न सविता—सूर्य दिनको मध्य पर चढ़ा है—यह  
मध्याह्नकाल है ।

न्यायप्रवृत्तस्य तिर्यञ्चोऽपि सहायता यान्ति—पशु भी उसके सहायक  
होते हैं जो न्यायमार्गसे चलता है ।

सा यूनि तस्मिन्मिलिताग्रन्थ शशाक शालीनतया न वक्तुम्—यह  
लज्जावश उस युवाको विषयमें अपने प्रेमको न कह सकी ।

यस्यार्था स पुमान् लोके (पुमाञ्चोके)—जिसको पास धन है वह  
जगत् में पुसव (समझा जाता है) ।

परित सर्वत (ससार) व्यक्त्वा व्रजतीति परिव्राट्—वह जो मसार  
परित, चारों ओर से, अर्थात् सम्पूर्ण रूपसे छोड़कर चला जाता है वह  
परिव्राट् अर्थात् सयासी है ।

आशिय, प्रतिष्ठन्ताम्—आशीर्वाद लिये जाय ।

माला कारा पुष्पाणा सजीग्रन्थन्ति—माता लोग फूलोंकी माला  
गूयते है ।

भेका वर्षासु भवन्तीति वर्षाभ्र कथयन्ते—मेढ़क बरसातमें होते हैं  
इसलिये वर्षाभ्र (वर्षामें उत्पन्न होनेवाले) कहते हैं ।

सा खतु स्वयभुवोऽद्वितीया वृष्टि —वह छठी निश्चयसे ब्रह्माकी अपूर्ण  
वृष्टि है ।

जरसा द्विगुणीभूतमस्य शरीरम्—इसका शरीर बुढापेसे मानो दूना  
हो गया है ।

हे मघवन् अमुं तुरगं प्रतिभोक्तुमर्हन्तीति रघुस्तमवदत्—“हे इन्द्र  
इस अश्वको छोड़ना आपको उचित है” इस प्रकार रघुने उससे कहा ।

इस पाठमें अनियत रूप दिये गये हैं ।

जरा—स्त्री ।

जरा	जरे-जरसौ	जरस -जरा
जराया —जरस	जरयो —जरसौ	जराणाम्—जरसाम्

इसी प्रकार निर्जर शब्दके—निर्जरौ निर्जरसौ, निर्जरस्य-निजरस, यान्ति ।

१। अज्ञादि विभक्ति आगे रहनेपर जरा और निर्जर को विकल्पसे रश् तथा निजरस् आदेश होते हैं ।

सेनानी—पु, स्त्री ।

सेनानो	सेनायौ	सेनाय्य	प	सेनान्य	सेनानो	सेनान्याम्
सेनाय्यम्	,,	,,	स	सेनाय्याम्	,,	सेनानीपु

सुधी—पु । स्वयम्—पु ।

सुधी	सुधियौ	सुधिय	स्वयम्	स्वयमुधी	स्वयमुव
------	--------	-------	--------	----------	---------

वर्षाभू—पु । पुनर्भू—स्त्री ।

वर्षाभू	वर्षाभूः	वर्षाभूव	पुनर्भू	पुनर्भूः	पुनर्भूव
---------	----------	----------	---------	----------	----------

२। अज्ञादि प्रत्यय आगे रहनेपर धातुज शब्दोंके ईं वा ऊ को य् वा इय् तथा उव् आदेश करनेके नियम कठिन है । अधोलिखित वाते धानमें रखनी चाहिये' —

(अ) निय, भुव, नियाम्, भुवि—यदि धातुज शब्दके पूर्व कोई अन्तिम इ वा ऊ को इय् वा उव् होता है ।

(आ) प्रथ, उन्न ( यदा उन्नी मे मयुक्तात्तर है पर वद धातुका प्रथम है, उद् + नी ), यत्रक्रिय, दुर्घ ( दुष्ट घायतीति ), दुर्धिय ( दुःश धीर्यपीते )—यदि धातुके अन्तिम ईं वा ऊ के पूर्व धानका अन्तिम अक्षर हो और यदि तत्पुनश्च समाप्त हो, तो अन्तिम इ वा ऊ को इय् वा उव् होता है ,

बाधक—(इं) सुव, सुधिय —भू तथा सुधीके अन्तिम ऊ तथा इं का क्रमसे उव् तथा इय् होता है ।

प्रतिप्रसव—(उ) वर्णाश्वौ, पुनश्चो— परन्तु वर्णाम् तथा पुनश्चो अन्तिम ऊ को व् होता है ।

(क) नियाम्, सेनाभ्याम्, ग्रामण्याम्—नीशब्द, तथा सेनात् ग्रामणी इत्यादि नी में अन्त होनेवाले शब्दोंका सप्त ए व का रूप अन्त लगानेसे बनता है ।

(ख) प्रथम स्त्रिया, सुधिय-या स्त्रिया —जब अन्तिम ईं तथा ऊ को इय् तथा उव् होता है तो इकारान्त तथा ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दोंके रूप धी तथा भू के समान होते हैं, और जब अन्तिम ईं तथा ऊके प तथा व् होता है तो उनके रूप लट्मयी तथा वधूके समान होते हैं ।

(ग) ग्रामण्या, सेनाना ( ए, ए ए व )—ग्रामणी, सेनात् इत्यादि स्त्रीलिङ्ग शब्दोंके रूप, जो आरम्भमें पुरुषके व्यापारका बोध कराते हैं, पुल्लिङ्गके रूपोंके समान होते हैं ।

पुम्—पु ।

प्र	पुमान्	पुमासौ	पुमास	त्	पुसा	पुभ्याम्	पुमि
द्वि	पुमासम्	पुमासौ	पुम	स	पुमन्	पुमासौ	पुमास

३। सर्वनामस्थानको पूर्व पुम् के रूपोंपर ध्यान दो । यह शब्दोंके पुम् के स का लोप होता है ।

स्त्र—स्त्री ।

अप—स्त्री ।

प्र	स्त्रम्	स्त्रजो	स्त्रज	(यह केवल बहुवचनमें होता है)
स	स्त्रिणि	स्त्रजो	स्त्रज्	आप—अप—अद्भि—
				अद्भ्य—अद्भ्य, अपाम्—अप्सु

- ४। हलादि विभक्ति आगे रहनेपर सूत्र 'को ल को क्' छोटा है ।  
 ५। अप्, प्राण, अमु, चिकता, वर्धा, तथा समा—इन शब्दोंकी रूप  
 य बहुवचनमें होते है । इनमें अन्तये तीन शब्दोंके रूप एकवचनमें भी  
 भी २ प्रयोग किये जाते है ।

आप सुमनसो वर्धा अक्षरा चिकता समा ।

एते स्त्रियां ( स्त्रीलिङ्गमें ) बहुत्रे स्युरेकत्वेऽप्युत्तरतृयम् ॥

उशनस्—पु ।

- । उशना उशनसो उशनस म ए व उशन—उशन—उशनम्  
 ६। इस शब्दको प्रथमा तथा सम्बोधनको ए व को रूपके तरफ  
 न दो ।

प्राच्—पु ।

प्रत्यच्—पु ।

प्राङ्	प्राञ्चो	प्राञ्च	प्रत्यङ्	प्रत्यञ्चो	प्रत्यञ्च
प्राञ्चम्	”	प्राच	प्रत्यञ्चम्	”	प्रतीच
प्राचि	प्राचो	प्राचु	प्रतीचि	प्रतीचो	प्रत्यचु

तिपच्—पु ।

उदच्—न ।

तिपङ्	तिपञ्चो	तिर्यञ्च	उदक्	उदीची	उदञ्चि
तिर्यञ्चम्	”	तिरश्च	”	”	”
तिरश्चो	तिर्यग्भ्याम्	तिर्यग्भ्य	उदीचे	उदगम्याम्	उदगम्य

- ७। प्राच्, प्रत्यच्, उदच्, अश्वच्, तिर्यच् इत्यादि 'अच्' धातु (जाना)  
 विने हुए शब्दोंके सर्वनामस्थानमें अन्तिम वर्णको पूर्व न् लगता है ।  
 अङ्गमें अच् को अ का लोप तथा उसके पूर्व रहनेवाले स्वरको दीर्घ  
 मित्त है, अर्थात् उनकी प्रकृतिया प्राच . प्रतीच . उशनस् होती हैं ।

युवन्—पु ।

श्वन्—पु ।

प्र	युवा	युवानौ	युवान	श्ववा	श्ववानौ	श्वान
द्वि	युवानम्	,	यून	श्ववानम्	,	शुन
स	यूनि	यूनो	युवसु	शुनि	शुनो	श्वसु

८ युवन् का भ श्रद्ध पून् तथा श्वन्का शुन् है ।

परिव्राज्—पु ।

सम्राज्—पु ।

प्र	परिव्राट्-इ	परिव्राजा	परिव्राज	सम्राट्-इ	सम्राजौ	सम्राज
वृ	परिव्राजा	परिव्राड्भ्याम्	परिव्राड्भि	सम्राजा	सम्राड्भ्याम्	सम्राड्भि
स	परिव्राजि	परिव्राजा	परिव्राट्सु-इत्सु	सम्राजि	सम्राजो	सम्राट्सु इत्सु

९ । हलादि विभक्ति आगे रहने पर परिव्राज्को ज् को ट् वा इ होता है । ( २८ वा पाठ, ( अ ) । )

तियज्जोऽपि परिचयमनुसधन्ते ।

दुर्धिषो वृश्चिकभिय एते ।

आशीर्नमस्त्रिया वस्तुनिर्देशो वा मघाकाव्यस्य सुखम् ।

भो भो राजन् ! आश्रमसृगोऽय न हन्तव्यो न हन्तव्य ।

भो । प्रयासन्नेन चन्द्रोदयेन भवितव्य यतस्तिमिररिच्यमान

प्राचीमुपनालोकमुभग दृश्यते ।

सम्यगनुबोधितोऽस्मि । अस्मिन् क्षणे विस्मृत खट्वेतत् ।

चित्र चित्रमिदम् ! कथमेतद् विस्मृतोऽसि ।

वासन्ती—देव । अतिक्रान्ते धैर्यमवलम्ब्यताम् ।

राम —सपि, किमुचरते धैर्यमिन्त ?

देव्या शून्यस्य जगतो द्वादश परिवत्सर ।

प्रनष्टमिद्य नामापि न च रामो न जीवति ॥

स्त्री )—दृष्ट बुद्धि  
 श्रेयम् ) न — नीचता, दीनता  
 य ( धनत्रय ) पु — अर्जुन  
 या ( स्त्री ) — नमस्कार,  
 राम  
 यो ( स्त्री ) — नाभिक के पास  
 षकारखका एक भाग  
 य ( परिवारसर ) पु — वर्ष  
 य ( पु ) — सत्यासौ  
 यपुत्री — स्त्री ( पर्वतराज-पु,  
 मालय ) — हिमालयकी  
 यकी, पावती  
 य ( पापकम् ) न — पाप  
 यस्त्री ) — विवाहित विधवा  
 य ( पु ) — पुत्र  
 य ( पु ) — पुरोहित  
 य ( पु ) १ आत्मा,  
 य ( आत्मा, २ मनुष्य  
 य ( प्रयत्न का स्त्री ) —  
 य ( निष्ठा  
 य ( प्रयत्न का स्त्री ) — पूर्वदिशा

वालप्रियत्व ( न ) — ( वालप्रिय,  
 बहुव्री०, + ल ) — शैशोका  
 प्रिय होना  
 १ वृहस्पति ( पु तत्पु० वृहत् — स्त्री  
 वारो + पति ) — वृहस्पति  
 भी ( स्त्री ) — भय, डर  
 भेज ( भेज् ) पु — मेटक  
 मघवन् ( पु ) — इन्द्र  
 मालाकार ( मालाकार ) पु —  
 माली  
 युवन ( पु ) — युवा  
 वर्षाभू ( पु ) — मेटक  
 वृश्चिक ( वृश्चिज् ) — विष्णु  
 वस्तुनिर्देश पु ( वस्तु — न तथा  
 + निर्देश-पु उक्ति ) तथाकी  
 उक्ति  
 वृत्तिन ( वृत्तिनम् ) न — पाप  
 वृष्टि ( पु ) — यादव  
 गालीनता ( स्त्री ) — लज्जा  
 स्कन्द ( स्कन्द ) पु — कार्तिकेय  
 सहाय ( सहाय ) पु सहायक

यह एक पारम्परिक नियम है, जिसमें सनातन के पूर्व पदकी स्त्री नगदा  
 इत्युक्त के त् का स्त्री चाने रहनेपर लीप होता है। पारम्पर (एक देशका नाम),  
 वृष्टि, वृहस्पति इत्यादि पारम्परिकान्त के शब्द हैं।



ऋषिके आज्ञानुसार वह सार्वभौम राजा गौकी सेवा करने दि-  
तेयार हुआ ।

दृष्टिमान् पुरुषको का कठिन है ?

बरसातमें सेढ़क तालाबोंमें कूदते हैं ।

शुक दैत्योंका गुरु था । कचने उससे मन्त्रशास्त्र सीखा ।

शत्रु शत्रुथ्य समीप छोगा ( तृतीयान्तको साथ भवितव्यम् का प्रयोग  
करो ) । उसको बाण वेगसे हम लोगोंको मारते है ।

तुमने मुझे यह याद दिलाकर अच्छा काम किया । मैं बिलकुल भू-  
गया था ।

हे मित्र ! वह बात तो वीत चुकी । तुमको समाधान करनेकी सिवा  
दूसरा मार्ग नहीं ।

### सज्ञाशब्द ।

अगस्त्य ( अगस्त्य ) पु — एक ऋषि

अनल ( अनल ) पु — अग्नि

अनिल ( अनिल ) पु — वायु

अप ( स्त्री ) — जल

अभिलाषबन्ध ( अभिलाष-पु प्रेम,

बन्ध-पु — बन्धन ) प्रेमका

बन्धन

अवाची ( अवाच् का स्त्री ) — दक्षिण

दिशा

अहन् ( न ) — दिन

आलोक ( आलोक ) पु — प्रकाश

आशिस ( स्त्री ) — आशीर्वाद

उशनस ( पु ) — शुक

उदीची ( उदच् का स्त्री ) —

उत्तर दिशा

कलाप ( कलाप ) पु — समूह

कवि ( पु ) — कवि

केशपाश पु ( केश-पु + पाश—

समूह ) — केशोंका समूह

गोदावरी ( स्त्री ) — एक नदी

चमरी ( स्त्री ) — सुगविशेष

चित् ( चित्तम् ) न — आशय

जरा ( स्त्री ) — बुढ़ापा

तिमिर ( तिमिरम् ) न — अन्धक-

तिर्यच् ( पु ) — पशु

तुरग ( तुरग ) पु — अश्व

३ । तदधीते तद्धेद ।

• ( वह जो उसको पटता है वा जानता है । तद् से प्रकृति का बोध ना है जिसको प्रत्यय लगाये जाते है ) ।

१ । अ—वैयाकरण ( व्याकरणमधीते वेद वा ) ।

२ । इक—नैयायिक ( न्याय से ), तार्किक ( तर्क से ), ऐति-  
मिक ( इतिहास से ), पौराणिक ( पुराण से ) ।

३ । अक—मीमांसक ( मीमांसा से ) ।

४ । तत्र भव ।

( उससे उत्पन्न हुआ ) ।

१ । य—दन्त्य ( दन्तेषु भद्र )—दातसे उत्पन्न, दन्तस्थानीय,  
गोष्ठा ( श्रोत्र से ), कण्ठ्य ( कण्ठ से ), तालव्य ( तालु से ), मूर्धन्य  
मूर्धन्य से ), प्राच्य ( प्राच से ), उदोच्य ( उदच् से ), प्रतीच्य  
प्रत्यच् से ) ।

२ । त्य—दाक्षिणात्य ( दक्षिणा से ), पाश्चात्य ( पश्चात् से ),  
पूरस्त्य ( पूरस् से ) ।

३ । इक—मानसिक ( मनस् से ), शारीरिक ( शरीर से ) ।

इक अनेक अर्थोंमें सत्ताशब्दोंको विशेषण बनाता है ।

भाव—भाषिक

धर्म—धार्मिक

दिन—दैनिक

प्रमाण—प्रामाणिक

निर्माण—निर्माणिक

स्वभाव—स्वाभाविक

५ । तस्येदम् ।

( उसका वा उसका सम्बन्धी ) ।

१ । अ—गैवे ( शिवस्येदम् ) धनु ।

उपपन्नमेतदस्मिन् ऋषिकल्पे राजनि—ऋषितुल्य इव राजाको यद्युयोप है।  
कर्त्रशौ चित्तुलेखाद्वितीया कोशिनो दानवेन वन्दिग्राह्य दृष्टीता—चित्तुलेपाते

सहित कर्त्रशौ कोशिन नामको दैवसे कौइ कौ गई ।

इस पाठमें तद्धित तथा कृत् प्रयुक्तोंका वर्णन किया गया है ।

प्रायमिन् प्रत्यय, अर्थात् वे प्रत्यय जो सनाशब्द, सर्वनाम, तथा विशेषणोंको लगते हैं, तद्धित कहते हैं ।

तद्धित प्रत्यय कई हैं, जिनमें से कुछ नीचे दिये जाते हैं —

### १ । अपत्यवाचक ।

अपत्य—सन्तति, लड़के वा लड़कियाँ, किंवा इसको वादकी वशको सन्तति ।

१ । अ—रावण (रवणस्यापत्यम्—रवणका पुत्र), राघव (रघोरपत्यम्—रघुवशीय लड़का), पार्वती (पर्वतस्यापत्य स्त्री—पर्वतकी लड़की), जानकी (जनकस्यापत्य स्त्री) ।

ये प्रत्यय आगे रहनेपर प्रायः अन्तिम स्वरका लोप होता है और प्रत्यय स्वरको वृद्धि होती है । इस प्रकारके परिवर्तन नीचे दिये शब्दोंमें सुगमतासे देखा पड़ सकता है ।

२ । इ—दाशरथि (दशरथस्यापत्यम्), सौमित्रिः (सुमित्रा अपत्यम्) ।

३ । एय—गाङ्गेय (गङ्गाका पुत्र मीमा), वैनतेय (विनताका पुत्र, मरुट), राधेय (राधाका पुत्र, कर्ण) ।

४ । य, ईय, व्य—श्वशुर्य (श्वशुरस्यापत्यम्), स्वस्त्रीय (स्वस्त्री अपत्यम्), भ्रात्रीय भ्रातृव्यो वा (भ्रातुरपत्यम्) ।

### २ । सम्बुद्धवाचक ।

१ । ता—ग्रामता (ग्रामाणां सम्बुद्ध), जनता, वन्भुता ।

१० । उत्कर्षवाचक ।

१ । तर, तम—लघुतर, लघुतम, उत्तर, उत्तम, <sup>२</sup>पाच<sup>१</sup>क<sup>१</sup>तर, वक्तम, इत्यादि ( २२वा पाठ देखो ) ।

२ । तराम्, तमाम्—नीचैस्तराम्, पचतितमाम् ।

३ । इंपस्, इप्—नवीयस्, लघिष्ठ—इत्यादि ।

११ । स्वामित्ववाचक ।

( मत्वर्थीय प्रत्यय ) ।

१ । मत्—मतिमत्, बुद्धिमत्, भूमिमत्, यवमत्, भगवत्, सित् ( १३वा पाठ देखो ) ।

२ । त्रिन्—मायाविन्, मेधाविन्, यशस्विन्, तेजस्विन् ।

३ । श्रालु—दयालु, मायालु, कपालु ।

१२ । अभूततद्भाववाचक ।

१ । चिन् ( इ )—कृष्णीकरोति ( अकृष्ण कृष्ण सम्पद्यते यथा या करोति—जो काला नहीं था उसको काला बनाता है ), लघुभवति इत्यादि ।

१३ । ईपन्नूनतायाचक ।

१ । कल्प—विद्वत्कल्प ( ईपद्रूतो विद्वान्—पण्डितको समान, कुछ पण्डित ), द्वीपकल्प द्वीपसे कुछ काम, त्रिषक्ती तीनों और है ।

२ । देश्य—अष्टादशवपदेश्य

३ । पशूप—अष्टादशवपदेशीय ।

} करोत्र १८ वर्षका

१४ । तदस्य सञ्जातम् ।

२ । ईय—तदीय, मदीय, भवदीय, त्वदीय, अस्मदीय, युष्मदीय, अन्यदीय ।

६ । विकारवाचक ।

( आकारको परिवर्तनका बोध कराता है ) ।

१ । मय—गोमयम् ( गोत्रिकार )—गोवर, वाङ्मयम् ( वाणीज—शास्त्र ) ।

२ । य—गव्यम्, पयस्यम् ।

७ । तत्र साधु ।

१ । य—शरख्य ( शरणे साधु—रक्षा करनेमें अच्छा )

२ । यप—आतिथेय ( अतिथिपु साधु ) ।

८ । तस्मादनपेतम् ।

( उससे छटा नहीं ) ।

१ । य—धर्मम् ( धर्मान्दनपेतम् ), न्याय्यम् ।

९ । भाववाचक ।

( तस्य भाव )

१ । त्व-ता—गोत्वम्, गोता ( गोपन ) ।

२ । इमन्—प्रथिमन् ( पृथु से ), गरिमन् ( गुरु से ), लघिमन् ( लघु से ), स्त्रदिमन् ( श्रु से ), तनिमन् ( तनु से ) ।

३ । अ—गौरव ( गुरु से ), लाघव ( लघु से ), मार्दव ( मृदु से ), तानत्र ( तनु से ), कौमार ( कुमार से ), यौवन ( युवन् से ), शैश्व ( शिशु से ) ।

४ । य—पाण्डित्य ( पण्डित से ), लालित्य ( ललित से ), शौर्य ( शूर से ), धैर्य ( धीर से ), इसी प्रकार साधुर्य, आलस्य, नेपुण्य, कौशल्य, मौर्खा, इत्यादि ।

५। कर्तृवाचक कृदन्त—कताको अर्थमें धातुश्रीको तु तथा अक  
साया गाता है ।

कृ—कृत्, कारक, पठ्—पठित्—पाठक, नौ—नेत्, नायक ।

६। भाववाचक प्रत्यय—

( य ) ति—बुद्धि, मति, गति, स्थिति, नीति, रत्नानि, स्नानि, इष्टि,  
क्ति ।

यह प्रत्यय आगे रहनेपर होनेवाले परिवर्तन प्राय वैसे ही है जैसे  
तद्दन्तमें त आगे रहनेपर हुआ करते हैं ।

( घ ) अन—वाचन, करण, भजन, कीर्तन, मनन, दर्शन, अवरण,  
लादि ( सब नपुंसक ) ।

( ङ ) अ—लप, भय, काम, पाक, योग ( सब पुलिङ्ग ) ।

सखे । प्रतीक्षस्व माम् । अहमपि भवन्तमनुयामि । न शक्नोमि  
वता विना तखमप्यवस्थातुमिवाकी । कथमपरिचित इवाद्दृष्टपूर्वं इवाद्य  
मकपद उत्स्य प्रयासि ? कुतस्त्रयेयमतिनिष्ठुरता ? कथप, त्वदृते क  
शामि ! शून्या मे दिशा जाता । तदुतिष्ठु । दंष्टि मे विलपत प्रति  
चनम् ।

न हि मितुका सन्तीति ख्याल्यो नाधिश्रीयन्ते न च शृगा सन्तीति यथा  
गोदन्ते ।

कश्चित् कश्चित्तुवायसाह । अस्य सूत्रस्य शाटक वय इति । स  
ति । यदि शाटको न वातव्य । अथ वातव्यो न शाटक । शाटको  
अस्येति विप्रतिपिदुम् । भाविनी खल्वस्य सन्नाभिर्गता । स मय वातव्यो  
शाटकवृत्त शाटक इत्येतदस्यति ।

मरुतभुजतलरत्नानामुदधिरिवैकभाजन देव । विहङ्गमशायमाश्रय  
को निविलभुजातलरत्नमिति कृत्वा देवपादतलमादायागताहमिच्छामि  
नानमस्यमदधिरिवैकभाजन

## १५ । प्रमाणवाचक ।

- १ । मात्र—तावन्मात्रम् ( उतना ) ।  
 २ । दन्न—जानुदघ्न जलम् ( घुटने तक ) ।

## १६ । तेन तुल्य क्रिया चेत् ।

१ । वत्—ब्राह्मणवदधीते ( ब्राह्मणको समान पढ़ता है ) । तुल्य  
 अर्थमें वत् लगाया जाता है । जिन शब्दोंको यह लगाया जाता है  
 क्रियाको साथ अश्वित होते है ।

## कृत प्रत्यय ।

वे प्रायभिक प्रत्यय, जो धातुओंको लागे जाते है, कृत प्रत्यय कहते  
 है । जिन शब्दोंको अन्तमें कृत प्रत्यय होते है वे कृदन्त शब्द कहते है ।

१ । वर्तमान, भूत, अयथभूत, विधि, तथा तुमन्त कृदन्तोंका वर्ण  
 पहिले हो चुका है ।

२ । भविष्यकृदन्त—भू—भविष्यत् ( स्त्री भविष्यन्ती-ती ),  
 आत्म—करिष्यमाण ( स्त्री करिष्यमाणा ) ।

३ । परोक्षभूतकृदन्त—सद्—ऐदिथस्, शु-शुशुवस् कृ-चकृवस्  
 चक्राण, उप + ई—उपेयिवम्, अवि + वस्—अधूपिवम् ।

४ । अस् ( णमुल् )—क्रियाको पुनरुक्तिको अर्थमें धातुओंको  
 लगाया जाता है ।

स्मार स्मार नमति शिवम्—बार २ स्मरण कर यह शिवको प्रण  
 करता है ।

पा—पाय पायम्, शु—श्राव श्रावम् ।

समूलघात हन्ति—समूल नष्ट करता है । जीवघात गृह्णाति—जी  
 पकड़ता है । वन्दिघात सृह्णाति—कैद करता है ।

॥ पर जज वह वहा गया, देवोंने उसे टकेल दिया । तथापि  
प्रामित्तुके तपोवलसे वह बीच ही में रोका गया ।

यह बात नहीं है कि अन्न नहीं हुआ, क्योंकि वहा ऐसे प्राणी है जो  
खा डालते है ।

सबसुच तुम बडे निष्ठुर हो, तुमने हमको अकस्मात् छोड दिया ।  
तुम्हारा यह कहना कि जल एक ही समय गरम है और ठडा भी,  
बहु है ।

सज्ञाशब्द ।

निष्ठुरता ( स्त्री ) अतिक्रूरता  
दर्द ( अन्तर्दार्द ) पु — भीतर  
जनन

बोध ( अवबोध ) पु — ज्ञान  
य ( अश्रव ) पु — घोडा , यह सात  
सख्याका बोध भी कराता है ।  
( क्विकि सूर्यके घोडे सात है । )  
ता ( स्त्री ) — लक्ष्मी

वर ( इन्दीवरम् ) न — नीलकमल  
( पु ) — चन्द्र , यह एक सख्या  
का बोध कराता है ।

व ( कन्दल - लम् ) पु , न — १  
स्त्री २ समूह , ३ कारण ,  
ज्ञान अथवा त्रिषय

( पु ) एक दैत्य  
( स्त्री ) — ज्ञान  
व ( लम् ) न — घर

अह ( अह ) पु — अह , यह ६  
सख्याका बोध कराता है ।

तनू ( स्त्री ) — शरीर  
तन्तुवाय ( तन्तुवाय ) पु — जुलाहा  
दल ( दलम् ) न — पत्ता

दुर्वासना ( स्त्री ) — दुष्ट वासना  
दृश ( स्त्री ) — दृष्टि  
द्वैतान्वकारोदय ( पु ) — ( द्वैत न भेद

+ अन्वकार पु — अन्वकार, अज्ञान  
+ उदय — पु उत्पन्न होना ) —  
भेदसे होनेवाले अज्ञानकी उत्पत्ति

पादपद्म ( पादपद्मम् ) न ( कर्म०,  
पाद — पु + पद्म न ) — कमलके  
समान चरण

वन्दिन् ( पु ) — कैदी  
भजन ( भजनम् ) न — पूजन  
भाजन ( भाजनम् ) न — पाद



जायते अस्ति वर्धते विपरिणमते अपत्नीयते नश्यतीति  
विकारा ।

इतो गता सा क्व गता न जाने गेह गता मे हृदय गता वा ॥

एद्येहि वत्स रघुनन्दन रामभद्र

चुम्बामि मूर्धनि चिराय परिधजे त्वाम् ।

स्थाय स्थाय क्वचिद्यान्त क्वात्वा क्वात्वा स्थित क्वचित् ।

वीक्षमाणो मृगा रामश्चित्तवृत्ति विविचिष्ये ॥

नममरसला ग पङ्क्वेर्देर्हयैर्हरिणी मता ।

दलति हृदय गाढोद्देग द्विधा न तु भिद्यते

वहति विकल कायो मोह न मुञ्चति चेतनाम् ।

ज्वलयति तनूमन्तर्दाह करोति न भस्मसात्

प्रहरति विधिर्ममच्छेदौ न कुन्तति जीवितम् ॥

सूर्याश्वैर्यदि म सजौ सततगा शार्दूलविक्रीडितम् ।

किं तीर्थं हरिपादपद्मभजनं किं रत्नमच्छा मति

किं शास्त्रु भ्रवणेन यस्य गलति द्वैतान्धकारोदय ।

किं मित्र सततोपकाररसिक तत्त्वावबोध सखे

क शत्रुर्वेद खेददानकुशलो दुर्वासनासज्जय ॥

सुखस्थानन्तर दुःख दुःखस्थानन्तर सुखम् ।

सुखदुःखावृत्ते लोके नास्ति सौख्यमनन्तकम् ॥

तपवेत्तत्र रुरोद सा भृश स्तनसम्बन्धधुरो लघान च ।

स्वजनस्य हि दुःखमग्रतो विवृतद्वारनिवोपजायते ॥

इन्द्रीवरदलश्यामसिन्दिरानन्दकन्दलम् ।

वन्द्यासजनमन्दारं वन्देऽहं यदुनन्दनम् ॥

मत्पुत्रको त्रिशङ्कु नामका एक पुत्र या । वह वसिष्ठको श्रा-  
५ हुआ । तिसपर भी वह विश्रामिन्त्रके प्रभावसे सशरीर स्वर्ग

—अश्रमं रचनेवाला  
 'पठ्—(वि + प्रति + सिध्  
 त )—प्रिसृष्ट  
 ( वि + लप् ता वर्त कृ )  
 नाप करता हुआ

जिबृत् ( वि + वृ + त )—खुला  
 श्याम—काला  
 शून्य—खाती  
 सतत—अविनाशी

घातु ।

'प्रि ( अधिश्रपति-ते भ्वा  
 )—पकाना  
 ण ( अनुयाति—अ पर )—  
 जाना  
 व ( अपचयति—  
 पर )—गष्ट होना  
 लति—तु पर )—काटना  
 लति—भ्वा पर )—  
 ना  
 दलति—भ्वा पर )—  
 ना ; फटना

प्रति + इक्ष् ( प्रतीक्षते-भ्वा आ )  
 —बाट जोड़ना  
 प्र + या ( प्रयाति अ पर )—जाना  
 वप् ( वपति ते- भ्वा उभ )—बोना  
 वि + परि + नम ( विपरिणमति-  
 ते—भ्वा उभ )—किसी नये  
 रूपमें बदलना  
 जि + स्मि ( विस्मयते भ्वा आ )  
 —आश्चर्य करना  
 वे ( वयति-ते भ्वा उभ )—बूटना

अव्यय ।

प्रि ( अव + स्था + हुम् )

भस्मसात्—(भस्मान्—न रास्य । सात्  
 —तद्धित प्रत्यय जिसका अर्थ  
 'जो' है )—  
 हो गया हुआ  
 ( , यमुपा )

मन्दार ( मन्दार ) पु — पाच कल्प-  
वृक्षोंमें एक  
मुनि ( पु )—ऋषि , यह ७  
संख्याका बोध कराता है ।  
यदुनन्दन ( पु — यदूना नन्दन )—  
यदुव्रजाओंको आनन्द देने  
वाला , श्रीकृष्ण  
यव ( यव ) पु — जव  
विहङ्गम ( विहङ्गम ) पु — पक्षी  
वेद ( वेद ) पु — इससे ४ संख्याका  
बोध होता है ।

शाटक ( शाटक -कम् ) पु , न  
शार्दूलविक्रीडित ( शार्दूलवि-  
डितम् ) न — एक छन्दका  
सञ्चय ( सञ्चय ) पु — समूह  
सूर्य ( सूर्य ) पु — सूर्य , इससे १  
बोध होता है ।  
ख्याली ( स्त्री )—बटलोघो-  
द्य ( इय ) पु—घोड़ा , इस  
संख्याका बोध होता है ।  
हरि ( पु )—विष्णु  
हरिणी ( स्त्री )—एक छन्दका

## विशेषण ।

अच्छ—निर्मल  
अदृष्टपूर्व—जो पहिले कभी देखा  
नही  
अपरिचित ( अ + परि + चित—  
चि का भू कृ )—गनात  
अभिप्रेत ( अभि + प्र + इ + त,  
स्त्री० प्रेता )—इष्ट  
आश्चर्यभृत—आश्चर्यजनक  
इत्थर—शक्तिमान् , समर्थ  
फठोर—फडा  
गाढोद्देश ( बहु०, गाढ  
विशे० + उद्देश-पु -शोक )—  
अत्यन्त शोकार्त

चित्रवृत्ति ( बहु०, चित्र-विशे  
प्रदभुत + वृत्ति-स्त्री व्याप  
—अदभुत व्यापारवाला  
निपिल—सम्पूर्ण , सब  
भाविन ( स्त्री — भाविनी )—  
छोनहार  
मर्मच्छेदिन ( मर्मन्—न. मर्म  
+ छेदिन्-काटनेवाला )—  
मर्मस्थानको काटनेवाला  
लोकोत्तर—जगत्में सर्वोत्तम ,  
अदभुत , अभाधारण  
वन्दार—वन्दनशील , नम्र , पूज  
पणाम करनेवाला

२। अकृया, अकृत—ऋ पूर्व रहनेपर ख्या तथा ख को स् का  
प होता है ।

३। घ्स् को नित्य वा विकल्पसे ढस् होनेको नियम वे ही है जो  
भूतमें घ्स् को ढ् होनेको विषयमें है ।

पद्—अपादि अपत्साताम् अपत्सत, जन्—अजनि अजनिष्ट अजनि-  
ताम् अननिपत, दीप्—अदीपि-अदीपिष्ट अदीपिपाताम् अदीपिपत,  
ध्—अत्रोधि-अत्रुद्ध अभुत्साताम् अभुत्सत—

४। पद् में इ प्रथम पु ए व का प्रत्यय है, और रूप अपादि होता  
। दीप, जन्, तथा बुध् में यह विकल्पसे होता है ।

यष्ट प्रकार ।

नस्—पर ।

प्र पु	अनसीत्	अनसिष्टाम्	अनसिष्टु
म पु	अनसी	अनसिष्टम्	अनसिष्टु
व पु	अनसिषम्	अनसिष्ट	अनसिषा

यस्—अयसीत्, विरस्—विरसीत्, परन्तु रस् आत्म—अरस्त  
साताम् अरमत, अरन्ध्वस्, इत्यादि ।

पा ( रक्षय करण )—अपासीत्, ना—अनासीत् ।

१। यह प्रकार केवल परस्मै धातुओं ही में होता है ।

२। यस्, रस्, नस्, और आकारान्त धातुओंमें यह प्रकार  
ना है ।

प्रथम प्रकार ।

दा—पर ।

प्र पु	अदात्	अदाताम्	अदु
म पु	अदा	अदातम्	अदात
व पु	अदाम्	अदाव	अदाम

व्रञ्—अव्राजीत्, अव्राजिष्ठाम्, अव्राजिष्णु

गद्—अगदीत्—गादीत्, इत्यादि ।

तृ—अतारीत्, अतारिष्ठाम्, अतारिष्णु

जाष्—अजागरीत्, अज—अजसीत्, मुद्—अमोदिष्ठ

हन्—अवधीत्, अवधिष्ठाम्, अवधिष्णु

गुण तथा वृद्धिको नियम ।

१ । नी—अनीषीत्, रुध्—अरौत्सीत्—परस्मैपद चतुर्थ्यं प्रकारमें धातुके स्वरको वृद्धि होती है ।

२ । व्यञ्जिष्ठ, अकृत—आत्मनेपद चतुर्थ्यं प्रकारमें धातुके अन्तिम तथा उ को गुण होता है और इतर स्वर व्यं कौ व्यं रहते हैं ।

३ । अतारीत्, अचारीत्, अचालीत्, अवादीत्—परस्मैपद प्रकारमें अन्तिम स्वरको, तथा र, ल् में अन्त होनेवाले धातु, और वद्, वृञ् इन धातुओंके उपान्य अ को वृद्धि होती है ।

४ । नद्—अगदीत्—नादीत्—पर पञ्चम प्रकारमें र तथा त् को वृद्धि होनेवाले धातुओंके उपान्य अ को विकल्पसे वृद्धि होती है ।

५ । अजागरीत्, अजसीत्, अज्योत्, अजसीत्—प्रिष्ठ अजष्, अजष्, अजष्, तथा जुह् और धातुओंमें वृद्धि नहीं होती ।

६ । अजधिष्ठ, मुद्—अमोदिष्ठ आत्म—पञ्चम प्रकारमें अन्तिम तथा उपान्य स्वरको गुण होता है ।

रुध्—अरौत्सीत्

अरौद्दाम्

अरौत्सु

कृ—अकृत

अकृपाताम्

अकृपात्

अकृया

अकृपायाम्

अकृदृम्

सन्धिके नियम ।

१ । अरुध् + स्तम् = अरौध् + स्तम् = अरौध् + तम् = अरौध् + धम् = अरौद् + धम् = अरौद्दम्—अनुनासिक तथा अन्त स्थको क्लृप् प्रकीर्ण व्यञ्जन पूर्व रहनेपर स्तम्, स्त, तथा स्ताम् को त् का लोप होता है ।



दा—आत्म, । ( चतुर्थ्य प्रकार )

१०७	प्र पु	अदित	अदिपाताम्	अदिषत
	म पु	अदिषा	अदिषायाम्	अदिदुम्
१०८	उ पु	अदिषि	अदिष्वदि	अदिषदि

१०९ पा—अपात्, ख्या—अख्यात् ।

इ—'जाना' ।

	प्र पु	अगात्	अगाताम्	अगु
११०			भू ।	
	प्र पु	अभूत्	अभूताम्	अभूवन्
	उ पु	अभूवम्	अभूव	अभूम

१। दा, धा, तथा वे धातु जो दा, धा का रूप धारण करते ( इ६ वा पाठ १८ वा नियम देखो ), ख्या, गौ ( इ—'जाना' का आदेश ) पा 'पौना', तथा मू में यह प्रकार होता है ।

२। अदित, अस्थित—आत्म जब है तब दा, धा, तथा ख्या चतुर्थ्य प्रकार होता है । क्योंकि ये अनिट है । इनके आ को इ होता है ।

सप्तम प्रकार ।

विम्—पर ।

	प्र पु	अविचत्	अविचताम्	अविचन्
	म पु	अविच	अविचतम्	अविचत
	उ, पु	अविचम्	अविचाव	अविचाम

द्विष्—आत्म ।

	प्र पु	अद्विचत	अद्विचताम्	अद्विचत
	म पु	अद्विचया	अद्विचयाम्	अद्विचध्वम्
	उ पु	अद्विचि	अद्विचावदि	अद्विचामदि

धातु ।

इर् + दिश ( निर्दिशति-तु पर )

—दिखाना

वृ + वृ - प्र ( निवारयति वृ - प्र )

भवा, स्वा, कया उभ )

—रोकना

वि + लप् ( विलपति - भ्रा पर ) -

विलाप करना

वृ ( वृणाति - वृणुते-खा उभ )

—ढाकना

अव्यय ।

अनायासेन ( अनायाम का तु

ए व ) - बिना कष्टको

अनु - अनन्तर, बाद

इत - यहासे

नितराम् - अत्यन्त

मा - नही ( अद्यतन भूतको साथ

आज्ञाके अपसं प्रयोग किया

जाता है ।

प्रतीपम् - विरुद्ध, उलटा

यद्वधि - नउसे

स - १ भूत कालिक अर्थ बोध

करानेके लिये वर्तमान कालिक

क्रियाके साथ प्रयोग किया

जाता है, २ मा तथा अद्य-

तनभूतके साथ प्रयोग किया

जाता है, जिसका अर्थ आनामा

होता है ।

पाठ ४१ ।

आशीर्लिङ्, इच्छार्थक, अतिशयार्थक, नामधातु ।

कुशल ते भूयात् - तुम्हारा मङ्गल हो ।

केशवो व शिष्य दद्यात् - केशव तुम लोगोंको कुशल दे ।

शिवो व शिष्य पुष्यात् - शिव तुम लोगोंकी खट्कीको बढ़ाये ।

रान् दुधुक्ष्मि यदि चिति त्रिनुमेता तेनाद्य क समिव लोकमसु पुषाय -

दे मद्याराध, यदि आप पृथ्वीरूप गौकी दुधा चाहते है तो अत्र वत्सकी तरह

इस लोक ( प्रजाजन ) का पोषण कोजिये ।



राज्यभार (राज्यभार) पु —राज्यका भार  
 विघ्नम (विघ्नम) पु —घूमना, भाया  
 विहितता—( स्त्री, )—भवितव्यता  
 शकल ( शकल ) पु —खण्ड  
 शकृत ( न )—मल  
 शब्दजाल (शब्दजालम्) न (शब्द-पु +  
 जाल-न समूह)—शब्दोंका समूह  
 शीत ( शीतम् ) न —सरदी  
 शुक्रनाम (शुक्रनाम) पु —एक मन्त्रीका  
 नाम

ससारविन्ध, (पुं)—भवसाम  
 समा—स्त्री ( व व में प्रप  
 होता है )—वर्ष  
 सहिष्णुता ( स्त्री )—सहनशील  
 सरोरुह ( सरोरुहम् ) १—कम  
 मुषमा ( स्त्री )—शोभा  
 हतशरीर (हतशरीरम्) न मन (   
 हन् + त, निन्दित + शरीर  
 —निन्दित शरीर

## विशेषण ।

शनुग —पीछे चलनेवाला  
 श्रयतुमनम् ( बहु० )—चिसका  
 मन द्रुमरी और लगा हुआ है  
 श्रम्युद्धत ( श्रभि + उद् + गम् + त )  
 —उत्पन्न  
 उपात्त ( उप + आ + दा + त )—  
 कृत  
 गुणग्रहीतृ ( गुण—पु  
 १ सद्गुण, २ हीरी )—  
 १ सद्गुणों का जाननेवाला,  
 २ हीरीको पकड़नेवाला  
 द्विगुणित—द्वना  
 नाशन—नाशक  
 निपुण चर

निर्विष ( बहु० )—विषशून्य  
 निश्रीक ( बहु० )—शोभारि  
 नीच—१ गहिग, २  
 अधम  
 महाभात—भाग्यवान्  
 मोहित (मुह्—प्र + त)—मो  
 रोपण—क्रुद्र  
 विप्रकृत ( वि + प्र + कृ + त )  
 प्रपमानित, विरोधित  
 शाशत ( स्त्री शाशती )—श्र  
 मकत ( बहु०, यलाभिरवयव  
 सहित सफल )—सम्पूर्ण  
 सरस ( बहु० ) १ जलपूर्ण,  
 २ रसिक, सद्दय

सजमिदं सुखमनुभवन्नपि न प्रत्यामि । यद्वा प्रकृतिरियमभ्युदयानाम् ।  
द्वारका रोहिणीजानिर्द्धानुं नेयेप ।

न वा अरे सर्जस्य कामाय सव प्रिय भवति । आत्मनस्तु कामाय सर्व  
प्य भवति । आत्मा वा अरे द्रष्टव्य श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो  
देव्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन साया विज्ञानेनेद सर्वं विदितम् ।

तमतमोर्पानपदं पुरुष वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति ।  
तस्मादेवविच्छान्तो दान्त उपरतस्त्वित्तु ममाहितो भूत्वात्मशयेवात्मान  
शित् ।

एष ह्येव साधु कर्म कारयति त यमेभ्यो लोकेभ्य उन्ननीपते । एष  
यि(साधु कर्म कारयति त यमघो निनीपते ।

एक शब्द सम्यग्ज्ञात सुप्रयुक्त स्वर्ग लोके च कामधुग भवति ।  
रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव ।—अनुपसमित्यर्थ । अनन्वया-  
वह्कारोऽयम् ।

ब्रह्मनानि पतु सन्ति बहूनि प्रसरत्तु कृतब्रह्मनमयत् ।

मन्दाक्रान्ताऽम्बुधिरसागैर्मा भनो ता गयुरमम् ।

कक्षापन्त सुखमुपनत ह्य पमेक्रान्ततो वा

नोवेर्गच्छयुषि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥

एव एव रमसखिश्चि जीवतु चातक ।

पिपासया वा म्रियते याचते वा पुरन्दरम् ॥

शिवोऽपश्रुतापत भवान् शवमुखडाभरणोऽपि पावन ।

भय एव भवान्तक सता समदृष्टिर्विषमेक्षणोऽपि सन् ॥

विनुठाम्यवनो किमाकुल किमुरो हन्मि शिरच्छिनन्नि वा ।

किमु रोदिमि रारटौमि कि कृपण मा न यदीक्षसे प्रभो ॥

स्वैर्द्वैच्छिन्ना यमनसभला ग शिखरिणी ।

इच्छार्थक मूलज प्रकृति है। इसलिये प्रेर को समान इच्छे में लकारोंमें रूप होते हैं।

कृ—कारय ( प्रे )—कारयति, कारयतु, अकारयत्, कारयेत्, कारयाम्  
कार—प्रभूव—आप्त, कारयिता, कारयिष्यति, अकारयिष्यत्, अचीकृत  
कार्यात् ।

ञू—चिकीर्ष ( सम्भ्रज् )—चिकीर्षति, चिकीर्षतु, अचिकीर्ष  
चिकीर्षत्, चिकीर्षाञ्जकार—वभूव—आप्त, चिकीर्षिता, चिकीर्षिष्यत्  
अचिकीर्षिष्यत्, अचिकीर्षात्, चिकीर्ष्यात् ।

यङ्ङन्त ( अतिशयार्थक ) ।

भू—प्रोभृपते ( पौन पुन्येन भृश वा भवति )—इच्छे क्रियाका  
२ वा अत्यन्त होना प्रतीत होता है ।

दीप - देदीपयते, ल्वल्—लावत्यते, नृत्—नरीनृत्यते, अट्—  
अटाटयते ।

नियम —

धातुओं को य लगाकर यङ्ङन्त बनाये जाते हैं। इनको आत्मनेप  
प्रत्यय लगते हैं। य आगे रहनेपर धातुओंको द्वित्व होता है।  
अभ्यासको गुण होता है, ल्वल्, नृत्, तथा अट् के रूप अनियत हैं।

यङ्ङुगन्त ( अतिशयार्थक, जिसमें य का लोप होता है ) ।

भू—ब्रीभञोति, रट्—रारठीति

इन रूपोंमें य का लोप होता है ।

यङ्ङन्त तथा यङ्ङुगन्त दोनोंमें सब लकारके रूप होते हैं ।

नामधातु ।

गगनायते—गगनासिञाचरति ( आचारार्थे व्यङ् ), तमसायते ।

तपस्यति—तप आचरति, नमस्यति—नमस्कार करोति ।

सज्ञाशब्द ।

अत्रय (अनत्रय) पुं —यह एक अनङ्कार है, जिसमें उपमान और उपमेय एक ही होते हैं ।

मुवचन (अनुवचनम्) न — उच्चारण करना

चतुर्धि— ( पु )—इससे चार अक्षरों का बोध होता है, क्योंकि समुद्र चार है ।

चधि ( पु )—सीमा

चिनि ( स्त्री )—पृथ्वी

चिम—( काम ) पु —यस

चिमधि—( पु , तत्पु०, खग पु अक्षरों में चलनेवाला पक्षी +

चिधि पु रत्न )—उत्तमों में उत्तम

चिन—( मालम् ) न —विष

चिन्क—( चातक ) पुं—एक पक्षी

चिमुत्त (सीमुत्त) पु —मेघ

चिमुत्तेश्वर पु ( बहु०, तदण

चिमु० डोटा + इ० दु—पुं चन्द्र + श्वर—पुं शिरपेच) जिसका

चन्द्रमा शिरपेच है, शिव

देवत ( देवतम् ) न —देवता

नग (नग) पु —इससे सात सख्याका बोध होता है ।

नेमि ( पु )—पहियेकी चाल

पुरन्दर (पुरन्दर) पु.—इन्द्र

पुष्य ( पुष्य ) पु —आत्मा

भय ( भय ) पु —१ जा उत्पन्न

दुश्चा, २ शिव

सञ्ज्ञाकान्ता—( स्त्री )—एक कुन्दका नाम

सुख्य ( सुख्य ) पु —सिर

सैत्रेयी—( स्त्री )—यानवल्का को स्त्री

रम (रम) पु —इससे ६ सख्याका बोध होता है, क्योंकि रम छ है ।

रुद्र (रुद्र) पु —इससे ११का बोध होता है, क्योंकि रुद्र ११ है ।

शरत् (शरत्) न —रक्षाका स्थान

शय ( शय ) पु —गुन शरीर

शिरपिणी ( स्त्री )—एक कुन्द

विशेषण ।

अव्यय ( बहु०, अनु + उपमा— अव्यय )—असदृश, असमान

अर्यिम्—चादनेवाला

उपरत ( उप + रम् + त )—विरक्त

गुणायन्ते दोषा सुजनवदने दुर्जनमुखे

गुणा दोषायन्ते किमिति जगता विस्मयपदम् ।

यथा जीभूतोऽय लवणजलतघेर्वारि मधुर

फणौ पोत्वा क्षीरं चमति गरलं दुःखदृतरम् ॥

सुखार्थिनं कुतो विद्या नास्ति विद्यार्थिनं सुखम् ।

सुखार्थी वा त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम् ॥

विना सीतादेव्या किमिव न हि दुःखं रघुपते

प्रियानाथे वृत्तं किं जगदरण्यं हि भवति ।

स च स्नेहसात्वानयमपि वियोगो निरवधि

किमिदं पृच्छस्य न धिगतं रामायणं इव ॥

—इति कुशस्योक्तिर्नैव प्रति ।

शरणं तन्मन्त्रं दुःखेश्वरं शरणं मे गिरिराजकन्यका ।

शरणं पुनरेव तावुभौ शरणं नामहुपैमि देवतम् ॥

मेरी शक्ति तथा जो काम मेने उठाया है इन दोनोंमें बड़ा अन्तर है  
मे एक छोटीसी नाकासे समुद्र पार किया चाहता हूँ ।

इस जीवलोकेमें सुखके वाद दुःख और दुःखके वाद सुख प्रा-  
रहता है । कोई भी सर्पशा सुखी वा दुःखी नहीं है ।

एक शब्द भो, यदि वह अच्छी तरह जाना जाय, हम लोगोंकी मनोर-  
को पूर्ण करता है । विद्याकी ऐसी शक्ति है ।

उन लोगोंको, जो मोक्षिकोंको प्रणाम करते हैं, कोई भय नहीं ।

हे मन्त्र्य ! हमसे कहो कि युद्धार्थी पाण्डवोंने हमारे लड़कोंको  
किया ?

जो दुर्जनको मज्जन बनाना चाहता है, वह शयोसे समुद्रको  
करना चाहता है ।

वृद्ध मनुष्यको धिक्कार है । उसको लड़के भी उसके शत्रुओंको म-  
व्यग्रहार करते हैं ।

अव्यय ।

कम्—बहुत

य—नीचे

आन्त—नियमसे, सत्रदा

नीचे—नीचे

यद्वा—अथवा (पदान्तर का बोध कराता है ।)

पाठ ४२ ।

स्त्रीप्रत्यय तथा पतुलेखनका प्रकार ।

पहले स्त्रीप्रत्ययोका वर्णन किया गया है । इस पाठमें उनका प्रकारसे वर्णन किया जाता है ।

—अञ्ज (जकरी), कोञ्जिजा, चटका (चिड़िया), अश्या, मृषिका (मृषणसे), बाला, वत्सा, शृङ्गा (जारी, अर्थात् वर्णके अर्थमें), अश, कनिष्ठा, मध्यमा, वृद्धा, स्वविरा ।

—गौरी, नर्तकी, हरिणी, मानुषी (मनुष्यसे), मत्सी (मत्स्यसे), वयसि (वयस् के अर्थमें)—कुमारो, किशोरी (पशु वृद्धा, स्वविरा) ।

पुंगव (उभक्तो स्त्री)—शूद्रो, गणकी

नियम —

१। अकारान्ता—अकारान्त शब्दोंके स्त्रीलिङ्गसे क्व या धा हैं।  
मानसे बनत है ।

बाधक—

(१) इन्द्रस्य स्त्री इन्द्राणी, वरुण—वरुणानी, भव—भवानी, अश्व—अश्वानी, सुड—सुडानी, मृत्यस्य स्त्री मृत्या, मनो—मनोनी

(२) कर्षी २ अर्थ बदल जाता है ।

औपनिषद्—जिसका ज्ञान उपनिषद्-  
से हो सकता है

कामदुह—मनोरथ पूर्ण करनेवाला  
ब्रह्मचर्मघर—तलवार और ढाल  
लिये हुए

क्लिन्न ( क्लि + त )—कटा हुआ  
तितित्तु—जो सड़ी गरमी, सुख  
हु ख, इत्यादिसे अविकृत रहता  
है

दान्त ( दम् + त )—जिसने इन्द्रियोंका  
दमन किया है

दु सचतर—द्रव्यत असद्य  
द्रष्टव्य ( दृश् + तव्य )—देखने योग्य  
निद्रिध्यासितव्य ( नि + धैर—म  
नन्त + तव्य )—एकाग्र चित्तसे  
विचार करने योग्य

पावन—पवित्र

भवान्तक—ससारका नाशक

मन्तव्य ( मन् + तव्य )—विचार करने  
योग्य

रोहिणीजानि ( गृह०, रोहिणी  
जाया यस्य स )—जह जिसकी  
स्त्री रोहिणी है, बलराम

लवण—क्षार, निमक

विषमेक्षण ( वचु० विषम १ असम  
२ अनुपम, पक्षपाती + इक्ष  
न नेत्र ) १ जिसको विषम  
अथवा तीन नेत्र है, २. ३  
पक्षपातसे देखता है

शान्त ( शम् + त )—शान्त, जिस  
इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाया

श्रोतव्य ( श्रु + तव्य )—सुननेके लिये  
अद्वावित्त—अद्वावान्

समाहित ( सम् + आ + धा + त )  
जिसने निद्रा, आलस्य इत्यादि  
को दूर किया-है और चित्त  
विचार करनेमें एकाग्र किया

सुप्रयुक्त—( सु + प्र + युज् + त )  
जिसका प्रयोग अच्छी त  
क्रिया गया

### धातु ।

उद् + नी ( उन्नयति-ते—भा उभ )  
—ऊपर उठाना

प्रति + इ ( प्रत्यति—अ पर )—  
विप्रवास करना, पतिश्राना

वि + लुठ् ( विलुठति—भा पर )  
लोटना

रट्—( रठति—भा पर )—रट  
पुकारना

अव्यय ।

यन्तम्—बहुत

ध—नीचे

कालत—नियमसे, सर्वज्ञ

नीचे—नीचे

यद्वा—अथवा ( पदान्तर का बोध कराता है । )

पाठ ४२ ।

स्त्रीप्रत्यय तथा पत्रलेखनका प्रकार ।

परिले स्त्रीप्रत्ययोका वर्णन किया गया है । इस पाठमें उनका स्मरण किया जाता है ।

—श्रमा ( वकरी ), कोमिला, चटका ( चिड़िया ), श्रया, मूषिका ( मूषकसे ), बाला, वत्सा, शूद्रा ( जातौ, श्रयात् वरणसे श्रयमें ), श्रि, कनिष्ठा, मध्यमा, वृद्धा, स्यात्रिा ।

—गौरौ, नर्तकी, हरिणी, मानुषी ( मनुष्यसे ), मत्सी ( मत्स्यसे ), वयसि ( वयम् से श्रयमें )—कुमारौ, किशोरौ ( पान्तु वृद्धा, स्यात्रिा ) ।  
पुषोत्त ( उषको स्त्री )—शूद्रौ, गणकौ

नियम —

१। अकारान्ता —अकारान्त शब्दोंके स्त्रीलिङ्गके हर आ वा ई आनेसे बनते है ।

प्राथम्य—

( अ ) इन्द्रस्य स्त्री इन्द्राणी, वदथ—वदथानी, भव—भवानी, श्रुद्राणी, शव—शवानी, मुड—मुडानी, मूयस्य स्त्री मूया, मनोः

मनावी मनायी ५

१५ —मातुलानी—मातुली ।

( ब ) कहीं २

है ।



औपनिषद्—जिसका ज्ञान उपनिषद्-  
से हो सकता है

कामदुर्—मनोरथ पूर्ण करनेवाला  
खड्गवर्मघर—तलवार और ढाल  
लिये हुए

क्लिन्न ( क्लिद् + त )—कटा हुआ  
तितित्तु—जो सदीं गरमी मुख  
हुए, इत्यादिसे अविनाश रहता  
है

दान्त ( दम् + त )—जिसने इन्द्रियोंका  
दमन किया है

दुःसहतर—रूयत असह्य  
द्रष्टव्य ( दृश् + तव्य )—देखने योग्य  
निदिध्यासितव्य ( नि + ध्या—स  
न्नन्त + तव्य )—एकाग्र चित्तसे  
विचार करने योग्य

पावन—पवित्र

भयान्तक—संसारका नाशक  
मन्तव्य ( मन् + तव्य )—विचार करने  
योग्य

रोहिणीजानि ( बहु०, रोहि  
जाया यस्य स )—वह निः  
स्त्री रोहिणी है, बलराम

लवण—क्षार, निमक

विषमेक्षण ( बहु० विषम १ प्र  
२ अनुपम, पक्षपाती +  
न नेत्र ) १ जिसको  
अथवा तीन नेत्र है,  
पक्षपातसे देखता है

शान्त ( शम् + त )—शान्त,  
इन्द्रियोंको विषयोंसे दृष्ट

श्रोतव्य ( श्रु + तव्य )—सुननेको  
अद्वावित्त—अद्वावार

समाहित ( सम् + आ + धा +  
जिसने निद्रा, आलस्य  
को दूर किया है और  
विचार करनेमें एकाग्र

सुप्रयुक्त—( सु + प्र + युज् +  
जिसका प्रयोग अच्छी  
किया गया

### धातु ।

उठ + नी ( उन्नयति-ते—भ्या उभ )  
—ऊपर उठाना

प्रति + इ ( प्रत्येति—अ पर )—  
विश्रवास करना, पतिआना

वि + लुठ् ( विलुठति-भ्या प  
लोटना

रट्—( रठति भ्या पर )—  
पुकारना



महद्विम हिमानी, महदगण्यमग्न्यानी, दुष्टो यथो यजानी, यवनास्त्र  
लिपिर्यवनानी ।

(क) कुछ शब्दोंके दो रूप भिन्न २ श्रेणियोंमें होते हैं ।

उपाधाय—उपाधायस्य स्त्री उपाधायानी—उपाधायो वा—गुरुकौ स्त्री

स्वयमेवाध्यापिका—उपाधायी—या—स्वय पढानेवाली ।

शाचार्य—आचार्यस्य स्त्री आचार्यानी, स्वय व्याख्यात्री—आचार्या ।

क्षत्रिय—क्षत्रियस्य स्त्री क्षत्रियी ( पुत्रोत्तरे ) । क्षत्रियाणी—क्षत्रिया

—क्षत्रिय जातिकी स्त्री ।

खल—खली ( अकृत्रिमा चेत् )—स्याभात्रिभू भूमि, खला ( कृत्रिमा

—कृत्रिम भूमि ।

( ड ) आ तथा इं दोनोंसे—

चन्द्रमुखी—खा सुशोशी—शा, तुङ्गनाचिकी—क्षा, कृशोदरी—खा

विम्बोष्ठी—ष्ठा, खड्गी—ङ्गा, सुगात्री—त्रा, कम्बुकच्छी—च्छा ।

( ए ) कृता, कर्तव्या, करणीया, कार्या, कृतवती, गतवती, लघुत

लघुतमा, लघिष्ठा । भूत तथा विधि कृदन्त, तथा तर, तम, इष्ट, में अन्त

वाले शब्दोंका स्त्रीलिङ्ग का रूप आ लगानेसे बनता है । पर भूत क

कृदन्त का स्त्रीलिङ्गका रूप ई लगानेसे बनता है ।

२ । इकारान्ताः—(अ) कृति, मति, तति, बुद्धि, नीति इत्य

( ब ) रजनि—नी, रात्रि—त्री, अरवि—नी, कोटि—

भूमि—मी, श्रेणि—शी ।

( अ ) ति में अन्त हो देनेवाले कृति, मति, तति, इत्यादि

स्त्रीलिङ्ग है ।

( ब ) अन्त कृत् इकारान्त को इ तथा ई दोनों लगते हैं । पर

अन्त में ति रहने पर भी पठति—ती दो रूप होते हैं ।

पति का पत्नी, समान पतिर्यथा सा सपत्नी ।

३। उकारान्ता —पटु—पटु वा पट्टी, लघु—लघु वा लघ्वी, पाण्डु ( पीला ) का षोडश पाण्डु, श्रार पङ्गु ( लगडा ) का पङ्गु वा षी होता है ।

उकारान्त विशेषणको स्त्रीलिङ्गम विकल्पसे ईं लगाकर रूप बनते है ।  
घामो ऊस यस्या सा घामोरु, रम्मोरु ( रम्मा - स्त्री, फोलेका पेड ), भोर ( करम—कलाइसे फनिष्ठिका तकका दायका पिछला भाग, यथा दायीकी सूड ।

बहु० वा श्रन्ता को ऊस के स्त्रीलिङ्ग में ऊस होता है ।

४। ऋकारान्ता नकारान्ताश्च—कृ-कर्त्ती, द्रष्टृ द्रष्ट्री, कृत्विन्-कृत्वी, रागन्-राग्वी ।

ऋकारान्त तथा नकारान्त शब्दोंको स्त्रीलिङ्गके रूप ईं लगानेसे बनते हैं ।

प्राधक—

( अ ) पञ्चन्, सप्तन् इत्यादि नकारान्त सख्यावाचक तथा तिर्य और त्रि और चतुर् के प्रादेश ( त्रि और चतुर् के प्रादेश ) ।

( ब ) स्वयं, ननान्दृ, दुष्टिष्ट, यावृ, मावृ ।

( क ) मर् में अन्त होनेवाले शब्द—दामन्, सीमन् ।

( अ ) मनुप् ( मत् )—बुद्धिमत्-बुद्धिमती, भगवत्-भगवती ।

( ब ) क्तवन् ( वत्—कर्तरि भूत कृदन्त प्रत्यय )—कृतवत्-कृतवती ।

( क ) कृषु ( ऋष्—परोक्षभूत कृदन्त प्रत्यय )—विद्वस्—विद्वसी, शरिषवस्—शरिषवी, तस्विवस्—तस्विनी ( ईं प्रत्यय भ श्रद्धको लगता है ) ।

( द ) इयमुन् ( आपक्षिक प्रत्यय इयस् )—लघीयम्-लघीयसी ।

( ए ) वाप ( वत्, परिमाणवाचक )—तावत्-तावती, यावत्-यावती ।

एतावत् एतावती, इयत्-इयती, कियत्-कियती ।

(फ) शृ ( अत्-पर वर्तमान कृदन्त प्रत्यय )—गच्छन्ती, पुष्यती, चोरयन्ती, कारयन्ती, तुदती ग्ती, यातो ग्ती, करिष्यती ग्ती, चिकीर्षती ग्ती परन्तु द्विषती, ददती, चिन्वती, स्मृती, कुर्वती, ग्रीणती । इनमें भ्वादि, चु, तथा प्रेरणार्थकमें न् नित्य होता है, और तु और अदात्त आकारान्त धातु पर भविष्यत् तथा पर सन्नन्त में विकृत्पसे न् होता है ।

५ । उगिदन्ता —उन शब्दोंके स्त्रीलिङ्गके रूप, लिनके अन्तमें ऐसे प्रत्यय हों जिनके उ वर्ण तथा ऋ वर्ण का लोप होता हो, ईं लगाकर बनते हैं । इस प्रकारके प्रत्यय ऊपर दिये हुए मतुप्, क्तवत्, इत्यादि हैं ।

महती, भवती—महत् और भवत् ( सर्वना ) के स्त्रीलिङ्ग रूप ईं लगाकर बनाये जाते हैं ।

तथ—पञ्चतथी, द्वितथी

द्वयस—ऊरुद्वयमी

दन्न—उरुदन्नी

मात्र—ऊरुमात्री

इक—वार्षिकी, मासिकी, प्रामाणिकी ।

दृश—तादृशी, मादृशी इत्यादि ।

६ । तथ, द्वयस, मात्र, इक में अन्त होनेवाले शब्द, तथा तादृशके समान शब्दोंमें ईं लगाकर स्त्रीलिङ्गके रूप बनाये जाते हैं ।

अधोलिखित पत्र कालिदासके मालविकाग्निमित्र में मिला है —  
 स्वर्क्षि । यन्शरणात् सेनापति पुष्पमित्रो वैदिशस्य पुत्रमायुमन्तमपि  
 मित्र होहात् परिष्वज्य अनुदर्शयति । विदितमस्तु । योऽसौ राजसूययज्ञ  
 दौक्षितेन मया राजपतशतपरिष्वक्त वसुभिश्च गोमारमादिभ्य स्वस्वसरोपाश्रित

नीयो निरगलक्षुरगो विमृष्ट स सिन्धोर्दक्षिणरोधसि चरन्नश्वानीकोन यवनाना  
प्रार्थित । तत उभयो सेनयोर्महानामौत् समर्द ।

तत परान् पराजित्य वसुभिन्नेष धन्विना ।

प्रसद्य द्वियमाणो मे वाजिराजो निवर्तित

सोऽहमिदानोमशुमतेव सगर पौत्रेण प्रत्याहृताश्वो यत्पि । तदिदानी-  
मकालहीन विगतरोषचेतसा भवता वधूजनेन सद्य यन्सेवनायागन्तव्य-  
मिति ॥

( अनुदर्शयति—दिखाता है, अधोलिखित प्रकारसे जनाता है ।  
त्रिणापयति छोटा बडैको, वा बराबरीवाला बराबरको विनयसे लिखना  
है । इसका अर्थ 'प्रार्थना करना', 'सादर निवेदन करना' है । आचापयति  
दडा होंटेको लिखता है । अनुदर्शयति—निवेदयति । राजसूय नामका एक  
यन है, जो राज्याभिषेकके समयपर सावभौम राजासे किया जाता है ।  
शोचति = जिसको यन्को दीक्षा हुई । सवत्स० = जो एक वर्ष बाद लौटाया  
जानेको है । निरगल — निर्गता अर्गला यस्मात् स, स्वतन्त्र । रोधस  
— न तट । अनौक-१ सेना, अश्वानीक न घोड़ोंकी सेना । प्रार्थित  
— रोका गया, आक्रान्त । वाजिराज — अश्वोंमें उत्तम । अकालहीनसू—  
कालक्षेप न करते ।

श्री ।

स्वस्ति । श्रीमद्रमारमणचरणकमलनिरन्तरपरिचरणप्राप्तनिखिलपुरुषा-  
णु - राजश्रिया विराजितान् राजमान्यान् देवदत्तशर्मण आशीर्भिर-  
भिनन्त्रा ( अथवा अमुकशर्मणो नमस्कारतती कृत्वा ) त्रिणापनमिद यद्  
पत्रलिखित पुस्तकं समुपलभ्य प्रेषयामि । स्तौष्ट्यं चरत्त सवर्घ्यं ह्येति  
त्रिणापयति

श्री ।

सूर्यपुरम्, २१-१ १०

श्रीमन् प्रियमुद्दत्तम्,

गतमासस्य पञ्चविंशतितमेऽङ्के भवलिखित पत्र प्राप्तं ययाकालं ज्ञातुं  
सुमहानानन्दसदोह । भवदीप्सित पुष्पक सपादयितुमित्तत कृता  
समोहा नाद्यापि फल इत्यतीति भृश विषीदामि तद् दृश्यो १०५  
निवेदयिष्यामि च तद्दार्ता यदि तल्लभेय । शमत् । तद्भवतो लिङ्गासि पौन  
पुनिकाद्भवलिखादाशासि च मुहुर्मद्देशानात् ।

भवदीय

नारायणशास्त्री ॥

सङ्कृतमें पत्र लिखनेका ठग समझनेके लिये ये दो आदर्शपत्र बच हैं

एवमुपाख्यायते—सत्यकामो जाबालो श्रुतपितृको जाबाला स्वमातरं  
मुवाच आचार्यकुले ब्रह्मचर्येण स्थातुमिच्छामि किं गौतुं समेति । सोऽपि  
बहुद्बुधं चरन्तीं परिचारिणीं यौवने त्वामलभे नाहमेतद्दृष्ट्वा यद्वोतुस्त्वमिति  
सत्यकामो नाम त्वमसि, जाबाला तु नामाहमस्मि । अतः सत्यकाम  
जाबाल इत्येव त्वयाऽऽचार्यपुत्रेण वक्तव्यमिति । स गौतमः प्रत्येकं ब्रह्म  
चर्यं भगवति वत्स्यामीति भगवन्तमुक्त्वा गौतमेन किं गौतुस्त्वमिति पू  
माता यथोक्तं तथैव सर्वमुक्तवान् । तदनन्तरं गौतमस्य वचन—नेतं  
ब्राह्मणो विवक्तुमर्हति । समिधं सोम्याहरोप त्वा नेर्यं न सत्यं  
इति तमुपनीय कृशाना गवां चतुःशतसंख्यानां रक्तशायं नियोजयामास  
स तां आदाय यावत् सहस्रं शखा न भविष्यन्ति तावन्न निवर्त्त इति प्रा  
जायाऽरुण्यं तृणजलसमुद्भूतं प्रापयामास । यदा ता सहस्रं सम्पन्ना  
तमाचार्यकुलं प्रापयितुमृषभ उवाच—प्राप्ता सोम्य सहस्रं स इति प्रा

न आचार्यकुलम् । इत्युक्त्वा स ऋषभस्तस्मै सत्यकामाय षोडशकलस्य  
 वतुषुषो ब्रह्मण एक पादमुक्तवान् । ततोऽवशिष्टान्त्रोन् पादान्निष्टस-  
 मद्रव क्वु । तथाभूत आचार्यकुल प्राणमाचार्य उवाच—सत्यकाम  
 ब्रह्मविदिव भासि, कस्त्वामनुशशास । अनो मनुष्येभ्य इति सत्यकाम  
 उवाच । परन्तु न तावता मम सन्तोष । यत आचार्यार्ह्वेव विद्या विदिता  
 साधुतमत्व प्रापदिति भगवत्सदृशेभ्य श्रुतमस्ति । अतस्त्वत्त एव श्रोतु-  
 मिच्छामीति । तमाचार्यऋषभादिभिर्यदुक्तं ब्रह्म तदेव पुनरप्युक्तवानिति ।  
 भरतलक्ष्मणसहितो रघुपतिर्बुधवृहस्पतियोगेन दर्शनीयश्चन्द्रोऽभवत्  
 मित्र विमानमद्यास्त ।

स किमखा साधु न शास्ति योऽधिप

दितान्न य सष्टयुते स किमभु ।

सदानुक्लेप्सु हि कुर्वते रति

नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पद ॥

सैषा खली यत्र विचिन्वता द्या मष्ट मया नूपुरमेकमुर्व्याम् ।

अदृश्य तत्स्वचरणारविन्दविश्लेषदु खान्दिव बट्टमौनम् ॥

यूयं वय वय यूयमित्यासीमतिरावयो ।

किजातमधुना मित् यूय यूय वय वयम् ॥

व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ती

रोगाश्च शत्रूश्च प्रहरन्ति देहम् ।

प्रायु परित्स्त्रवति भिन्नघटादिशाम्भो

लोकस्तयाप्यहितमाचरतीति चित्रम् ॥

न धनं न च राजसम्पद न हि विद्यामिदमेकमर्थये ।

सधि धेहि सनासपि प्रभो करुणाभङ्गितरङ्गिता दृशम् ॥

मुनिरसप्रहेन्दुमिते विक्रममव्रतसरे ( सप्तप्रपृथिकैकोनविंशतिशततम

शत पाठत् । अङ्काना वामतो गते ) पुस्तकस्यास्य प्रथमाऽऽवृत्तिविरचिता ।



अभी सेनापति अपनी उत्साहवर्धक वाणी समाप्त भी न करने पाया था ( अनवसितवचन एव सेनापतौ ), कि सिपाहियों ने कमर कसी और लड़नेके लिये तैयार हो गये ।

मान लिया कि ( कामम् ) कर्तव्य कार्य अद्वय्य करना चाहिये, पर मैं यह वृत्तान्त राजासे नहीं कह सकता ।

ज्यों २ तुम अपने कष्टका विचार करोगे त्यों २ तुम्हारा शोक अधिक होगा ( यथा यथा—तथा तथा ) ।

“इन्द्रो मित्तु लोग उसके शत्रुओंको जीते यह (इति का प्रयोग करो) केवल उसीका प्रभाव है” ऐसा राजाने भातलिसे कहा ।

वनका आश्रय लेना अच्छा, पर अभिमानियोंकी सेवा करना अच्छा नहीं ( वरम्—न तु ) ।

रोगको उत्पन्न होते ही ( जातमात्र रोगम् ) उसके दूर करनेका यत्न करना चाहिये ।

रथको रोको जितनेमें ( यावत् ) मैं उतरता हूँ ।

यह आश्चर्य है कि मेरे वार २ उपदेश करनेपर भी ( अनादरमष्टी वा अनादरसप्तमीका प्रयोग करो ) तुम सन्मार्गसे भटके ।

सन्नाशब्द ।

अद् ( अद् ) पु—सख्या

अस ( असम् ) न—संघ

इन्द्रु ( पु )—१ चन्द्र, २ इससे  
१ सख्याका बोध होता है ।

उर्वी ( स्त्री )—पृथ्वी

अपम ( ऋमम् ) पु—वैल, वायु-  
प्रेथता, जिसने वैलको शरीरमें  
प्रवेश किया था

जिप्रभु ( पु )—कुत्सितक्षाषी

ममुद्य ( पु )—दुष्ट राजा

गति ( स्त्री )—ज्ञान

गौतम ( गौतम ) पु—एक ऋषि

ग्रह ( ग्रह ) पु.—१ ग्रह, २, इससे  
९ का बोध होता है ।

जावाल ( जावाल ) पु—एक मुनि

जान्वाला ( स्त्री )—किसी स्त्रीका नाम

दृष्ट ( स्त्री )—दृष्टि  
 दृष्ट ( दृष्टस् ) न—पायजेत्र  
 भङ्गि ( स्त्री )—तरङ्ग  
 मुनि ( पु )—१ ऋषि २. इससे  
 ० का बोध होता है ।  
 मोन ( मोनस् ) न—चुप रहना

विश्लेष ( विश्लेष ) पु—वियोग  
 वृन्द ( वृन्दस् ) न—समूह  
 व्याघ्री ( स्त्री )—शेरिन  
 सत्यकाम ( सत्यकाम ) पु—एक  
 मुनिका नाम  
 हस ( हस ) पु—सूर्य

विशेषण ।

अप्रशिष्ट ( अय + शिप्—र पर  
 + त )—बचा हुआ  
 कृश—दुबला  
 चतुष्पाद ( चतुर् + पाद पु—चौपाद  
 दिशा, चत्वार पादा यस्य स  
 चतुष्पाद )—चार चरणका  
 ( पाद चतुर्थांश, चार दिशा-  
 ओसे ब्रह्मका १ पाद और ४  
 काये होती है )  
 द्वित ( स्त्री ०ता )—जिसमें तरङ्ग  
 देने हुए है  
 मन्—उतना  
 चारक—धेवक  
 विद्—ब्रह्म वा परमात्माको  
 जाननेवाला

मित—( मा—जु आ + त )—  
 नपा हुआ  
 षोडशकल—जिसके १६ भाग है  
 ( ४ दिशाएँ, पृथिवी, अन्तरिक्ष,  
 दिव, समुद्र, अग्नि, सूर्य, चन्द्र,  
 विदुरत, प्राण, चक्षु, श्रोत्र,  
 तथा मन, ये ब्रह्मकी १६  
 कलाये है । )  
 समद्विगु ( मद्गु पु एक जलचर पत्ती,  
 यद्य इसका अय प्राण है )—  
 प्राणसहित  
 मसृष्ट ( मस् + ऋध्—दि, ध्वा पर  
 + त )—पूर्ण  
 सम्पन्न ( म + पद—दि आ + त )—  
 हुआ

धातु ।

+ शान् ( श्रुशान्ति, श्र पर )—  
 पढ़ाना  
 अर्थ—( अर्थयति—ते-चु उक्ष )—सागना  
 उप + आ + र्या ( उपाख्याति, अ.

स सुहृद् व्यसने य, स्यादन्यजातुरङ्गवोऽपि सन् ।  
 वृद्धौ सर्वोऽपि मित्रं स्यात् सर्वंपामिव देहिनाम् ॥  
 स सुहृद् व्यसने य, स्यात् स पुत्री यस्तु भक्तिमान् ।  
 स भृत्यो यो विधेयज्ञ, सा भार्या यत्र निर्वृति ।

तत् पश्य मे बुद्धिप्रभावम् । परं ममापि सुहृद्भूता वीणारवा  
 नाम मत्तिकास्ति । तत्तामाह्वयागच्छामि येन स दुरात्मा दुष्टगजो  
 वध्यते । अथासौ चटकया सह मत्तिकाभासाद्य प्रोवाच । भद्रे  
 ममेष्टेय चटका केनचिद् दुष्टगजेन पराभूताण्डस्फोटनेन । तत्तस्य  
 वधोपायमनुतिष्ठतो मे साहाय्यं कर्तुमर्हसि । मत्तिकाप्याह ।  
 भद्रे किमुचरतेऽत्र विषये । उक्तं च ।

पुनः प्रतुरपकाराय मित्राणां क्रियते प्रियम् ।  
 यत् पुनर्मित्रमित्रस्य कार्यं मित्रैर्न किं कृतम् ॥

सत्यमेतत् । परं ममापि मेको मेघनादो नाम मित्रं तिष्ठति ।  
 तमप्याह्वयं यथोचितं कुर्मः । उक्तं च ।

हितैः साधुसमाचारैः शास्त्रैर्मतिशालिभिः ।

कथंचिन्न विकल्पन्ते विद्वद्भिश्चिन्तिता नयाः ॥

अथ ते त्रयोऽपि गत्वा मेघनादस्याग्रे समस्तमपि वृत्तान्तं निवेद्य  
 तस्यु । अथ स प्रोवाच । कियन्मात्रोऽसौ वराको गजो महा-  
 जनस्य कुपितस्याग्रे । तन्मदीयो मन्त्रं कर्तव्यं । मत्तिके त्वं  
 गत्वा मध्याह्नसमये तस्य मदोदतस्य गजस्य कर्णे वीणारवसदृश  
 शब्दं कुरु येन अरण्यमुखलालसो निमीलितनयनो भवति । ततश्च  
 काष्ठकूटचञ्चुवा स्फोटितनयनोऽन्धीभूतस्तृपातो मम गर्ततटाञ्चितस्य  
 सपरिकरस्य शब्दं श्रुत्वा जलाशयं मत्वा समभ्येति । ततो गर्त-  
 मासाद्य पतियति पञ्चत्वं यास्यति चेति । एव समवायः कर्तव्यो  
 यथा वैरसाधनं भवति । अथ तथानुष्ठितं स मत्तगजो मत्तिकागीय-  
 सुखान्निमीलितनेत्रं काष्ठकूटहृतचञ्चुर्मध्याह्नसमये भ्रास्यन् मण्ड-

कश्टानुसारी गच्छन् महती गर्तामासाद्य पतितो नृतथ । अतो-  
ऽह ब्रवीमि—

चटकाकाष्ठकृटेन सच्चिकाटदुरैस्तथा ।

महाजनविरोधेन कुञ्जर प्रलय गत ॥

२ । वामदेवशिष्यकथिता कुमारवार्ता ।

कदाचिद्वामदेवशिष्य सोमदेवशर्मा नाम कचिदेक बालकं राज्ञ  
पुरो निचिप्याभाषत । देव रामतीर्थे स्नात्वा प्रत्यागच्छता मया कानना-  
वनौ वनितया कयापि धार्यमाणमेनमुज्वलाकार कुमार विलोक्य  
सादरमभाषि । स्थविरे का त्वम् । एतस्मिन्नटवीमध्ये बालकमुद्दहन्ती  
किमर्थमायासेन भ्रमसीति । वृद्धयाप्यभाषि । मुनिवर कालयवन-  
नाम्नि द्वीपे कालगुप्तो नाम धनाव्यो वैश्वर कश्चिदस्ति । तन्नन्दिनी  
नयनानन्दकारिणी सुहृत्ता नामेतस्माद् द्वीपादागतो मगधनाथमन्त्रि-  
सभवो रत्नोद्भवो नाम रमणीयगुणलयो व्यवहार्युपयेमे । कालक्रमेण  
नताङ्गी गर्भिणी जाता । तत सोदरविनीकनकुतूहलेन रत्नो-  
द्भवस्तया सह प्रवहणमारुह्य पुष्यपुरमभिप्रतस्ये । कञ्चोलभानिका-  
भिहत पीत समुद्राभ्रम्यमज्जत् । ता ललना वात्रीभावेन कल्पिता-  
ह काराभ्यामुद्दहन्ती फलात्मिकमधिरुह्य दैवगत्या तीरभूमिमगमम् ।  
सुहृज्जनपरिवृतो रत्नोद्भवस्तत्र निमग्नो वा केनोपायेन तीरमगमद्वा न  
जानामि । क्लेशस्य परा काष्ठामधिगता सुहृत्तास्मिन्नटवीमध्येऽप्य  
सुतमसूत । प्रसववेदनया विचेतना सा प्रच्छाद्यगीतले तरुतले निव  
सृति । विजने वने स्थातुमशक्ततया जनपदगामिन मार्गमन्वेष्टु  
चुदुराक्तया मया विवशायास्तन्मया समीपे बालक निचिप्य गन्तुमनु-  
चितमिति कुमारोऽप्यानायीति । तस्मिन्नेव क्षणे वन्द्यो वारण कश्चि  
ददृश्यत । त विलोक्य भीता सा बालक निप्रात्य प्राद्वयत् । अह  
समीपलतागुन्मके प्रविश्य परीक्षमाणोऽतिष्ठम् । निपतित बालक-  
माददति गजपती वारणो भीमरवो मद्यायत्नि न्यपतत् । भयाकुचेन

दन्तावलेन भ्रष्टिति वियति समुत्पात्यमानो बालको न्यपतत् । स चोन्न-  
ततरुशाखासमासीनेन वानरेण केनचित् पक्षफलबुद्धया परिगृह्य फले-  
तरतया विततस्कन्धमूले निक्षिप्तोऽभूत् । सोऽपि मर्कटः क्वचिदगात् ।  
केसरिणा करिण निहत्य कुत्रचिदगामि । लतागृहान्निर्गतोऽहमपि  
बालक शनैरवनीरुद्धादवतार्य वनान्तरे वनितामश्विप्याविलोक्यैव  
मानीय गुरुवे निवेद्य तन्निर्देशेन भवन्निकटमानीतवानस्मीति ।

### ३ । सिंहशशकयोः ।

कस्मिंश्चिद्वने भासुरको नाम सिंह, प्रतिवसति स्म । अथासौ  
वीर्यातिरेकान्नित्यमेवानेकान् मृगशशकादीन् व्यापादयन्नीपरराम ।  
अथान्येद्युस्तद्वनजा, सर्वे सारङ्गवराहमहिषशशकादयो मिलित्वा  
तमभ्रुपेत्य प्रोचुः । स्वामिन् किमनेन सकलमृगवधेन नित्यमेव  
यतस्तवैकेनापि मृगेण दृष्टिर्भवति । तत् क्रियतामस्माभिः सह  
समयधर्म । अद्य प्रभृति तवात्रोपविष्टस्य जातिक्रमेण प्रतिदिन-  
मेको मृगो भक्षणार्थं समेष्यति । एव कृते तव तावत् प्राण्यान्ना  
क्लेश विनापि भविष्यत्यस्माकं पुनः सर्वोच्छेदनं न स्यात् । तदेव  
राजधर्मोऽनुष्ठीयताम् । उक्तं च ।

शनैः शनैश्च यो राज्यमुपभुङ्क्ते यथाबलम् ।

रसायनमिव प्राज्ञः स पुष्टिं परमां व्रजेत् ॥

अथ तेषां तद्वचनमाकर्ण्य भासुरक आह । अहो मत्पुत्रमभिहितं  
भवद्भिः । परं यदि ममोपविष्टस्यात्र नित्यमेव नैकं श्वापदं समा-  
गमिष्यति तन्नूनं सर्वानपि भक्षयिष्यामि । अथ ते तथैव प्रतिज्ञाय  
निर्वृतिभाजस्तत्रैव वने निर्भया पर्यटन्ति । एकश्च प्रतिदिनं तेषां  
मध्यात् तस्य भोजनार्थं मध्याह्नसमये क्रमेणोपतिष्ठते । अथ  
कदाचिज्जातिक्रमाच्छशकस्यावसरः समायात । स समस्तमृगैः  
प्रेरितोऽनिच्छन्नपि मन्दं मन्दं गत्वा तस्य वधोपायं चिन्तयन्  
वेलातिक्रमं कृत्वा व्याकुलितहृदयो यावद्गच्छति तावन्मार्गं गच्छता

कृप, संदृष्ट । यावत् कृपोपरि याति तावत् कृपमध्य आत्मन' प्रति-  
 विश्व ददर्श । दृष्ट्वा च तेन हृदये चिन्तित यद्भव्य उपायोऽस्ति ।  
 अह भासुरक प्रकोप्य स्वबुद्ध्यास्मिन् कृपे पातयिष्यामि । अथासौ  
 दिनशेषे भासुरकसमीप प्राप्त । सिंहोऽपि विलातिक्रमेण क्षुत्क्षाम-  
 कण्ठ, कोपाविष्ट सृक्कणी परिलेलिह्यमानो व्यचिन्तयत् । अहो  
 प्रातराहाराय नि,मत्त्व वन मया कर्तव्यम् । एव चिन्तयतस्तस्य  
 शशको मन्द मन्द गत्वा प्रणम्य तस्याग्रे स्थित । अथ त प्रज्वलिता-  
 त्मा भासुरको भतर्सयन्नाह । रे शशकाधम एकतस्तावत् त्व लघु  
 प्राप्तोऽपरतो विलातिक्रमेण । तदस्मादपराधात् त्वा निपात्य प्रात  
 सकलान्यपि सृगकुलान्युच्छेदयिष्यामि । अथ शशक सविनय प्रोवाच ।  
 स्वामिन् नापराधो मम न च सत्त्वाना तच्छ्रयता कारणम् ।  
 सिंह आह । सत्वर निवेदय यावन्मम दृष्टान्तर्गतो न भविष्यसीति ।  
 शशक आह । समस्तसृगैरव्य जातिक्रमेण मम लघुतरस्य प्रस्ताव  
 विज्ञाय पञ्चभि शशकै सह्राह प्रेषित । ततश्चाहमागच्छन्नन्तराले  
 महता केनचिदपरेण सिङ्गेन विवराद्भिर्गत्याभिहित । रे क्व प्रस्थिता  
 ययम् । अभीष्टदेवता स्मरत । ततो मयाभिहितम् । वय स्वामिनो  
 भासुरकसिंहस्य सकाश आहारार्थ समयधमेण गच्छाम । ततस्ते-  
 नाभिहितम् । यद्येव तर्हि मदीयमेतद्धन मया सह समयधर्मेण  
 समस्तैरपि श्वापदैर्वर्तितव्यम् । चौररूपी स भासुरक । अथ यदि  
 सोऽत्र राजा ततो विश्वासस्थाने चतुर शशकानत्र धृत्वा तमाह्वय  
 द्रुततरमागच्छ येन य कश्चिदावयोर्मध्यात् पराक्रमेण राजा भविष्यति  
 सर्वानितान् भक्षयिष्यतीति । ततोऽह तेनादिष्ट, स्वामिसकाशमभ्या  
 गत । एतद्द्वेलाव्यतिक्रमकारणम् । तदत्र स्वामी प्रमाणम् । तच्छ्रुत्वा  
 भासुरक आह । यद्येव तत् सत्वर दर्शय मे त चौरसिंह वेनाह  
 सृगकोप तस्योपरि क्षिप्त्वा स्वस्यो भवामि । शशक आह । यद्येव  
 तर्थागच्छतु स्वामी । ण्वसुक्ताग्रे व्यवस्थित । ततश्च तेनागच्छता

वयं परमाद्भुतामिष्टिं त्वत्कृते विधास्यामो येन गर्भधारणज खेद  
 न समवाप्स्यसि । ततो वर्षशते पूर्णे तस्य राज्ञो वाम पार्श्वे  
 विनिर्भेद्य महातेजा, सुतो निश्चक्राम न च युवनाश्व नरपतिं  
 मृतुरराविशत् । तं पुत्रं दिदृक्षुः शक्रस्तत्रोपागमत्त देवा अपृच्छन्  
 किं धाम्यत्वय पुत्र इति । ततः शक्रस्तस्यास्ये प्रदेशिनी समभिसदधे  
 मामय धाम्यतीतुरक्तवाद्य ।

मामय धाम्यतीत्येव भाषिते चैव वज्रिणा ।

मान्धातेति च नामाम्य चक्रुः सिन्द्रा दिवोकस ॥

सोऽयं मान्धातातितीजस्वी नृपोऽप्रतिहतचक्र राज्यं बुभुजे ॥

६ । कुमारं चन्द्रापीडं प्रति महाराजाज्ञा ॥

कुमार महाराज समाज्ञापयति । पूर्णानो मनोरथा । अधीतानि  
 शास्त्राणि । शिक्षिता सकला कला । गत सर्वास्वायुधविद्यासु परां  
 प्रतिष्ठाम् । अनुमतोऽसि विनिर्गमाय विद्यागृहात् सर्वाचार्य्यं । उप  
 गृहीतश्चित्तं गन्धगजकुमारकमिव वारिवन्धाद्विनिर्गतमवगतसकल  
 कलाकलापं पौरुषमासीशशिनमिव नवीद्रत पश्यतु त्वा जन । व्रजन्तु  
 सफलतामतिचिरदर्शनोत्कण्ठितानि लोकलोचनानि । दर्शनं प्रति ते  
 समुत्सुकान्यतीव सर्वाण्यन्त पुराणि । अयमेव भवतो दशमं सवत्सरो  
 विद्यागृहमधिवसत । प्रविष्टोऽसि षष्ठमनुभवन् वर्षम् । एव स-  
 पिण्डितेनामुना षोडशेन प्रवर्धसे । तदद्यप्रभृति निर्गत्य दर्शनोत्सु-  
 काभ्यो दत्त्वा दर्शनमखिलमाहभ्योऽभिवाद्य च गुरुनपगतनि-  
 यन्त्वणो यथासुखमनुभव राज्यसुखानि नवयौवनललितानि च । स-  
 मानय राजलोकम् । पूजय द्विजातीन् । परिपालय प्रजा । आनन्दय  
 बन्धुवर्गम् । अयं च त्रिभुवनैकरत्नमनिलगरुडसमजव इन्द्रायुध-  
 नामा तुरङ्गम प्रेषितो महाराजेन द्वारि तिष्ठति । एष खलु देवस्य  
 पारसीकाधिपतिना त्रिभुवनाश्चर्यमिति कृत्वा “जलधितलादुत्थितम-

योनिजमिदमभ्यरत्नमासादित मया महाराजाधिरोहणयोग्यम्” इति  
 मदिश्य प्रहित । दृष्ट्वा च निवेदित लक्षणविद्धि । “देव यान्युच्चै-  
 श्वस श्रूयन्ते लक्षणानि तेरयमुपेत । नैव विधो भूतो भावी वा  
 तुरङ्गम” इति । तदयमनुगृह्यतामधिरोहणेन । इदं च मूर्धाभिषिक्त-  
 पार्थिवकुलप्रसूताना विनयीपपन्नाना शूराणामभिरूपाणा कलावता  
 च कुलक्रमागताना राजपुत्राणा सहस्र परिचारार्थमनुप्रेषित  
 तुरङ्गमारूढं हारि प्रणामलालस प्रतिपालयति । इत्यभिधाय विरत-  
 वचसि बलाहके चन्द्रापीड पितुराज्ञा शिरसि कृत्वा नवजलधरध्वान-  
 गम्भीरया गिरा “प्रवेश्यतामिन्द्रायुध” इति निर्जिगमिपुरादिदेश ॥

### ७ । चन्द्रापीड प्रति शुकनासोपदेशः ।

समुपस्थितयौवराज्याभिषेक चन्द्रापीड कदाचिद्दर्शनार्थमाग-  
 तमारूढविनयमपि विनीततरमिच्छुःशुकनासोऽमात्य सविस्तर-  
 सुवाच । तात चन्द्रापीड विदितवेदितव्यम्याधीतसर्वशास्त्रस्य ते  
 नाल्पमप्युपदेष्टव्यमस्ति । केवल च निसर्गत एवाभानुभेद्यमरत्ना  
 लोकेच्छेद्यमप्रदीपप्रभापनेयमतिगहन तमो यौवनप्रभवम् । अपरि-  
 षामोपशमो दारुणो लक्ष्मीमट । विषमो विषयविपास्वादमोह ।  
 नित्यमस्त्रानशौचवधो रागमलावलेपः । घोरं च राज्यसुखनिद्रा  
 भवतीति विस्तरेणाभिधीयसे । गर्भश्वरत्वमभिनवयौवनत्वमप्रतिमरू-  
 पत्वममानुषशक्तित्व चेति महतीय खल्वनर्थपरपरा सर्वा । अवि-  
 नयानामेकैकमप्येषामायतन किमुत समवाय । यौवनारम्भे च  
 प्राय शास्त्रजलप्रक्षालननिर्मलापि कालुषामुपयाति बुद्धि । भवा-  
 दृशा एव भवन्ति भाजनानुपदेशानाम् । अपगतमले हि मनसि  
 स्फटिकमणाविव रजनिकरगभस्तयो विशन्ति सुखेनोपदेशगुणा ।  
 अयमेव चानास्वादितविषयरसस्य ते काल उपदेशस्य । गुरुपदेशश्च  
 नाम पुरुषाणामखिलमलप्रक्षालनक्षममजल स्नानम् । विशेषेण  
 राजाम् । विरला हि तेषामुपदेष्टारः । आलोकयतु तावत् कल्याणा-



भेनिवेशी लक्ष्मीमेव प्रथमम् । इयं हि लक्ष्मी क्षीरसागरात् पारि-  
जातपल्लवेभ्यो रागमिन्दुशकलादेकान्तवक्रतामुच्चैः श्रवसश्चञ्चलतां  
कालकूटान्मोहनशक्ति मदिराया मट कौस्तुभमणेनेष्टुर्यमित्येतानि  
सहवासपरिचयवशाद्विरहविनोदचिह्नानि गृहीत्वैवोद्गता । इयमनार्या  
लब्धापि खलु दुःखेन परिपाल्यते । परिपालितापि प्रपलायते । न  
परिचय रक्षति । नाभिजनमीक्षते । न रूपमालोकयते । न कुल-  
क्रममनुवर्तते । न शील पश्यति । न वेदग्ध्र गणयति । न श्रुतमा-  
कर्षयति । न धर्ममनुसृजते । न त्यागमाद्रियते । न विशेषज्ञता  
विचारयति । नाचार पालयति । तदस्मिन् महामोहकारिणि यौवने  
कुमार तथा प्रयतेथा यथा नोपहस्यसे जनैर्न निन्द्यसे साधुभिर्न धिक्-  
क्रियसे गुरुभिर्नोपालभ्यसे सुहृद्भिर्न शोच्यसे विद्वद्भिः । काम भवान्  
प्रकृत्यैव धीर पित्रा च समारोपितसस्कारः । तरलहृदयमप्रतिबुद्ध  
च मदयन्ति धनानि तथापि भवद्गुणसतोपो मामेव सुखरीकृतवान् ।  
इदमेव च पुनः पुनरभिधीयसे विद्वांसमपि सचेतनमपि महासत्त्व-  
मप्यभिजातमपि धीरमपि प्रयत्नवन्तमपि पुरुषमिय दुर्विनीता खली-  
करोति लक्ष्मीरिति । सर्वथा कल्याणैः पित्रा क्रियमाणमनुभवतु  
भवान्नवयौवराज्याभिषेकमङ्गलम् । कुलक्रमागतामुद्दह पूर्वपुरुषैरूढा  
धुरम् । अवनमय द्विपता शिरसि । उन्नमय स्वबन्धुवर्गम् । अभि-  
षेकानन्तरं च प्रारब्धद्विजय परिभ्रमन् विजितामपि तव पित्रा  
सप्तद्वीपभूषणा पुनर्विजयस्व वसुन्धराम् । अयं च ते काल प्रतापसा-  
रोपयितुम् । आरूढप्रतापो राजा त्रैलोक्यदर्शीव सिद्धादेशो भवति ।  
इत्येतावदभिधायोपशशाम ॥

८ । ब्रह्मज्ञानविषयकः गुरुशिष्यसंवादः ।

श्रुतिस्मृतिभिर्गृहीतपरमात्मलक्षणं शिष्यः ससारसागरादुत्तितीर्षु  
पृच्छेत्—कास्त्वमसि मोक्ष्येति ।

स यदि ब्रूयात्—ब्राह्मणपुत्रोऽदोन्वयो ब्रह्मचार्यास गृहस्थो वा ।  
इदानीमस्मि परमहसपरिव्राट् ससारमागराज्जन्ममृत्युमहायाहादुत्ति-  
तौर्पुरिति ।

आचार्या ब्रूयात्—इहैव तव सोम्य मृतस्य शरीर वयोभिरद्यते  
मृद्गाव वापद्यते । तत्र कथं ससारादुद्धर्तुमिच्छसीति । न हि नद्या  
श्वरे कृत्स्ने भस्मीभूते नद्या पार तरिष्यसीति ।

स यदि ब्रूयात्—अन्योऽहं शरीरात् । शरीर तु जायते म्रियते  
वयोभिरद्यते मृद्गावमापद्यते शम्भान्यादिभिर्य विनाश्यते व्याध्यादि-  
भिर्य प्रयुज्यते । तस्मिन्नहं स्वकृतधर्माधर्मवशात् पक्षी नीडमिव  
प्रविष्ट एन पुन शरीरविनाशे धर्माधर्मवशात् शरीरान्तरं याम्यामि  
पूर्वनीडविनाशे पक्षीव नीडान्तरम् । तस्मान्नित्य एवाहं शरीरा-  
दन्य । शरीराद्यागच्छन्तपगच्छन्ति च वासासीय पुरुषस्येति ।

आचार्या ब्रूयात्—साध्ववादी । समग्रं पश्यसि कथं मृपा-  
वादीर्ब्राह्मणपुत्रोऽदोन्वयो ब्रह्मचार्यास गृहस्थो वा इदानीमस्मि परम-  
हसपरिव्राडिति ।

स यदि ब्रूयात्—भगवन् कथमहं मृपावादिपसिति ।

त प्रति ब्रूयादाचार्य —यतस्त्व भिन्नजात्यन्वयसंस्कार शरीर जात्य-  
न्वयवर्जितम्यात्मन प्रत्यभ्यज्ञामोर्ब्राह्मणपुत्रोऽदोन्वय इत्यादिना  
गक्येनेति ।

स यदि पृच्छेत्—कथं भिन्नजात्यन्वयसंस्कार शरीर कथं वाहं  
अत्यन्वयसंस्कारवर्जित इति ।

आचार्या ब्रूयात्—शृणु सोम्य यद्येदं शरीर त्वत्तो भिन्न भिन्न-  
जात्यन्वयसंस्कार त्वं च जात्यन्वयसंस्कारवर्जित इत्युक्त्वा त स्मारयेत्  
परमात्मलक्षणं श्रुतिस्मृत्युक्तमिति ॥

आह्लाटकत्व च निशाधिनाथा-

दादाय राज्ञ क्रियते शरीरम् ॥ २ ॥

सर्वदेवमयो राजा मनुना सप्रकीर्तित ।

तस्मात्त देववत्पश्येन्न व्यलीकेन कर्हिचित् ॥ ३ ॥

सर्वदेवमयसप्रापि विशेषो नृपतेरयम् ।

शुभाशुभफल सद्यो नृपाद्देवाद्भवान्तरे ॥ ४ ॥

अपि स्वल्पममत्र य पुरो वदति भूभुजाम् ।

देवाना च विनश्येत स द्रुत सुमहानपि ॥ ५ ॥

अराजके हि लोकेऽस्मिन् सर्वतो विद्रुते भयात् ।

रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत् प्रभु ॥ ६ ॥

बालोऽपि नावमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिप ।

महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति ॥ ७ ॥

एकमेव दहत्यग्निर्नर दुरुपसपिणम् ।

कुल दहति राजाग्नि सपशुद्रव्यसचयम् ॥ ८ ॥

११ । अराजकं राष्ट्रम् ।

( रामायण—अयोध्याकाण्ड—सर्ग ६७ )

इक्ष्वाकूणामिहादैव कश्चिद्राजा विधीयताम् ।

अराजकं हि नो राष्ट्रं विनाशं समवाप्नुयात् ॥ १ ॥

नाराजके जनपदे बीजमुष्टिं प्रकीर्यते ।

नाराजके पितुः पुत्रो भार्या वा वर्तते वशे ॥ २ ॥

अराजके धनं नास्ति नास्ति भार्याप्यराजके ।

इदमत्याहितं चान्यत् कुतः सतप्रमराजके ॥ ३ ॥

नाराजके जनपदे धनवन्तः सुरक्षिताः ।

शेरते विवृतद्वारा, कृपिगोरक्षजीविनः ॥ ४ ॥

नाराजके जनपदे बहुघण्टा विपाणिनः ।

अटन्ति राजमार्गेषु कुञ्जरा पट्टिहायनाः ॥ ५ ॥

नाराजकी जनपदे वणिजो दूरगामिन ।  
 गच्छन्ति चेममध्वान बहुपण्यसमाचिता ॥ ६ ॥  
 यथा ह्यनुदका नद्यो यथा वाप्यवृण वनम् ।  
 अगोपाला यथा गावस्तथा राष्ट्रमराजकम् ॥ ७ ॥  
 नाराजकी जनपदे स्वक भवति कस्यचित् ।  
 मत्स्या इव जना नित्यं भक्षयन्ति परस्परम् ॥ ८ ॥  
 राजा सत्यं च धर्मश्च राजा कुलवता कुलम् ।  
 राजा माता पिता चैव राजा हितकरो नृणाम् ॥ ९ ॥  
 यमो वेश्रवण शत्रो वरुणश्च महाबल ।  
 विशिष्यन्ते नरेन्द्रेण वृत्तेन महता तत ॥ १० ॥  
 अहो तम इवेद स्यान्न प्रजायेत किञ्चन ।  
 राचा चेन्न भवेत्लौके विभजन् साध्वसाधुनी ॥ ११ ॥

## १२ । पञ्चवटी ।

( रामायण—अरख्यकाण्ड—सर्ग १५ )

तत पञ्चवटी गत्वा नानाव्यालम्नगायुताम् ।  
 उवाच लक्ष्मण रामो भ्रातर दीप्ततेजसम् ॥ १ ॥  
 आगता स्म यथोद्दिष्ट य देश मुनिरब्रवीत् ।  
 अथ पञ्चवटीदेश सौम्य पुष्पितकानन ॥ २ ॥  
 सर्वतश्चार्यता दृष्टि कानने निपुणो ह्यसि ।  
 आश्रम कतरम्भिन्नो देशे भवति ममत ॥ ३ ॥  
 रमन्ते यत्र वैदेही त्वमह चैव लक्ष्मण ।  
 तादृशी दृश्यता देश सनिष्कष्टजलाशय ॥ ४ ॥  
 एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मण सयताञ्जनि ।  
 सीतासमच्च काकुत्स्थमिद वचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥

परवानस्मि काकुत्स्थ त्वयि वर्षशत स्थिते ।  
 स्वयं तु रुचिरे देशे क्रियतामिति मा वद ॥ ६ ॥  
 सुप्रीतस्तेन वाक्येन लक्ष्मणस्य महाद्युतिः ।  
 विमृशन् रोचयामास देश सर्वगुणान्वितम् ॥ ७ ॥  
 स त रुचिरमाक्रम्य देशमाश्रमकर्मणि ।  
 हस्ते गृहीत्वा हस्तेन रामः सौमित्रिमब्रवीत् ॥ ८ ॥  
 अयं देशः समः श्रीमान् पुष्पितैस्तरुभिर्वृतः ।  
 इहाश्रमपद रम्यं यथावत् कर्तुमर्हसि ॥ ९ ॥  
 द्वयमादित्यसकाशे पद्मे, सुरभिगन्धिभिः ।  
 अदूरे दृश्यते रम्या पद्मिनी पद्मशोभिता ॥ १० ॥  
 यथाख्यातमगस्त्रेण मुनिना भावितात्मना ।  
 इयं गोदावरी रम्या पुष्पितैस्तरुभिर्वृता ॥ ११ ॥  
 हंसकारण्डवाकीर्णा चक्रवाकोपशोभिता ।  
 नातिदूरे न चासन्ने मृगयूथनिपीडिता ॥ १२ ॥  
 मयूरनादिता रम्या प्राशवो बहुकन्दराः ।  
 दृश्यन्ते गिरयः सौम्या फुल्लैस्तरुभिरावृता ॥ १३ ॥  
 इदं पुण्ड्रमिदं रम्यमिदं बहुमृगद्विजम् ।  
 इह वत्स्यामः सौमित्ते सार्धमितेन पक्षिणा ॥ १४ ॥  
 एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मण परवीरहा ।  
 अचिरेणाश्रमं भ्रातृशकारं सुमहाबलं ॥ १५ ॥

१३ । श्रीनिवासस्थानानि ।

( महाभारत—अनुशासनपर्व—३२ अध्याय )

युधिष्ठिर उवाच ।

कीदृशे पुरुषे तात स्त्रीषु वा भरतपते ।

श्री पद्मा वसते नित्यं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥

भीष्म उवाच ।

अत्र ते वर्षयिष्यामि यथावृत्तं यथाश्रुतम् ।

रुक्मिणी देवकीपुत्रसन्निधौ पर्यपृच्छत ॥ २ ॥

नारायणस्याङ्गता ज्वलन्तीं दृष्ट्वा श्रियं पद्मसमानवक्त्राम् ।

कौतूहलाद्विस्मितचारुनेत्रा पप्रच्छ माता मकरध्वजस्य ॥ ३ ॥

कानीह भूतान्युपसेवमे त्वं सतिष्ठसे कानि च सेवसे त्वम् ।

तानि त्रिलोकेश्वरभूतकान्ते तत्त्वेन मे ब्रूहि महर्षिकन्ये ॥ ४ ॥

एव तदा श्रीरभिभाषमाणा देव्या समक्षं गरुडध्वजस्य ।

उवाच वाक्यं मधुराभिधानं मनोहरं चन्द्रमुखी प्रमत्ना ॥ ५ ॥

श्रीरुवाच ।

वसामि नित्यं सुभगे प्रगल्भे दक्षे नरे कमणिं वर्तमानं ।

अक्रोधने देवपरे कृतघ्ने जितेन्द्रिये नित्यमुदीर्णसत्त्वे ॥ ६ ॥

नाकर्मशीले पुरुषे वसामि न नास्तिके सांकरिके कृतघ्ने ।

न भिन्नवृत्ते न नृशसहृत्ते न चाविनीते न गुरुष्वसूयके ॥ ७ ॥

यं चाल्पतेजोबलसत्त्वमाना, क्लिश्यन्ति कुप्यन्ति च यत्र तत्र ।

न चैव तिष्ठामि तथाविधेषु नरेषु सगुप्तमनीरथेषु ॥ ८ ॥

स्वधर्मशीलेषु च धर्मवित्सु वृद्धोपसेवानिरते च दान्ते ।

कृतात्मनि ज्ञान्तिपरे समर्थे ज्ञान्तासु दान्तासु तथाबलासु ॥ ९ ॥

स्वाध्यायनित्येषु मदा द्विजेषु क्षत्रे च धर्माभिरते सदैव ।

वेश्ये च कृष्याभिरते वसामि शूद्रे च शूत्रं पणनित्ययुक्ते ॥ १० ॥

१४ । दम्पतीस्त्रेहः ।

( महाभारत—शान्तिपर्व—अध्याय १४४ )

भीष्म उवाच ।

अथ वृक्षस्य शाखाया विहङ्गं ससृष्टजनः ।

दीर्घकानोपितो राजस्तत्र चित्रतनूरुहः ॥ १ ॥

तस्य कल्यगता भार्या चरितुं नाभ्यवर्तत ।  
 प्राप्ता च रजनी दृष्ट्वा स पत्नौ पर्यतप्यत ॥ २ ॥  
 वातवर्षं महच्चामीत्रं चागच्छति मे प्रिया ।  
 किं नु तत्कारणं येन साद्यापि न निवर्तते ॥ ३ ॥  
 अपि स्वस्ति भवेत्तस्या, प्रियाया मम कानने ।  
 तथा विरहितं ह्रीदं शून्यमद्य गृहं मम ॥ ४ ॥  
 पुत्रपोत्रवधूभृत्यै राकीर्णमपि सर्वत ।  
 भार्याहीनं गृहस्थस्य शून्यमेव गृहं भवेत् ॥ ५ ॥  
 न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते ।  
 गृहं तु गृहिणीहीनमरण्यमदृशं मतम् ॥ ६ ॥  
 यदि सा रक्तनेत्रान्ता चित्राङ्गी मधुरस्वरा ।  
 अद्य नाभ्येति मे कान्ता न कार्यं जीवितेन मे ॥ ७ ॥  
 न भुङ्क्ते मय्यभुङ्क्ते या नास्नाति स्नाति सुव्रता ।  
 नातिष्ठतुरपतिष्ठेत श्रिते च श्रयिते मयि ॥ ८ ॥  
 हृष्टे भवति सा हृष्टा दुःखिते मयि दुःखिता ।  
 प्रोषिते दीनवदना क्रुद्धे च प्रियवादिनी ॥ ९ ॥  
 पतिधर्मव्रता साध्वी प्राणैर्भ्योऽपि गरीयसी ।  
 यस्य स्यात्तादृशी भार्या वन्यं स पुरुषो भुवि ॥ १० ॥  
 सा हि श्रान्तं क्षुधार्तं च जानीते मा तपस्विनी ।  
 अनुरक्ता स्त्रियै चैव भक्ता स्निग्धा यशस्विनी ॥ ११ ॥  
 वृक्षमूलेऽपि दयिता यस्य तिष्ठति तद् गृहम् ।  
 प्रासादोऽपि तथा हीनं कान्तारं इति निश्चितम् ॥ १२ ॥  
 धर्मार्थकामकालेषु भार्या पुंसः सहायिनी ।  
 विदेशगमने चान्यं सैव विश्वासकारिका ॥ १३ ॥  
 भार्या हि परमो ह्यर्थः पुरुषस्येह पृथ्वते ।  
 असहायस्य लोकेऽन्निर्मलोकयात्रासहायिनी ॥ १४ ॥

तथा रोगाभिभूतस्य नित्यं क्वच्छगतस्य च ।  
 नास्ति भार्यासम मित्रं नरम्यार्तस्य भेषजम् ॥ १५ ॥  
 नास्ति भार्यासमो बन्धुर्नास्ति भार्यासमा गति ।  
 नास्ति भार्यासमो लोके सहायो धर्मसग्रहं ॥ १६ ॥  
 यस्य भार्या गृहे नास्ति साध्वी च प्रियवादिनी ।  
 अरण्यं तेन गन्तव्यं यद्यारण्यं तथा गृहम् ॥ १७ ॥

भीष्म उवाच ।

एव विलपतस्तस्य द्विजसगर्तस्य वै सदा ।  
 गृहीता शकुनिघ्नेन भार्या श्रुत्वाव भारतीम् ॥ १८ ॥  
 कपोत्युवाच ।

अहोऽतीव सुभाग्याह यस्या मे दयितं पति ।  
 असती वा सती वापि गुणानिव प्रभाषते ॥ १९ ॥  
 सा हि स्त्रीत्ववगन्तव्या यस्या भर्ता तु तुष्यति ।  
 तुष्टे भर्तरि नारीणां तुष्टा स्युः सर्वदेवता ।  
 अग्निसाक्षिकमप्येतद् भर्ता हि देवत परम् ॥ २० ॥  
 दावाग्निनेत्र निर्दग्धा सपुष्पस्तवका लता ।  
 भस्मीभवति सा नारी यस्या भर्ता न तुष्यति ॥ २१ ॥

१५ । संयमः ।

( महाभारत—शान्तिपर्व—अध्याय ३३१ )

भीष्म उवाच ।

न ह्यायनेन पलितेन वित्तेन च बन्धुभिः ।  
 ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचान् स नो महान् ॥ १ ॥  
 तपोमूलमिदं सर्वं यन्मा पृच्छसि पाण्डव ।  
 तदिन्द्रियाणि संयम्य तपो भवति नान्यथा ॥ २ ॥



इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसशयम् ।  
 सनियम्य तु तान्येव मिद्धिमापीति मानवः ॥३॥  
 अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च ।  
 योगस्य कल्पया तात न तुल्यं विद्यते फलम् ॥४॥

### १६ । आपदि शोकत्यागः ।

( महाभारत—शान्तिपर्व—अध्याय २३३ )

सतापाद् भ्रश्यते रूपं सतापाद्भ्रश्यते श्रियः ।  
 संतापाद्भ्रश्यते चायुर्धर्मश्चैव सुरेश्वरः ॥ १ ॥  
 विनीय खलु तद् दुःखमागतं वै मनन्सुखम् ।  
 ध्यातव्यं मनसा हृद्यं कल्याणं सविजागता ॥ २ ॥  
 यथा यथा हि पुरुषः कल्याणे कुरुते मनः ।  
 तथैवास्य प्रसिध्यन्ति सर्वार्थाः नात्र शशयः ॥ ३ ॥

ऋषीन् देवान् महासुरान् त्रेविद्यहृद्वायु वने सुनीयः ।

का नापदो नोपनमन्ति लोके परावरज्जास्तु न सभ्रमन्ति ॥४॥

न पण्डितः क्रुध्यति नाभिपद्यते न चापि ससीदति न प्रहृष्यति ।

न चार्थलच्छ्रव्यसनेषु शोचते स्थितः प्रकृत्या हिंसवानिवाचलः ॥५॥

यमर्थसिद्धिं परमां न हर्षयेत् तथैव काले व्यसनं न मोहयेत् ।

सुखं च दुःखं च तथैव मध्यमं निषेवते यः स धुरंधरो नरः ॥६॥

या यामवस्थां मुरुषोऽधिगच्छेत् तस्या रमेतापरितश्चमानः ।

एव प्रवृद्धं पुण्ड्रन्मनोजं सतापनीयं सकलं शरीरात् ॥ ७ ॥

लब्धव्यान्धेव लभते गन्तव्यान्धेव गच्छति ।

प्राप्तव्यान्धेव चाप्नोति दुःखानि च सुखानि च ॥ ८ ॥

एतद्विदित्वा कात्स्न्येन यो न मुह्यति मानवः ।

कुशली सर्वदुःखेषु स वै सर्वधनी नरः ॥ ९ ॥

१७ । संतोषः ।

( महाभारत शान्तिपर्व-अध्याय ३३८ )

शोकस्थानमहस्त्राणि भयस्थानशतानि च ।  
दिवसे दिवसे मूढमाविगन्ति न पण्डितम् ॥ १ ॥  
मृत वा यदि वा नष्ट योऽतीतमनुशोचति ।  
दु खेन लभते दु खं ह्यावन्र्थो प्रपद्यते ॥ २ ॥  
भैषज्यमेतद् दु खस्य यदेतन्नानुचिन्तयेत् ।  
चिन्त्यमानं हि न व्येति भूयश्चापि प्रवर्धते ॥ ३ ॥  
प्रज्ञया मानसं दु खं हन्याच्छारीरमौषधैः ।  
एतद्विज्ञानसामर्थ्यं न बालैः समतामियात् ॥ ४ ॥  
अनित्यं यौवनं रूपं जीवितं द्रव्यसचयं ।  
आरोग्यं प्रियससर्गो गृध्येत्तत्र न पण्डित ॥ ५ ॥  
सुखाद् बहुतरं दु खं जीविते नात्र सगम्यं ।  
स्निग्धत्वं चेन्द्रियाद्येषु मोहान्मरणमप्रियम् ॥ ६ ॥  
अन्यामन्या धनावस्था प्राप्य वैशेषिकीं नरः ।  
अदृक्ता यान्ति विध्वंसं सतोषं यान्ति पण्डिता ॥ ७ ॥  
सर्वे क्षयान्ता निचया पतनान्ता समुच्छ्रया ।  
सयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवितम् ॥ ८ ॥  
अन्तो नास्ति पिपासायास्तुष्टिस्तु परमं सुखम् ।  
तस्मात् सतोषमेवेह वनं पश्यन्ति पण्डिता ॥ ९ ॥  
निमेषमात्रमपि हि वयो गच्छन्न तिष्ठति ।  
स्वशरीरेष्वनित्येषु नित्यं किमनुचिन्तयेत् ॥ १० ॥  
अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः ।  
आत्मनैव सहायेन यश्चरेत् स सुखी भवेत् ॥ ११ ॥

१८ । आत्मज्ञानम्—कर्तव्यज्ञानम् ।

( महाभारत—शान्तिपर्व—अध्याय ३२६ )

किं ते धनेन किं बन्धुभिस्तु किं ते पुत्रैः, पुत्रक यो मरिष्यसि ।

आत्मानमन्विच्छ गुहा प्रविष्ट पितामहास्ते क्व गताश्च सर्वे ॥ १ ॥

श्वं कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्नं चापराह्निकम् ।

न हि प्रतीक्षते मृतुर' कृतं वास्य न वा कृतम् ॥ २ ॥

अनुगम्य विनाशान्ते निवर्तन्ते हि बान्धवा' ।

अग्नौ प्रक्षिप्य पुरुषं ज्ञातय सुहृदस्तथा ॥ ३ ॥

एवमभ्याहृते लोके कालेनोपनिपीडिते ।

सुमहद् धैर्यमालम्ब्य धमे सर्वात्मना कुरु ॥ ४ ॥

अथेस दर्शनोपाय समग्रयो वेत्ति मानवः ।

समग्रक् स्वधर्मं कृत्वेह परत्र सुखमश्नुते ॥ ५ ॥

न देहभेदे मरणं विजानता न च प्रणाशं स्वनुपालिते पथि ।

धर्मं हि यो वर्धयते स पण्डितो य एव धर्माच्चरते स दह्यते ॥ ६ ॥

यस्तु भोगान् परित्यज्य शरीरेण तपश्चरेत् ।

न तेन किञ्चिन्न प्राप्तं तन्मे बहुमतं फलम् ॥ ७ ॥

मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च ।

अनागतान्यतीतानि कस्य ते कस्य वा वयम् ॥ ८ ॥

अहमेको न मे कश्चिद्वाहमन्यस्य कस्यचित् ।

न तं पश्यामि यस्याहं तं न पश्यामि यो मम ॥ ९ ॥

न तेषां भवता कार्यं न कार्यं तव तैरपि ।

स्वकृतैस्तानि जातानि भवाश्चैव गमिष्यति ॥ १० ॥

इह लोके हि धनिना परोऽपि स्वजनायते ।

स्वजनस्तु दरिद्राणां जीवतामपि नश्यति ॥ ११ ॥

मंचिनोत्पशुभं कर्म कलत्रापेक्षया नर' ।

ततः क्षेममवाप्नोति परत्रेह तथैव च ॥ १२ ॥

पश्यति च्छिन्नभृत हि जीवनीक स्वकमणा ।  
 तत् कुरुष्व तथा पुत्र कृतस्त्र यत् समुदाहृतम् ॥ १३ ॥  
 तदेतत् सप्रदृश्यैव कर्मभूमि प्रपश्यत ।  
 शुभान्याचरितव्यानि परलोकमभोषता ॥ १४ ॥

धनेन किं यन्न ददाति नाश्रुते  
 बलेन किं येन रिपु न बाधते ।  
 श्रुतेन किं येन न धर्ममाचरेत्  
 किमात्मना यो न जितेन्द्रियो वशी ॥ १५ ॥

### १६ । अजविलापः ।

विमलाप स बाष्पगद्गद सहजामप्यपहाय धीरताम् ।  
 अभितप्तमयोऽपि मार्दव भजते कैव कथा शरीरिपु ॥ १ ॥  
 कुसुमान्यपि गात्रसगमात् प्रभवन्तप्रायुरपोहितु यदि ।  
 न भविष्यति हन्त साधन किमिवान्यत् प्रहरिष्यतो विधे ॥ २ ॥  
 अथवा मृदु वस्तु हिसितुं मृदुनैवारभते प्रजान्तक ।  
 हिमसेकविपत्तिरत्र मे नलिनो पूर्वनिदर्शन मता ॥ ३ ॥  
 म्रगिय यदि जीवितापहा हृदये किं निहिता न हन्ति माम् ।  
 विषमप्यमृतं क्वचिद् भवेदमृत वा विषमीश्वरेच्छया ॥ ४ ॥  
 अथवा मम भाग्यविप्लवादशनि कल्पित एष वेधसा ।  
 यदनेन तरुर्न पातित क्षपिता तद्विद्विपाश्रिता लता ॥ ५ ॥  
 मनसापि न विप्रिय मया कृतपूर्वं तव किं जहासि माम् ।  
 ननु शब्दपति चित्तेरह त्वयि मे भावनिबन्धना रति ॥ ६ ॥  
 शशिन पुनरेति शर्वं रौ दयिता इन्द्रचर पतत्रिणम् ।  
 इति तौ विरहान्तरक्षमौ कथमतप्रान्तगता न मा दहे ॥ ७ ॥  
 वनपल्लवसस्तरैऽपि ते मृदु दूयेत यदङ्गमर्षितम् ।  
 तद्विद्विपद्विषयते कथ वद वामोरु चिताधिरोहणम् ॥ ८ ॥

कलमन्यभृतासु भाषित कलहसोषु मदालस गतम् ।  
 घृपतीषु विलोलमौञ्जित पवनाधूतलतासु विभ्रमा ॥ ९ ॥  
 त्रिदिवोत्सुकयाप्यवेद्य मा निहिता सत्यममी गुणास्त्वया ।  
 विरहे तव मे गुरुव्यथ हृदय न त्वक्लस्वितु चमा ॥ १० ॥  
 धृतिरस्तमिता रतिश्रुता विरत गेयमृतुनिरुत्सव ।  
 गतमाभरणप्रयोजन परिशून्य शयनीयमद्य मे ॥ ११ ॥  
 गृहिणी सचिव' सखी मिथ, प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ ।  
 करुणाविमुखेन मृत्य ना हरता त्वा वद कि न मे हृतम् ॥ १२ ॥

२० । प्रकीर्णानि सुभाषितपद्यानि ।

येषा न विद्या न तपो न दान

ज्ञानं न शील न गुणो न धर्म, ।

ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता

मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥ १ ॥

यस्यैस्ति वित्त स नर कुलीन ।

स पण्डित, स श्रुतिमान् गुणज्ञ ।

स एव वक्ता स च दर्शनीय

सर्वे गुणा काञ्चनमाश्रयन्ते ॥ २ ॥

धनैर्निष्कुलीना कुलीना भवन्ति

धनैरापद मानवा निस्तरन्ति ।

धनेभ्य, परो बान्धवो नास्ति लोके

धनान्यर्जयध्व धनान्यर्जयध्वम् ॥ ३ ॥

वर वनं व्याघ्रगजेन्द्रसेवितं

द्रमालय पत्रफलाम्बुभोजनम् ।

दृष्टानि शय्या वसनं च'वल्कल

न बन्धुमधेय धनहीनजीवनम् ॥ ४ ॥

तानीन्द्रियाणि सकलानि तदेव कर्म

सा बुद्धिरप्रतिहता वचन तदेव ।

अर्थोपणा विरहित पुरुष स एव

अन्य क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ॥ ५ ॥

निन्दन्तु नोतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु

लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।

अद्वैत वा मरणमस्तु युगान्तरं वा

न्याय्यात् पय प्रविचलन्ति पद न धीरा ॥ ६ ॥

दानाय लक्ष्मी सुकृताय विद्या

चिन्ता परब्रह्मविनिश्चयाय ।

परोपकाराय वचांसि यस्य

वन्द्यस्त्रिलोकौतिलक स एव ॥ ७ ॥

ताप हन्ति सुख सूते जीवयत्युज्ज्वल यश ।

अमृतस्य प्रकारोऽय दुर्नभ साधुसुगम, ॥ ८ ॥

रसायनमयो शीता परमानन्ददायिनी ।

नानन्दयति क नाम साधुसङ्गतिचन्द्रिका ॥ ९ ॥

यः स्नान शीतसितया साधुसुगतिगङ्गया ।

किं तत्र दानै किं तीर्थं किं तपोभि किमध्वरै ॥ १० ॥

पात्र पवित्रयति नेव गुणान् क्षिणोति

स्नेह न सहस्रानि नापि मल प्रसूते ।

दोषावसानरुचिरश्चलता न धत्ते

सत्सु गम सुकृतसङ्गानि कोऽपि दीप, ॥ ११ ॥

उपकृतु प्रिय वक्तु कतु स्नेहमकृत्रिमम् ।

सज्जनाना स्वभावोऽय केनेन्दु शिगिरीकृतः ॥ १२ ॥

प्रथमवयसि पीत तीटमल्प स्मरन्त

शिरसि निहितभारा नालिकेरा नराणाम् ।

उदकममृतकल्पं ते ददुर्जीवितान्तं  
 न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति ॥ १३ ॥  
 उदयति यदि भानु पश्चिमे दिग्बिभागे  
 विकसति यदि पद्म पर्वतानां शिखाग्रैः ।  
 प्रचलति यदि मेरु शीतता याति वङ्गि—  
 न चलति खलु वाप्य सज्जनानां कदाचित् ॥ १४ ॥  
 परीक्षका यत्र न मन्ति देशे  
 नार्घन्ति रत्नानि समुद्रजानि ।  
 न वेत्ति यो यत्र गुणप्रकर्षं  
 स त सदा निन्दति नात्र चित्रम् ॥ १५ ॥

अतिपरिचयादवज्ञा सन्ततगमनादनादरो भवति ।  
 मलये भिन्नपुरन्ध्री चन्दनतरुकाष्ठमिन्धनं कुरुते ॥ १६ ॥  
 गच्छत स्खलनं कापि भवत्येव प्रमादत ।  
 हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति पण्डिता ॥ १७ ॥  
 विनयेन विना का श्रौ का निशा शशिना विना ।  
 रहिता सत्कवित्वेन कोटशी वाग्विदग्धता ॥ १८ ॥  
 गुरूपदेशादधैरुं शस्त्रं जडधियोऽप्यलम् ।  
 काव्यं तु जायते जातु कस्यचित् प्रतिभावत ॥ १९ ॥  
 नाकवित्वमधर्माय व्याधये दण्डनाय वा ।  
 कुक्कवित्वं पुन साक्षान्मृतिमाहुर्मनीषिण ॥ २० ॥  
 काव्यान्वपि यदीमानि<sup>१</sup> व्याख्यागम्यानि शास्त्रवत् ।  
 उत्सव सुधियामेव हन्त दुर्मधसो हता ॥ २१ ॥

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं  
 विद्या भोगकरौ यश्च सुखकरौ विद्या गुरुणा गुरुः ।

विद्या बभ्रुजनो विदेशगमने विद्या पर टैवत  
विद्या राजसु पूजिता न तु धन विद्याविहीन, पशु ॥ २२ ॥

कयूरा न विभूषयन्ति पुरुष हारा न चन्द्रोज्ज्वला  
न स्रान न विलेपन न कुसुम नालक्षता मूर्धजा ।  
वाणिका समलकरोति पुरुष या सस्कृता धार्यते  
जीयन्ते खलु भूषणानि सतत वारभूषण भूषणम् ॥ २३ ॥

साहित्यसंगीतकलाविहीन  
साक्षात् पशु पुच्छविपाणहीन ।  
दृण न खादन्नपि जीवमान—  
स्तद्वृ भागधेय परम पशूनाम् ॥ २४ ॥

इतरतापगतानि यथेच्छया  
वितर तानि सहे चतुरानन ।  
श्रसिक्रेपु रसाभिनिवेदन  
शिरमि मा लिख मा लिख मा लिख ॥ २५ ॥

श्रम्या सखे वधिरलोकनिवासभूमौ  
कि कृजितेन खलु कोकिल कोमलेन ।  
एते हि शैवहतकास्तदभिनवर्णा  
त्वा काकमेव कान्यन्ति कालानभिज्ञा ॥ २६ ॥

सपदि विलयमेतु राज्यलक्ष्मी—  
रूपरि पतन्त्वथवा ह्यपाणधारा ।  
अपहरतुतरा शिर ह्यतागती  
मम तु मनो न मनागपेतु धर्मात् ॥ २७ ॥

भवन्ति नन्नास्तरव फलोद्गमे-  
नैवाम्युभिर्भूरिविलम्बिनो घना, ।  
अनुब्रता सत्पुरुषा ससृष्टिभि  
स्रभाव एतं प परोपकारिणाम् ॥ २८ ॥



आरम्भगुवी क्षयिणी क्रमेण

लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात् ।

दिनस्य पूर्वार्धपरार्धभिन्ना

ह्यायेव मैत्री खलसज्जनानाम् ॥ २९ ॥

पापान्नियारयति योजयति हिताय

गुह्यं च गूहति गुणान् प्रकाटीकरोति ।

आपन्नं च न जहाति ददाति काले

सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति तज्ज्ञा, ॥ ३० ॥

दृष्ट्वा ह्यिन्वि भज क्षमां जहि मद पापे रति मा कथा.

सत्यं ब्रूह्यनुयाहि साधुपदवी सेवस्व विद्वज्जनान् ।

मान्यान् मानय विद्विषोऽप्यनुनय प्रच्छादय स्वाब् गुणान्

कीर्तिं पालय दुःखिते क्षुरु दयामेतत् सता लक्षणम् ॥ ३१ ॥

लोभश्चेदनलेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकै

सत्यं चेत् तपसा च किं शुचि मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम् ।

सौजन्यं यदि किं निजैः सुमहिम्ना यद्यस्ति किं मण्डनै

सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना ॥ ३२ ॥

वाञ्छा मज्जनसगमे परगुणे प्रीतिगुरौ नम्रता

विद्याया व्यसन स्वयोषिति रतिर्लोकापवादान्जयम् ।

भक्ति शूलिनि शक्तिराल्मदमने ससर्गमुक्ति खले—

ध्वंते येषु वसन्ति निर्मलगुणास्तेभ्या नरेभ्यो नमः ॥ ३३ ॥

प्रिया न्याय्या वृत्तिर्मलिनमसुभङ्गेऽप्यसुकर—

मसन्तो नाभ्यर्था सुहृदपि न याच्य क्लेशधनः ।

विपद्युच्चैः स्वैर्यं पदमनुविधेयं च महता

सता केनोद्दिष्टं विषममसिपाराश्रतमिदम् ॥ ३४ ॥

प्रदानं प्रच्छन्नं गृहसुपगतं सभ्रमाविधि

प्रियं कृत्वा मौनं सदासं कथनं चाप्युपहते ।

अनुत्सेको लक्ष्म्या निरभिभवसारा परकथा.

सता केनोद्दिष्ट विषममसिधारान्नतमिदम् ॥ ३५ ॥

यावत् स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा

यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत् चयो नायुषः ।

आत्मश्रेयसि तावदेव पुरुषैः कार्यं प्रयत्नो महान्

प्रोद्दीप्ते भवने तु कृपस्वननं प्रतुष्यमं कीदृशं ॥ ३६ ॥

गात्रं सकुचितं गतिर्विगलिता भ्रष्टा च दन्तावलि-

दृष्टिर्नश्यति वर्धते बधिरता वक्त्रं च लालायते ।

वाक्यं नाद्रियते च बान्धवजनो भार्या न श्युषते

हा कष्टं पुरुषस्य जीर्णवयसः पुत्रोऽप्यमित्रायते ॥ ३७ ॥

चेतोहरा युवतयः सुहृदोऽनुकूला

सद्बान्धवाः प्रणयगर्भगिरश्च भृतराः ।

वृत्तान्ति दन्तिनिवहास्तरलास्तुरङ्गा

समीलने नयनयोर्न हि किञ्चिदस्ति ॥ ३८ ॥

भ्रष्टितिः प्रविशति गेहं मा वहिस्तिष्ठ कान्ते

ग्रहणसमयवेला वर्तते शौतरश्मे ।

अयि सुविमलकान्तिः प्रेक्ष्य नूनं स राहु-

ग्रसति तव सुखेन्दुं पूर्णचन्द्रं विहाय ॥ ३९ ॥

पुरा कवीनां गणनाप्रसङ्गे कनिष्ठकाधिष्ठितकान्तिदासा ।

अद्यापि तत्तुल्यकवेरभाषादनामिका मार्यतरा बभूव ॥ ४० ॥

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्यं शकुन्तला ।

तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कस्तत्र शोकचतुष्टयम् ॥ ४१ ॥

यास्यतावद्यं शकुन्तलेति हृदयं सस्पृष्टमुत्कण्ठया

कण्ठं स्तम्भितवाप्यहत्तिकल्पयिस्ताजडदर्शनम् ।

वक्तव्यं मम तावदीदृशमपि स्नेहादरथ्यीकस

पौद्यन्ते गृह्णिष्यं कथं न तनयाविशेषदुःखैर्नवैः ॥ ४२ ॥

शुश्रूषस्व गुरुन् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने  
 भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतोष गम' ।  
 भूयिष्ठ भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी  
 यान्त्येव गृह्णिणीपद युवतयो वामा, कुलसप्राधय ॥ ४३ ॥  
 पातु न प्रथमव्यवस्रति जल युष्मास्वपीतेषु या  
 नादत्ते प्रियमण्डनापि भवता स्त्रेहेन या पद्मवम् ।  
 आद्ये व, कुसुमप्रवृत्तिसमये यस्या भवतुरासव  
 सेय याति शकुन्तला पतिगृह सर्वैरनुज्ञायताम् ॥ ४४ ॥  
 अनुमतगमना शकुन्तला तरुभिरिय वनवासबन्धुभिः ।  
 परभृतविरुत कल यथा प्रतिवचनीकृतमेभिरीदृशम् ॥ ४५ ॥  
 अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृह्णिणीपदे  
 विभवगुरुभि कृतैरस्र प्रतिक्षणमाकुला ।  
 तनयमचिरात् प्राचीवार्क प्रसूय च पावन  
 मम विरहजां न त्व वत्से शुच गणयिष्यसि ॥ ४६ ॥  
 अर्थो हि कन्या परकीय एव  
 तामद्य सप्रेथ परिग्रहीतु' ।  
 जातो मयाय विशदः प्रकाम  
 प्रतर्पितन्याम इवान्तरात्मा ॥ ४७ ॥  
 विरलविरला स्थूनास्तारा कलाविव सज्जना  
 मन इव मुने सर्वत्रैव प्रमन्नमभून्नभ' ।  
 व्यपसरति च ध्वान्त चित्तात् सतामिव दुर्जन'  
 व्रजति च निशा क्षिप्र लक्ष्मीर्निरुद्यमनादिव ॥ ४८ ॥  
 अभूत् पिङ्गा प्राची रमपतिरिव प्राश्य कनक  
 गतच्छायदन्द्रो बुधजन इव ग्राम्यसदसि ।  
 क्षणात् क्षीणास्तारा नृपतय इवानुद्यमपरा  
 न दीपा राजन्ते विनयरहितानामिव गुणा' ॥ ४९ ॥

ज्ञानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि

सतर्पणानि सकलेन्द्रियमोहनानि ।

एतानि ते सुवचनानि सरोरुहाच्च

कर्णामृतानि भनसद्य रसायनानि ॥ ५० ॥

दोषाकरोऽपि कुटिलोऽपि कलङ्कितोऽपि

मित्रावसानसमये विहितोदयोऽपि ।

चन्द्रस्तथापि हरवद्वभतामुपैति

नैवाश्रितेषु गुणदोषविचारणा सयात् ॥ ५१ ॥

नन्वात्मानं बहु विगणयनात्मनैवावलम्बे

तत् कल्याणि त्वमपि सुतरा मा गमं कातरत्वम् ।

कसयातयन्त सुखमुपनत दुःखमेकान्ततो वा

नोचैर्गच्छतुपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥ ५२ ॥

श्यामास्त्रङ्ग चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपात

वक्त्रच्छाया शशिनि शिखिना वर्धभार्यु केशान् ।

उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्

हन्तैकस्मिन् क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति ॥ ५३ ॥

घृष्ट घृष्ट पुनरपि पुनश्चन्दन चारुगन्ध

द्विन्न द्विन्न पुनरपि पुन' स्वादु चैवेक्षुकाण्डम् ।

दग्ध' दग्ध पुनरपि पुन काञ्चन कान्तवर्ण

न प्राणान्तो प्रकृतिविकृतिर्जायते चोत्तमानाम् ॥ ५४ ॥

घटो जन्मस्थानं मृगपरिजनो भूर्जवसन

वने वास कन्दैरशनमपि दुःखं वपुरिदम् ।

अगस्त्य पाथोधि यदकृत कराम्भोजकुहरे

क्रियासिद्धिं सत्त्वं भवति महता नोपकरणे ॥ ५५ ॥

दूरादर्शं घटयति नव टरतयापश्यन्

त्यक्त्वा भूयो भवति निरत सत्सभारङ्गनेषु ।

मन्दं मन्दं रचयति पदं लोकचित्तानुकृत्या  
 कामं मन्वी कविरिव सदा खेदभारैरमुक्तः ॥ ५६ ॥  
 उत्तिष्ठ क्षणमेकमुद्वह गुरुं दारिद्र्यभार सखे  
 श्रान्तस्तावदह चिर मरणज सेवे त्वदीयं सुखम् ।  
 इत्युक्तो धनवर्जितेन सहसा गत्वा श्मशाने शवो  
 दारिद्र्यान्मरण वर वरमिति ज्ञात्वैव तृष्णी स्थितः ॥ ५७ ॥  
 क्षण बालो भूत्वा क्षणमपि युवा कामरमिक  
 क्षण वित्तैर्हीन क्षणमपि च गंपूर्णविभवः ।  
 जराजीर्णैरङ्ग नट इव वलीमण्डिततनु—  
 नरः ससारान्ते विशति यमधानीजवनिकाम् ॥ ५८ ॥  
 यत्र नास्ति दधिमन्यनघोषो यत्र नो लघुलघूनि शिशूनि ।  
 यत्र नास्ति गुरुगौरवपूजा तानि कि वत गृहाणि वनानि ॥ ५९ ॥  
 राम.—सौमित्रे ननु सेव्यता तरुतल चण्डाशुरुज्जृम्भते  
 लक्ष्मण.—चण्डाशोर्निशि का कथा रघुपते चन्द्रोऽयमुन्मीलति  
 राम.—वत्सैतद्विदित कथ नु भवता  
 लक्ष्मण— धत्ते कुरङ्गं यत्  
 राम.—क्वासि प्रेयसि हा कुरङ्गनयने चन्दानने जानकि ॥ ६० ॥  
 हिमाशुश्चण्डाशुर्नवजलधरो दावदहन,  
 सरिद्धीचीवात, कुपितफणिनिश्वासपवन ।  
 नवा मल्ली भल्लो कुवलयवन कुन्तगहन  
 मम त्वद्विशेषात् सुमुखि विपरीत जगदिदम् ॥ ६१ ॥  
 कस्याख्याय व्यतिकरमिम मुक्तदु खो भवेयः  
 को जानोते निभृतसुभयोरावयो स्नेहसारम् ।  
 जानात्येकं शशधरमुग्धि प्रेमतत्त्व मनो मे  
 त्वामेवैतच्चिरमनुगत तत् प्रिये कि करोमि ॥ ६२ ॥

बोद्धारो मत्सरग्रस्ता प्रभव स्यादद्रूपिता ।

अबोधोपहृताद्यान्ये जौर्णमङ्गे सुभाषितम् ॥ ६३ ॥

एह्यागच्छ समाश्रयासनमिदं कस्माच्चिराद् दृश्यसे

का वार्ता ह्यतिदुर्बलोऽसि कुशलं प्रीतोऽस्मि ते दर्शनात् ।

एव ये समुपागतान् प्रणयिनं प्रह्लादयन्तग्रादरात्

तेषां युक्तमशङ्कितेन मनसा हर्म्याणि गन्तुं सदा ॥ ६४ ॥

मा गा इतरपमङ्गलं व्रजं पुनः स्नेहेन हीनं वचः,

तिष्ठेति प्रभुता यथारुचि कुरु ह्येषापुरटासीनता ।

नो जीवामि त्वया विनेति वचनं सभाव्यते वा न वा

तन्मा शिष्यं मित्रं यत् समुचितं वाक्यं त्वयि प्रस्थितं ॥ ६५ ॥

मा भूत् सञ्जनसङ्गो यदि सङ्गो मा पुनः स्नेहः ।

स्नेहो यदि मा विरहो यदि विरहो मा पुनश्च जीवित्वम् ॥ ६६ ॥

वाले नाथ विमुञ्च मानिनि रूपं रोषान्मया किं कृतं

खेदोऽस्मासु न मेऽपराध्यति भवान् सर्वेऽपराधा मयि ।

तत्किं रोदिषि गह्वरेण वचसा कस्याग्रतो रुद्यते

नन्वेतन्मम का तवाम्नि दयिता नास्मीत्प्रतो रुद्यते ॥ ६७ ॥

अम्बा कुप्यति तात भूर्ध्नि विष्टता गङ्गेयमृत्सृज्यता

विद्वन् परमसुखं सततं मयि रता तस्य गतिं का वद ।

कोपाटोपवशाद्दिव्यदवदनं प्रतुष्टं दत्तवान्

अग्नीधिर्जलधिं पयोधिरुदधिर्वारानिधिर्वारिधिः ॥ ६८ ॥

अथादग्निर्जायते मथ्यमानाङ्गुलिस्तोयं खन्यमाना ददाति ।

माह्वाना नास्तरसाध्यं नराणां मार्गारब्धा सर्वयत्ना फलन्ति ॥ ६९ ॥

गुणानां वा विशालानां सत्काराणां च नित्यशः ।

कर्तारं सुनभा लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः ॥ ७० ॥

यस्या न प्रियमण्डनापि सहिषी देवस्य मन्दोदरी

स्नेहाद्भुम्यति पद्मयान् न च पुनर्वीजन्ति यस्या भयात् ।

वीजन्तो मलयानिला अपि करैरस्पृष्टबालद्रुमा  
 सेय शक्ररिपोरशोकवनिका भग्नेति विज्ञाप्यताम् ॥ ७१ ॥  
 रे रे चातक सावधानमनसा मित्र क्षण अयता—  
 मन्भोदा बहवो हि सन्ति गगने सर्वेऽपि नैतादृशा ।  
 केचिद्दृष्टिभिरार्द्रयन्ति धरणी गर्जन्ति केचिद्दृष्ट्या  
 य य पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीन वच ॥ ७० ॥  
 यद्वक्त्रं मुहुर्बौक्षसे न धनिना ब्रूषे न चाटून् मृषा  
 नैषा गर्वगिर, शृणोषि न पुन प्रत्याशया धावसि ।  
 काले बालदृष्टानि खादसि सुख निद्रासि निद्रागर्भे  
 तन्मे ब्रूहि कुरङ्ग कुत्र भवता कि नाम तप्त तप ॥ ७३ ॥  
 नाय ते समयो रक्षस्यमधुना निद्राति नाथो यदि  
 स्थित्वा द्रुच्यति कुप्यति प्रभुरिति हारेषु येषा वच ।  
 चैतस्तानपहाय याहि भवन देवस्य विश्वेशितु—  
 निर्दौवारिकनिर्दयोत्तयपरुष नि सीमशर्मप्रदम् ॥ ७४ ॥  
 श नो मित्रं श वरुण श नो भवत्वयमा ।  
 श न इन्द्रो वृद्धस्यति श नो विष्णुरुरुक्रम ॥ ७५ ॥

## २१ । स्तुतिपद्यानि ।

करबदरसदृशमखिल भुवनतल यत्प्रसादत, कवय ।  
 पश्यन्ति सूक्ष्मतय सा जयति सरस्वती देवी ॥ १ ॥  
 लाभस्तेषा जयस्तेषा कुतस्तेषा पराजय ।  
 येषामिन्दीवरश्यामो हृदयम्यो जनार्दन ॥ २ ॥  
 मेघश्याम पीतकौशेयवास श्रीवत्साङ्ग कौस्तुभोज्ञासिताङ्गम् ।  
 लक्ष्मीकान्त पुण्डरीकायताक्ष विष्णु वन्दे सर्वलोकैकनाथम् ॥ ३ ॥

१ अथमन् तथा पूषन् शब्दके प्र-ए व में केषल दीर्घ होता है । पूषा पूषणी  
 पूषण पूषणस पूषणी ।

शान्त पद्मासनस्य शशधरमुकुट पञ्चवक्त्र त्रिनेत्रं  
 शूल वज्र च खड्ग परशुमपि वर दक्षिणाङ्गे वहन्तम् ।  
 नाग पाश च घण्टा डमरुकसहित चाङ्गुश वामभागे  
 नानालकारदीप्त स्फटिकमणिनिभ पार्वतीश भजामि ॥ ४ ॥  
 रत्नैः कल्पितमासन द्विमजलैः स्नान च दिव्याम्बर  
 नानारत्नविभूषित मृगमदामोदाङ्कित चन्दनम् ।  
 जातीचम्पकबिल्वपत्ररचित पुष्प च धूप तथा  
 दोष देव दयानिधे पशुपते हृत्कल्पित गृह्यताम् ॥ ५ ॥  
 श्रमितगिरिमम सप्रात्कञ्जल सिन्धुपात्रे  
 सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी ।  
 लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकाल  
 तदपि तव गुणानामीश पार न याति ॥ ६ ॥  
 महेश्वरे वा जगतामधीश्वरे जनार्दने वा जगदन्तरात्मनि ।  
 तयोर्न भेदप्रतिपत्तिरस्ति मे तथापि भक्तिस्तरुणेन्दुशेखरे ॥ ७ ॥  
 य ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुत स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवैः—  
 वैदेः साङ्गपटक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगा ।  
 ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति य योगिनो  
 यस्यान्त न विदुः सुरासुरगणा देजाय तस्मै नमः ॥ ८ ॥  
 रामो राजमणि सदा विजयते राम रमेश भजे  
 रामेणाभिष्टता निशाचरचमू रामाय तस्मै नमः ।  
 रामान्नास्ति परायण परतर रामस्य दासोऽस्म्यह  
 रामे चित्तलय सदा भवतु मे भो राम सामुद्धर ॥ ९ ॥  
 इतो न किञ्चित् परतो न किञ्चिद्  
 यतो यतो यामि ततो न किञ्चित् ।  
 विचार्यं पश्यामि जगन्न किञ्चित्  
 स्वात्मावबोधादधिकं न किञ्चित् ॥ १० ॥





## उद्धृत गद्यपद्योंपर टिप्पणी ।

१।—वनोद्दिष्टे ( उद्देश = स्थान ) —वाभूमिमें । चटकदम्पती—  
 ( चटक — एक पत्नी + दम्पती, इन्द्र २०, जाया च पतिश्च जायापत्नी जम्पती  
 दम्पती वा )—चटक पत्नियोंका जोड़ा । निलय — स्थान । गच्छता कालेन—  
 समयके बीतनेपर । घर्मार्त ( घर्मण आर्त, आर्त = आ + अृत, अृ का  
 भूत कृदन्त आ + अृ = आर् ६७ षृणुमें टिप्पणी देखो )—गर्मांचे पीड़ित ।  
 मणोरुर्धात् ( उत्कर्ष = आधिक्यम्, अधिकता )—गर्वकी अधिकतासे ।  
 पुष्करम् सूड । विजौर्धात् ( वि + शृ—ऋदि-पर का भूतकृदन्त )—टोड़े ।  
 आयु शेषतया = आयु. शेषो ययोर्धो आयु शेषो तयोर्भाष्य आयु शेषता  
 तथा—क्योंकि त्रायु समाप्त न हुई थी, आयुको अवशेष होनेसे । चटकी  
 = चटकश्च चटकी च—एकशेष समास । पितरौ तथा गृधुरौ ये दूषरे  
 एकशेष समासके उदाहरण हैं । मातापितरौ तथा श्वश्रूश्च गृधुरौ ये  
 पितरौ तथा श्वश्रुरौ को द्वैकल्लिक रूप है । कथमपि—किसी प्रकार ।  
 विशेष—भेद । श्लेष्माश्रु ( श्लेष्मत् पु कफ )—कफमिश्रित आंशु ।  
 ( मध्यमपदलोचौ समा०, श्लेष्मणा मिश्रितमश्रु श्लेष्माश्रु ) । गजापददश्च  
 ( अपद-पु नीच, समासके अन्तमें इसका अर्थ 'अधम', 'निम्नित'  
 होता है । )—नीच गजका । श्रयजात्युत्सृज - भूमरी जातिमें परपन्न ।  
 विधेयन ( उपपदसमास, विधेय जानार्तःति विधेयः )—जो यह जानता  
 है कि क्या करना चाहिये । सुदृङ्गता—मित्रकी तरफ । उत्तरपदश्च। भूतशब्दः  
 समास । कभी इसका अर्थ उद्भव होता है । अथपरार्थाऽपि भूतशब्द  
 उत्तरपदश्च—इदं जगत् तमोभूतमासीत्—तमोऽप्यमित्यर्थः । श्लो० मस  
 कोट्टना । सतिशालिभि—सत्वा प्रागर्चं शाभर्त्तं मे सतिशालिभ्यः । सभ  
 शोभोसे जो वृष्टिमें समकते है । ७ विद्वन्मन्त्रि—मन्त्रिभ्य मन्त्री शर्त्तः ।  
 सकल होते है । नया—नौतिमार्ग । कियन्त्यायुः ( कियतीं याया पथःशा )  
 —किस मार्गका । दुराक श्रेयसा । शशाङ्कमस्य—

इसको एकदेशसमास वा अवयविसमास कहते हैं । ( 'ग्रह सर्वक-  
 देशसख्यातपुण्याच्च रात्रे' १।१।८७॥ चात् सख्याध्ययादे । अह इत्यादि  
 पूर्व होनेपर रात्रि शब्दसे समासान्त अच् प्रत्यय होता है । अर्थात् रात्रिका  
 रात्र होता है । अहश्च रात्रिश्च अहोरात्र ( द्वन्द्व ), रात्रे पूर्व पूर्वरात्र  
 सख्याता चासौ रात्रिश्च सख्यातरात्र । इसीप्रकार-पुण्यरात्र, द्वयो रात्रो  
 समाहारो द्विरात्रम्, अतिक्रान्तो रात्रिमतिरात्र ( प्रादिसमास ) । 'अहो  
 ऽह्न एतेभ्य' १।१।८८॥ सर्व इत्यादि पूर्व होनेपर अहन् को अह्न होता है ।  
 सर्वाह्न, पूर्वाह्न । परन्तु यदि सख्यात्राचक वा पुण्य, सुदिन पूर्व हो तो  
 अहन् को अह होता है, अह्न नहीं होता, पुण्याहम् ( पुण्याह भवतो  
 ब्रुवन्तु—स्वस्तिवाचन विधिमें यजमान ब्राह्मणोंसे प्रार्थना करता है । )  
 द्वयोरहो समाहार द्वग्रह । रात्र, अह्न, अह, में अन्त होनेवाले द्वन्द्व  
 तथा तत्पुरुष पुल्लिङ्गमें होते हैं । ( 'रात्राह्नाह्ना पुमि' २।१।२६॥ ) । पुण्य  
 सुदिनाभ्यामह्न क्लीबतेश्च—पुण्याहम् । सुदिनाहम् । लालस—उत्सुक ।  
 चञ्जू—स्त्री०, चोच । सपरिकरस्य । सेवकोंसे सहित । गर्त—र्तम्—र्त—  
 गहवा । समवाय—समूह । यज्जत्व यास्यति=मरेगा, पाच तत्त्वोंमें  
 मिलेगा । मण्डूक—मेढक ।

२ ।—अयनि-नी—पृथ्वी । सादरसभाणि—मादरम्—आदरने साथ ।  
 बहु०, क्रियाजि०, अभाषि भर्का कर्मणि लुट् प्रथम पु एकवचन,  
 स्यतिरे-हे वृद्धे । वैश्वर = वैश्वेषु वर, सप्त० तत्पु०, ऐसे स्थलोंपर  
 षष्ठीका निषेध है । वैश्वाना वर तथा वैश्वेषु वर ये निर्धारणषष्ठी तथा  
 निर्धारणसप्तमीके उदाहरण हैं । वैश्वाना वर में समास नहीं हो सकता ।  
 न निर्धारणे २।२।१०॥—निर्धारणे या षष्ठी सा न समस्यते । नन्दिनी—  
 लङ्का । कधर्तारो—व्यापारी । उपयेमे—विवाह क्रिया । मोदर—सगा भाई,  
 समानमुदर यस्य स, समानके स्थानमें स हुआ है । प्रवहत्सु—जहाज ।  
 पोत—नाव । अभिप्रत्स्ये—रम्, अट, म, वि, ये पूर्व रहनेपर खा धातुसे  
 आत्मनेपद होता है । समवप्रतिभ्य स्य १।१।२२ कर्त्तोल—बड़ा तरङ्ग ।

शालिका—समूह । धात्रीभाजेन कृत्पिताहम्—मैं जो उसकी धाड़ बनाई  
 यौ थी । फलकम्—पटिया । परा काष्ठामधिगता—जो सीमातक पहुँची  
 थी । त्रिचेतना--त्रिगता चेतना यस्या सा । प्रच्छायशीतले—प्रकृष्टा  
 गया यद्य तत् प्रच्छाय प्रच्छाय च तत् शीतल च प्रच्छायशीतल  
 म्भिन् ( विशेषणसमाप्त, कर्म० स० ) । जनपदगामिनम् ( जनपद  
 ष्छतीति जनपदगामी तम् )—गावकी और जानेवाला । वारुण—  
 वृष । प्राद्वत्—भागा । गुत्सक—काम—समूह । कल्यैरव—सिद्ध  
 कल्योस्वी गता ) । आददति—आददत् की समझीका एकवचन ।  
 आददत् = आ + दा—जु० पर का वतमान कृदन्त । शास्, जत्, चकास्,  
 गाय, तथा जुहोत्यादि गणकी धातुओंके वतमान कृदन्तमें—जिनके प्रथम  
 स्थके बहुवचनमें अनुनासिक नहीं लगता—पुल्लिङ्गके सर्वनामस्थानमें  
 अनुनासिक नहीं लगता, तथा नपुंसकलिङ्गके प्र, द्वि, तथा मन्वोधनके  
 बहुवचनमें विकल्पसे अनुनासिक लगता है—ददत् ददती, ददत्, ददतम्  
 दती । न० प्र० ददत्, ददती, ददति-ददन्ति । दन्तादल—गज । ( दल  
 = मत्स्ययीय प्रत्यय । अन्तिम स्वरको दीर्घ होता है—जैसे कृषीदल—  
 कृषीदतिदत् ) । समासीनेन (समासीन—सम् + प्रासका वतमान कृदत् है । यह  
 नियत है)—जैठ धुर । निकट—टम्—सामीप्य, निकटम्-अव्यय पाठ ।

३।—क्रियता समयधम ( समय = एकरार ) एकरार किया जाय ।  
 उत्सामकट्ट—जिसका गला मूँपसे मूँप गया था । क्षाम ही धातु स्वा  
 का भूत कृन्त है । ( क्षायो म ८।१।६३। क्षी के वाङ् म को म होता है ) ।  
 क्विणी परिलेखिद्यमान—'प्रातावोपुष्य एक्किणी' इत्यमर—एक्किन् न  
 ठीके किनारे । परिलेखिद्यमात्—द्वारर चाटता हुआ । यद्भुन्त  
 न् धातुका वर्तमान कृदत्त । भस्मयन्—भस्म् ( भस्मयणे ) । यह प्राय  
 श्चामनेप है । विग्रामस्थाने—जामिनके समान ।

४।—शयाङ् शयमादत्ते इति दायाङ्—उत्तराधिकारी । श्रघट्ट-  
 टीम्—शर चक्रके दड़, श्रघट्टरते रण्यत इत्यरघट्ट—कूपसे पानी

दीर्घोंके प्रकाशसे घटाया जा सकता है, और बहुत गहिरा नहीं होता। 'योवनप्रभव तम' उपमेय है, और 'साधारण तम' उपमान है। यद्वा उपमेयाधिकपर्यवसायी व्यतिरेक अलंकार है। रागमलावलेप = विषयप्रमकी अशुद्धिसे उत्पन्न होनेवाला गर्व। अस्नानशौचवध = जो स्नानकी शुद्धिसे नष्ट नहीं हो सकता। गर्भेश्वरत्वम्—जन्मसिद्ध सार्वभौमता। अविनयाना समवाय = एषामेकैकमप्यविनयानामायतनं समवाय (उनका समूह) अविनयानामायतनमिति किमुत (क वक्तव्यम्)—जब इनमें प्रत्येक अविनयका स्थान है, तब इनको समुदायकी क्या बात है। इसको कैमुतिक न्याय कहते हैं। अभिनव यौवन यस्य स अभिनवयौवन तस्य भाव अभिनवयौवनत्वम्। इधी प्रकार अप्रतिमरूपत्वम् तथा अमानुषशक्तित्वम् का विग्रह करना चाहिये। कालुष्यम्—मालिन्य, क्लृप्त-मटमैला। भवादृश—भवादृश-श-त्त-ये तीन रूप है। ऐसे २ और शब्दोंके भी तीन रूप होते हैं, जैसे—तादृश-श-त्त। अपगतमल-मल —मलम्-धूल, मालिन्य, अपवितृ विचार। गर्भस्त्रि-पु स्त्री—किरण। गर्भस्त्रिमत्—सूर्य। कल्याण-भिनिवेशो—कल्याण अभिनिवेश कल्याणभिनिवेश, सोऽस्मासीति कल्याणभिनिवेशी, तत्पु० स० को इन् प्रत्यय लगाया गया है।—जो अपने हितकी ओर लगा हुआ है। (अभिनिवेश—भक्ति, गाढ़प्रेम)। राग = १ राग, २ प्रेम। एकान्तवक्रता = १ अत्यन्त टेढापन, २ अत्यन्त टेढ़े मार्गसे चलना। चञ्चलता = १ फुर्ती, २ अस्थिरता। मोहनशक्ति = १ मोहित करनेकी शक्ति, २ वशीकरण। मद = १ नशा, २ गर्व। नैर्घुर्यम्—१ कडापन, २ क्रूरता। इस प्रकार इन शब्दोंके दो २ अर्थ हैं, और यद्वा अलङ्कार श्लेष है। दो अर्थोंमें एक पारिजातपल्लव, इन्दुशकल इत्यादिकी तरफ लगता है और दूसरा अर्थ लक्ष्मीके तरफ। शकल —टुकड़ा। कालकूटम्—विष। विरहजिनोदविद्युनि—द्वियोगको दूर करनेको लक्षण। पलायते—जब अथ—भवा आत्म को पूर्व परा होता है, तब परा को र् को ल् होता है। अय् को परोत्तभूतमें अयाज्वक्ते—जबूव—आस रूप होते हैं।

ग्रभिल्लन—उन्नत वंश । कामम्—मान लिया, चाह ऐसा हो । समारोपि  
—जिसके उपनयन इत्यादि सस्कार पिताके द्वारा किये गये हैं ।  
तरल—चञ्चल । अप्रतिबुद्ध—जिसको प्रज्ञाश श्रयवा ज्ञान नहीं हुआ ।  
मुखरौकृतवान्—मुखसे बुलवाया । कृत मयेदम्—कृतवानहमिदम् ।  
धातुके अकर्मक होनेपर अर्थमें भेद नहीं होता । गतोऽह ग्रामम् और  
गतवानह ग्रामम् का अर्थ एक ही है—मैं गाव गया । हृदमेव—  
पुरुषमिय दुर्विनीता लक्ष्मी खलीकरोतीति । विजयस्त्र—वि तथा परा  
पूर्वक जि धातु आत्मनेपद है । विपराभ्या जे १३१८ ॥ सिद्धादश—वह  
जिसकी श्रान्ता अवश्य सफल हो ।

८।—श्रुतिस्मृतिनिर्मुक्तोत्तरमात्मलक्षणम्—जिसने वेद तथा धर्मशास्त्र-  
से आत्माका अनुभव किया है । परमहसपरित्राट्—द्वन्वासियोंके चार भेद  
हैं—कुटीचक, बहूदक, दस, तथा परमहस । इनमें उत्तरोत्तर अधिक  
श्रेष्ठता दिखता है । इस प्रकार परमहस सबसे श्रेष्ठ है । न हि—निश्चय ।  
जब तदीका समीपका तट जलकर खाख हो जाता है तो कोई नहीं पार  
करना नहीं चाहता । इसी प्रकार जब मृत शरीर पक्षियोंसे खाया जाता या  
खाख हो जाता है, तो कोई इस समारसे मुक्त होना नहीं चाहता । तो  
तुम का मुक्त होना चाहते हो ? पार और अवर ( समीप तथा दूरका तट )  
से पारावार शब्द बना हुआ है, जिसका अर्थ समुद्र है । ग्राह —घड़ियात ।  
वयस्—न पत्नी । साध्यवादी —अथ तुम ठीक कहते हो । पहिले तुमने  
भूठ कथो कथा—‘मैं एक त्रिष्टु कुलमें ब्राह्मण और ब्रह्मचारी था, और  
अथ मैं परमहस हूँ’ । सुपोश—असत्य । अगोऽप्यय —अगो अप्यय यस्य  
म = इस वशका । प्रत्यभ्यनाशे ०—तुमने शरीरको पहिचाना, जिसको  
नहीं ज्ञातिया वश तथा सस्कार है, जिस प्रकार आत्माको पहिचाना, जिसको  
न ज्ञाति है, न वश, और न सस्कार ।

९.—परमानन्दमाधदम्—विष्णु जो परम आनन्दका आत्मा है ।  
ग = लक्ष्मी + धय = पति । मत्—सत्ता या शक्ति, चित्—ज्ञान, और

दीपोंके प्रकाशसे छटाया जा सकता है, और बहुत गहिरा नहीं होता ।  
 'यौवनप्रभव तम' उपमेय है, और 'साधारण तम' उपमान है । यद्वा उप  
 मेयाधिक्यपर्यवसायी घातिरेक अलंकार है । रागमलावलेप = विषयप्रेमकी  
 अशुद्धिसे उत्पन्न होनेवाला गर्व । अस्नानशौचवध्य = जो स्नानकी  
 शुद्धिसे नष्ट नहीं हो सकता । गर्भेश्वरत्वम्—जन्मसिद्ध सावभौमता ।  
 अविनयाना समवाय = एषामेकैकमप्यविनयानामायतन समवाय ( उनका  
 समूह ) अविनयानामायतनमिति किमुत ( कि वक्तव्यम् )—जब इनमें प्रत्येक  
 अविनयका स्थान है, तब इनको समुदायकी क्या बात है । इसको किमुतिक  
 न्याय कहते हैं । अभिनव यौवन यस्य स अभिनवयौवन तस्य भाव  
 अभिनवयौवनत्वम् । इसी प्रकार अप्रतिमरूपत्वम् तथा अमानुषशक्तित्वम्  
 का विग्रह करना चाहिये । कालुष्यम्—मालिन्य, कलुष मठमैला । भवादृश  
 —भवादृश-श-क्त-ये तीन रूप हैं । ऐसे २ और शब्दोंके भी तीन रूप होते  
 हैं, जैसे—तादृश-श-क्त । अपगतमत-मल —मलम्-धूल, मालिन्य, अप  
 रित्वु विचार । गभस्ति पु स्त्री—किरण । गभस्तिमत्—सूर्य । कल्याण  
 भिनिवेशी—कल्याण अभिनिवेश कल्याणभिनिवेश, सोऽस्यास्तीति कल्याण  
 भिनिवेशी, तत्पु० स० को इन् प्रत्यय लगाया गया है ।—जो अपने हितकी  
 ओर लगा हुआ है । ( अभिनिवेश—भक्ति, गाढ़प्रेम ) । राग = १ रग,  
 २ प्रेम । एकान्तवक्रता = १ अत्यन्त टेढापन, २ अत्यन्त टेढ़े मार्गसे  
 चलना । चञ्चलता = १ फुर्ती, २ अस्थिरता । मोहनशक्ति = १ मोहित  
 करनेकी शक्ति, २ वशीकरण । मद = १ नशा, २ गर्व । नैर्घुर्यम्—१  
 कडापन, २ क्रूरता । इस प्रकार इन शब्दोंके दो २ अर्थ हैं, और यद्वा  
 अलङ्कार श्लेष है । दो अर्थोंमें एक पारिजातपल्लव, इन्दुशकल इत्यादिकी  
 तरफ लगता है और दूसरा अर्थ लक्ष्मीके तरफ । शकल —टुकड़ा ।  
 कालकूटम्—विष । त्रिरद्विनोदचिह्नानि—द्वियोगके दूर करनेके लक्षण ।  
 पलायते—जब अय—भवा आत्म के पूव परा होता है, तब परा के रू की  
 ल् होता है । अय के परोक्षभूतमें अयाज्जने—जपृव—आम रूप होते हैं ।

अर्थात् मैं कभी स्वतन्त्र नहीं । यथावत्—यथायोग्य । सङ्काश—तुल्य । सुरभि—सुन्दर । भावित—पवित् । चक्रवाक—यद्यपि रातको अपनी प्रियासे विमुक्त होता है । पक्षिणा = लटायुषा । कन्दरा—गुहा । आसन्न—समीप ।

१३ ।—भरतर्षभ—भरतेषु ऋषभस्तत्सम्बुद्धौ भरतर्षभ—भरत वशीयो-  
मै श्रेष्ठ । ऋषभ, शार्दूल, विद्य, मुद्गय इत्यादि समासको उत्तरपदको तरह प्रयुक्त होते हैं और इनका अर्थ 'श्रेष्ठ' होता है । 'स्युत्तरपदे व्याघ्रमुद्गव-  
र्षभमुद्गरा । विद्यशार्दूलनामाद्या पुंसि श्रेष्ठार्थगोचरा ॥ उपमित  
व्याघ्रादिभि सामानाप्रयोगे—उपमित अर्थात् उपमेयका व्याघ्र इत्यादिको  
'साध' समास होता है, जब साधारण धर्मका वाचक कोई पद न हो । पुंस्य,  
व्याघ्र इव पुंस्यवाद्य, पर पुंस्यो व्याघ्र इव शूर । यद्वा 'शूर' यद्य  
साधारण धर्मवाचक पद है, इसलिये समास नहीं होता । नृसोम—ना  
सोम इव । ग्री—सीन्दय, श्रोदार्य, इत्यादिकी शोभा । पद्मा—लक्ष्मी ।  
मकरध्वजस्य—प्रदुग्मका । प्रगल्भ—ढीठ आदमीमें । देवपरे = देव पर  
प्रधान वस्तु यथा स देवपर तस्मिन् देवपरे । उदीण—उदार प्रकृतिका ।  
(उद् + ईर्—अ आत्म का भूतञ्च) । माङ्करिके = जिसमें वर्णसङ्कर है ।  
असृयक—रोषदृष्टि करनेवाला । कृतात्मन्—जितेन्द्रिय, पवित् ।  
स्वाध्यायनित्य—वेद, म्यासमें लगा हुआ, नित्य = निसंग । सगुप्तमनोरथेषु  
—उन लोगोंमें जिनको अभिप्राय गुप्त है, जिनको मनमें एक और ध्वननमें  
दूसरी बात है ।

१४ ।—तनुसह—केश । कल्पगता—कल्प प्रातरहर्मुख वा—प्रात  
काल । आकीर्णम् ( आ + कृ ( किरति) तु पर का भूत कृदन्त )—व्याप्तम्—  
भरा हुआ । तपस्विनी—बधारी ( दीनता दिखाता है ) । कृच्छ्रम्—कष्ट ।  
मेघजम्—श्रीपथ । शकुनिज्ञान—शकुनि हन्तीति शकुनिज्ञान—वधे-  
लियेसे । अग्निमाक्षिकम्—अग्नि साक्षी यस्मि स्तत् । स्तत्—भर्ता हि  
। एष परमित्येतत् । स्तत्रक—गुच्छा ।

१५ ।—ऋच्छति—ऋ ( ऋच्छ् ) र्धा पर वर्त प्र पु र व ।



आनन्द ( सुख ) ये तीन परमात्मको स्वरूप है । वक्र — वगुला । वज्रनम् — ठगना । कार्यकाल = उनको उपयोगका समय । विता — स्त्री, — मिथी ।

१० ।—अर्क — सूर्य । लोकपाल — लोकके पालक । तपन — सूर्य । वैश्वद्य — कुर्वर । वित्ताप्यत्यो — वित्तपति — धनपति — कुर्वर, और अर्पति — क्षलपति — वरुण । द्वाद्धान्ते श्रूषमाण पद प्रत्येकं सम्यघते — पतिशब्द जो वित्ताप द्वाद्धान्ते अन्तमें है, वित्त तथा अर्प् दोनोंके साथ अन्वित होता है । अर्पात् इस शब्दका अर्थ है — वित्तपति तथा अर्पति । कर्त्तृकोन — कुलसे । द्रुतम् — शीघ्र । विद्रुत — भागा हुआ । मनुष्य इति — उसको मनुष्य जानकर । दुसपसर्पिणम् — जो उसको पास कठिनतासे पहुँच सकता है ।

११ ।—इद्वाम्बु — इद्वाम्बु राजाको वशका । वीकमुष्टि प्रकीर्णते = मुठोभर वीज नहीं छीट जाते, वीज नहीं बोये जाते ( क्योंकि फलिलके समय चौरोंका डर रहता है — फलकाले तुच्छाकशङ्कया ) पितृ पुत्रो — वधे = पुत्र पिताको आज्ञा नहीं मानता, और न रतनी पतिकी आज्ञा मानती है । क्योंकि आज्ञाश्रीको उल्लङ्घन करनेवालेको दण्ड देनेवाला कोई नहीं अत्याहितम् — बड़ा भय । 'अत्याहित मदाभिति' श्रवणम् । विघाणिन — अश्वे दातवाले । दायन — नम् वर्षम् । संम — कुशल । पण्यम् — क्रय वस्तु विभजन् — विभाग करता हुआ । स्वकम् — जीवन । सत्य च धर्मघ — सत्य तथा धर्मके प्रवर्तक । महता वृत्तन — यमको देखल पापियोंके दण्ड करने की शक्ति है, कुर्वरको केवल धन देनेकी, इन्द्रको केवल मनुष्योंके रक्त करने की, और वरुणको केवल उनको समार्गपर ले जानेकी शक्ति है, परन्तु राममें इन चारों शक्तियोंके रहनेसे वह अपने बड़े चरितृसे उसी सबसे श्रेष्ठ है ।

१२ ।—नाना — अथ भिन्न । व्याल — गज, सर्प । मनिमृष्ट — समीप । मपताञ्जलि — जो प्रथमशः लिये दाय जोड़े हुए है । पावानसि — स्विते = अब आप मेरे साथ है तो मैं चाहे १०० वर्ष तक आपका अधीन हूँ

अथात् मैकभी ख्यतन्तु नहीं । यथावत्—यथायोग्य । सङ्काश—तुल्य । सुरभि—सुन्दर । भाजित—पवित्र । चक्रवाक—यह पक्षी रातको अपनी प्रियासे त्रिमुक्त होता है । पक्षिणा = लटापुषा । कन्दरा—गुहा । आसन्न—समीप ।

१३ ।—भरतर्षभ—भरतेषु सृषभस्तत्सम्बुद्धौ भरतर्षभ—भरत वशीयो-  
 में श्रेष्ठ । ऋषभ, शार्ङ्ग, सिद्ध, पुङ्गव इत्यादि समासको उत्तरपदके तरह  
 प्रयुक्त होते हैं और इनका अर्थ 'श्रेष्ठ' होता है । 'शुक्तरपदे व्याघ्रपुङ्गव-  
 षभकुक्षरा । सिद्धशार्ङ्गलनागाद्या पुषि त्रिपुार्यगोचरा ॥ उपमित  
 व्याघ्रादिभि सामानाप्रयोगे—उपमित अर्थात् उपमेयका व्याघ्र इत्यादिकी  
 साथ समास होता है, जब साधारण धर्मका वाचक कोई पद न हो । पुष्प,  
 व्याघ्र इव पुष्पव्याघ्र , पर पुष्पको व्याघ्र इव शूर । यहा 'शूर' यह  
 साधारण धर्मवाचक पद है, इसलिये समास नहीं होता । वृषोम—ना  
 सोम इव । श्री—सौन्दर्य, श्रोत्रार्थ, इत्यादिकी शोभा । पद्मा—लक्ष्मी ।  
 मकरध्वजम्—प्रदुग्मका । प्रगल्भ—ठीठ आइसीमें । देवपरे = देव पर  
 प्रधान वस्तु यथा स देवपर तस्मिन् देवपरे । उदीय—उदार प्रकृतिका ।  
 (उनु + ईर—अ आत्म का भूतश्रु ) । साङ्करिके = जिसमें वर्णसङ्कर है ।  
 अमूयक—रोषदृष्टि करनेवाला । कृतात्मन्—जितेन्द्रिय, पवित्र ।  
 आघायनित्य—वेदभ्यासमें लगा हुआ, नित्य = निरन्तर । सगुप्तमनोरथेषु  
 —उन लोगोंने जिनको अभिप्राय गुप्त है, जिनको मनमें एक और ध्यानमें  
 दूसरी बात है ।

१४ ।—तनुसृष्ट—केश । कल्पगता—कल्प प्रातरहर्षुख वा—प्रात  
 काल । आकीर्णम् ( आ + कृ (किरति) तु पर का भूत कृदन्त )—व्याप्तम्—  
 भरा हुआ । तपस्विनी—बचारी ( दीवता दिखाता है ) । कृच्छ्रम्—कष्ट ।  
 निषलम्—त्रौषध । शकुनिज्ञान—शकुनि जन्तोति शकुनिज्ञान—बद्ध-  
 लियेसे । अग्निषाक्तिम्—अग्नि साक्षी यस्मि स्यात् । एतत्—भर्ता हि  
 शरण परमित्येतत् । साक्षक—गुच्छा ।

१५ ।—कृच्छ्रति—शु ( कृच्छ्र ) पर वर्त प्र पु र व

आनन्द ( सुख ) ये तीन परमात्माके स्वरूप है । वक्र — वगुला । वज्रनम् — ठगना । कार्यकाल = उनको उपयोगका समय । विता — स्त्री — मिचरी ।

१० ।—अर्क — सूर्य । लोकपाल — लोकके पालक । तपन — सूर्य । वैश्रवण — कुबेर । वित्ताप्यथो — वित्तपति — धनपति — कुबेर, और अम्पति — ललपति — वरुण । इन्द्रान्ते श्रूयमाण पद प्रत्येक सम्बन्धते — पतिशब्द जो वित्ताप इन्द्रको अन्तमें है, वित्त तथा अम्प हीनोंके साथ अन्वित होता है । अर्थात् इस शब्दका अर्थ है—वित्तपति तथा अम्पति । व्यलीकेन—कलसे । द्रुतम्—शीघ्र । विद्रुत—भाग्य हुआ । मनुष्य इति—उसको मनुष्य जानकर । दुसपसर्विण्णम्—जो उसको पास कठिनतासे पहुँच सकता है ।

११ ।—इदवाकु—इदवाकु राजाको वशका । वीजमुष्टि प्रकीयते = मुठोभर वीज नहीं कौटे जाते, वीज नहीं बोये जाते ( क्योंकि फसलके समय चोरोंका डर रहता है—फलकाले तुख्काकशङ्कया) पितृ पुत्रो—वधे = पुत्र पिताको आजा नहीं मानता, और न स्त्री पतिको आजा मानती है । क्योंकि आजाश्रीको उल्लङ्घन करनेवालेको दण्ड देनेवाला कोई नहीं । अत्याहितम्—बड़ा भय । 'अत्याहित महाभीति' इत्यमर । विघाणिन—अच्छे दातवाले । दायन—नम्-वर्षम् । क्षेम—कुशल । पण्यम्—क्षेप वस्तु । विभजन्—विभाग करता हुआ । स्वकम्—जीवन । सत्य च धर्मश्च—सत्य तथा धर्मके प्रवर्तक । महता वृत्तेन—यमको केवल पापियोंके दण्ड करने की शक्ति है, कुबेरको केवल धन देनेकी, इन्द्रको केवल मनुष्योंके रक्षण करने की, और वरुणको केवल उनको समार्गपर ले जानेकी शक्ति है । परन्तु राजाओं इन चारों शक्तियोंको रहनेसे वह अपने बड़े चरित्रसे उचित सबसे श्रेष्ठ है ।

१२ ।—नाना—अव्य भिन्न । व्याल—गल, सर्प । सनिकष्ट—समीप । सयताञ्जलि—जो प्रथमक लिये दाय जोड़े हुए है । पावानस्ति—स्थिते = जब आप भरे साथ है तो मैं चाहे १०० वर्ष तक आपका अधीन हूँ ;

उत्तरार्ध । अशनि कल्पित एष वेधसा—इस मालाको देवने वज्र बनाया है । अशनि विधेय है । वाक्यमें दो भाग होते हैं—उद्धेय्य और विधेय । इनमें विधेय प्रधान रहता है । निश्चायक सर्वनामका लिङ्ग विधेयको अनुसार होता है । विधेयप्राधान्यादेश इति पुस्त्रिङ्गता । इसी प्रकार—  
 श्रेय द्वि परसा प्रकृतिर्जलस्य । कृतपूर्वम्—पूर्व कृत कृतपूर्वम् । सुप्तसुप्त-  
 समास । शब्दपति—शब्देन पति न त्वर्येन—नामका राजा । भावनिब-  
 र्थना—( भाव स्वभाव )—स्वाभाविक । शर्वरी—स्त्री—रात्रि । द्वन्द्वचर—  
 जोड़ोंसे चलनेवाले । चक्रवा सर्वदा अपनी प्रियाके साथ चलता तथा रात-  
 को विपुक्त होता है । पतत्रिणम्—चक्रवाकको । पतत्रु डैना । वामोरु—  
 वामो सुन्दरी उरु जह्वं यस्या सा वामोरु तत्सम्बुद्धो वामोरु । ( समासमें  
 स्त्रीलिङ्गमें ऊरु का ऊरु होता है—यदि समासका पूर्वपद उपमानवाचक  
 वा संहित, ग्राम, इनमें कोई हो । जैसे—रमोरु, करमोरु ) । 'ऊरुत्तरपदादौ-  
 पत्य' ४।१।६६॥ 'संहितशफलक्षणवामादेश' ४.१।७०॥ । कलम्—अवाक्त  
 और मगुर । अन्वभृतासु—कोकिलाश्रीं । परभृता, अन्वभृता ( दूसरेसे  
 पोषित ) का अर्थ कोयल है । क्योंकि इनके अंडे कोवोंसे बढ़ाये जाते हैं ।  
 अन् ए परभृत् ( पर विभर्तीति, जो दूसरेका पोषण करता है ) का अर्थ  
 गेडा है । धृपतीषु—मृगियोंमें । विभ्रमा—विलास । कलाविधौ—  
 कलाश्रीं करनेमें करुणाविमुखिन—विगत मुख यस्य स विमुप,  
 करुणाया विमुप करुणाविमुखिन ।

२० ।—अर्थापना—धनकी गरमीसे । त्रिलोकीतिलक—तृपाणा  
 राकाना समाहारस्तिलोकी ( समाहारद्विगु । इसी प्रकार अष्टाधायी,  
 सप्तसूत्री, पञ्चवटी) त्रिलोकास्तिलक भूषण त्रिलोकीतिलक, तीनों लोकका  
 तिलक । शीतसितया—शीता चासौ सितया च शीतसिता तथा । शीतल  
 और सित ( गङ्गा ), हृदयको आनन्द देनेवाली और निष्कलङ्क ।  
 पात्रु पवित्रुपति०—दीपक पात्रुको मलिन करता है, परन्तु सज्जनोको  
 एव सैतौ पुरुषको पवित्रु, तथा अपवित्रु विचारोंसे रक्षित बनाती है । दीपक

१६ ।—तुं विद्यावृद्धान्—तिस्रो विद्या अधीयते विदन्ति वा तुं विद्यास्तुपु  
वृद्धास्तान् । वैदिकीमे वृद्ध । परावरचा—पर च अवर च परावरे ते  
जानन्तीति—भूत तथा वत्तमानको जाननेवाले । एव प्रवृद्ध—शरीरात्—  
एव प्रवृद्ध सकल मनोज सन्तापनोय शरीरात् प्रणुदन्—दूरीकुर्वन्नित्यर्थ ।

१७ ।—भैषजमेतद्—चिन्तयेत्—यदेतत् (दुःख) नानुचिन्तयेत्तदेतत् ।  
अननुचिन्तनमित्यर्थ । दुःखस्य भैषजम् । दुःखका विचार न करना ही  
उसको दूर करनेकी दवा है । मृष्यत्—लोभ करे । स्त्रिगधत्व—मिप्रियम्  
—अज्ञानवश विषयोका प्रेम एक आपत्ति है और मरणका कारण है ।  
वया गच्छन् तिष्ठति—वय जाता हुआ सकता नहो । लगातार चला ही  
जाता है । यदि—'वयोऽगच्छन् तिष्ठति' पाठ हो तो उसका अर्थ—वय  
जिना चले नहो ठहर सकता । अध्यात्मरति—आत्मन्यधिकृत्याधात्मम्,  
अध्यात्म रतिर्यस्य स । निरामिष—सासारिक विषयोंको प्रेमसे मुक्त ।

१८ ।—पुत्रम्—प्रियपुत्र । गुहा प्रविष्टम्—हृदयके भीतर बैठा हुआ ।  
न हि प्रतीक्षते—कृतम्—मृत्यु यह देखनेको प्रतीक्षा नही करता कि  
इसके जीवनका कार्य समाप्त हुआ वा नही । न देहभेदे-विलानताम्—  
यह न समझना कि शरीरका परिवर्तन मरण है । जब मनुष्य मरता है तो  
उसका आत्मा दूसरे शरीरमें जानेके लिये प्रथम शरीरको छोड़ता है ।  
न तेन किञ्चिद् प्राप्तम्—तन किञ्चिन् प्राप्तमिति न अपि तु प्राप्तमेव ।  
दो नजो प्रकृतार्थं दृष्टीकुरुत—दो न प्रकृत अर्थको दृढ़ करते है ।

१९ ।—प्राप्यगद्गदम्—वाप्ये गद्गद विशीर्णाक्षर यथा सात्तथा  
आमुश्रीमे गला रुधनेने कारण लड़खड़ाते अक्षरोंमें । अय—लोहा ।  
कैत्र कथा शरीरिणु—चैतन जीवों को दात ही का है ? जब लोहेके  
समान अचैतन पदार्थ भी गरमीसे मुलायम हो जाता है तो चैतन जीवों  
के शीतसे सन्तप्त तथा मृदु होनेमें आश्रय का है । घन्त—हाथ । प्रहरिष्यत  
—मारनेको चाहनेवाले । अथ वा—दूसरे पक्षमें—पक्षान्तरे इत्यर्थ । हिम—  
मेरुविपत्ति—जो ओसके गिरनेसे नष्ट होती है । पूर्वनिदर्शनम्—पहिला



गुण ( धृती ) को नष्ट करता है, पर सज्जनोंकी मितृता गुणोंको नष्ट नहीं करती, उनको बढाती है । दीपक स्नेह ( तेल ) को नष्ट करता है, सज्जनोंकी मित्रता स्नेह ( प्रेम ) को नष्ट नहीं करती । दीपक मल ( जाल ) को उत्पन्न करता है, सज्जनोंकी मित्रता मल अर्थात् दुष्ट विचारोंको उत्पन्न नहीं करती । दीपक दोषा ( रात्रि ) को अन्तमें शोभा नहीं देता, सज्जनोंकी मितृता दोषोंके नष्ट होनेसे शोभा देती है । दीपक चञ्चल है ; सज्जनोंकी मैत्री चञ्चल नहीं । इस प्रकार सञ्चित् पुरुषोंके यथा सत्समागम एक अवर्णनीय दीपक है । यहाँपर सज्जनोंकी मितृता साधारण और दीपकोंसे अष्ट कही गयी है । इस प्रकार उपनेय उपमानसे अष्ट होनेके कारण व्यतिरेक अलङ्कारकी छानि निकलती है । पवित्रुपति— ( नामधातु , पवित्रु करोति ) ।

नार्थन्ति—अर्था मूल्यमर्घवन्ति न भवन्तोत्यर्थ ( नामधातु ) ।

प्रतिभावत—जिसको कल्पनाशक्ति है । प्रतिभा—“प्रज्ञा नवनयो-  
न्मिधशालिनी प्रतिभा मता”—नवीनर कल्पनाश्रोत्रे चमकनेवाली बुद्धि । प्रतिभाके बिना उत्तम काव्य नहीं बन सकता । कस्यचित्—कस्यचिदेव न सर्वस्य ।

नाकवित्त्व—कविता न वनानेसे कर्तव्यकी छानि रोग, वा दण्ड नहीं होता, सज्जन कहते हैं कि दुष्टकाव्य बनाना साक्षात् मरण ( कीर्तिका नाश ) अर्थात् पूर्ण अनादर है ।

व्याख्यागम्यानि—यदि रेखी ( कृत्रिम सौन्दर्यपूर्ण ) कवित्त्वश्रोत्रका अर्थ शास्त्रोंके समान केवल टीकाश्रोत्रके सहारे लग सकता है, तो निश्चय यह तीक्ष्ण बुद्धि लोगोंके लिये सुदिन है, परन्तु हाय ! मन्दबुद्धिवालोंकी दुर्दशा है । इसका अर्थ यह है कि कविता स्पष्ट और सुबोध होनी चाहिये । इसको समझनेके लिये शास्त्रोंके समान टीकाश्रोत्रकी आवश्यकता न होनी चाहिये । दुर्मैधस—“नित्यमसिच् प्रजासंधयो’ ५।४।१३२॥ ३३ वा पाठ पश्यो । प्रजा तदा मेधान्त बहुद्रोहिसे असिच् समाधान्त

प्रत्यय होता है । अर्थात् प्रजा तथा मेधाका प्रजम् तथा मेधम् होता है, यदि उसके पूर्व नञ् ( अ वा अन् ), दुष्, और सु हो । ( अप्रजा सुप्रजा, अमेधा इत्यादि ) ।

मूर्धजा —मूर्धनि जायन्ते इति मूर्धजा केशा ।

जीवमान —जीवन्त्वा पर है, पर यहा ताच्छील्यको अर्थमें आरम्भ है । जीवमान का अर्थ है जिसको जीनेकी आदत है । 'ताच्छील्यवयो-वचनशक्तिषु चानश्' । ३।२।५२९॥—आनश् ( आन, आत्म का वर्तमान कृदन्त प्रत्यय ) ताच्छील्य अर्थमें धातुआँको लगाया जाता है । यह इन अर्थोंमें भी लगाया जाता है जहा वयस्का बोध हो वा शक्ति मालूम हो । भोग भुञ्जान —जिसको मुख उपभोग करनेकी आदत है । कवच विधाण —जो कवच धारण करने योग्य वयस्को पहुँचा । शत्रु-निग्रहान —जिसको शत्रुओंको मारनेकी शक्ति है ।

भागधेयम्—भाग एव भागधेयम्—धेय स्वार्थवाचक प्रत्यय है, अर्थात् इसको लगानेसे प्रकृतिको अर्थमें कोई भेद नहीं होता । नाम एव नामधेयम्, बाल एव बालक ( क स्वार्थवाचक है ), सुखमेव सौख्यम् ।

इतरतापश्रुताणि—अरसिकोंको सामने रसपूर्ण वचन कहनेको कष्टको छोड़ इतर सैकड़ों कष्ट ।

अस्या सखे०—यह अन्योक्ति वा अप्रसुतप्रशसा का उदाहरण है । अत्र अप्रसुत ( अवरुनीय ) को प्रशसा अर्थात् कथनसे प्रसुत ( वरुनीय ) को प्रतीति होती है तब अप्रसुतप्रशसा अलङ्कार होता है । अरसिकोंको सामने रसपूर्ण वचन कहना वैसा है जैसे बहिरोंसे बसे हुए खानपर भूकिलकी बोलौ । कविका अभिप्राय विद्वान्को उपदेश देनेमें है कि वह अरसिकोंको सामने अपनी विद्वत्ता न दिखावे ।

ईवदतका —ईव इत निन्द्य येषा ते । यहा निष्ठान्त वा मूतकृदन्त उत्तरपदको समान प्रयुक्त हुआ है । आदिताग्रि वा अप्रगदित ( जिसने अग्रिका आधान किया है ) दोनों उप होते हैं । कलानभिष्ठाः—



१ जो कल वा अव्यक्तमधुर शब्दोंके अभिन्न नहीं है २ जो कलाश्रोंको नहीं जानते ।

कृतान्त —यम । मनाक् ( अव्य )—थोड़ा ।

लोभश्चेद०— लोभ श्रिनके समान है, चुगली खाना पाप करनेके समान है—इत्यादि ।

विद्याया व्यसनम्—व्यसन—आसक्ति ।

भवन्ति नम्रा०—पहिले तीन पादोंमें विशेष बातें कही गयी हैं, जिनका समर्पण चतुर्थ पादमें सामान्यसे किया गया है । इस प्रकार सब सामान्यसे विशेषका, वा विशेषसे सामान्यका समर्पण किया जाता है तो अर्थान्तरयास श्रलङ्कार होता है ।

अथ सोऽर्थान्तरन्यासो वक्षु प्रस्तुत्य किञ्चन ।

तत्साधनसमर्पणस्य न्यासो योऽन्यस्य वस्तुन ॥

अर्थान्तरन्यास वह श्रलङ्कार है जिसमें कवि कोइ बात कह उससे समर्पणमें समर्थ दूसरी बात कहता है ।

पूर्वार्धपरार्धभिन्ना—दिनके पूर्वभागमें क्वाया छोटी २ होती जाती है, इसी प्रकारकी खलोंकी मितृता होती है, दिनके उत्तर भागमें क्वाया बड़ी २ होती है, इसी प्रकारकी सज्जनोंकी मितृता होती है ।

तज्जा —उत्तम मित्रके लक्षणोंको जाननेवाले । अनुविधेयम्—अनुसरणीयम् । उद्दिष्टम्—उपदिष्टम् । अक्षिधाराव्रतम्—अक्षिधाराचङ्कमण-वद् दुष्करम्—तलवारके धारपर चलनेके समान कठोर । 'एकस्थानेव शय्याया मध्ये खड्ग निधाय स्त्रीपुंसौ यत्र ब्रह्मचर्येण शयाते तदक्षिधाराव्रतम्'—यह दिनकर टीकाकारकी परिभाषा है ।

सम्प्रसक्ति —अतिथिके सत्कार करनेके विषयमें घबड़ाहट । सदसि कथन चाप्युपकृते —सभामें अपने ऊपर किये गये उपकारोंका कहना । अनुत्सुक —गर्वका श्राप । निरभिसवसारा —निर्गन्त श्रमिभज,

प्रपमान एव धारो यामा ता—दूसरोंके विषयकी बातें निन्दासे शून्य होनी चाहिये ।

लालायते—लार टपकाता है । अमितायते अमितु इव आचरति—इन दोनों में काङ् ( य ) प्रत्यय लगाकर सन्ताओसे घातु बनाये गये है ।

प्रणयगर्भगिर —प्रणय गर्भे धासा ता प्रणयगर्भा, प्रणयगर्भा गिर येषा ते प्रणयगर्भगिर ( बहुव्रीहिसर्भा बहुव्रीहि ) । वे लोग जिनकी बाखी प्रेमपूर्ण है । वल्गन्ति—शोभते है । समीलने० यह श्लोक भोज-प्रबन्धमें है । पहिले तीन चरणोंमें राजा भोज अपने सुखका वर्णन करता है और चाहता है कि चतुर्थ चरण बनावे कि इतनेमें एक चोर जो महलमें घुसा था, चतुर्थचरणको पूरा करता है, जो प्रथम तीन चरणोंके साथ खूब मेल खाता है और इसका तात्पर्य यह है कि आख मूढ़नेपर ( मरणके बाद ) इनमेंसे कोई चीज नष्टो रहती ।

भटिति—शीघ्र । प्रिये ! चन्द्रग्रहण समीप है । तुम्हारा सुखचन्द्र निष्कलङ्क है परन्तु पूर्णचन्द्र सकलङ्क है । इसलिये पूर्णचन्द्रको छोड़ो । शीघ्र तुम्हारे सुखचन्द्रको ग्रसेगा । अतः शीघ्र भीतर जाओ । यदा व्यतिरेकालङ्कारध्वनि है । अर्थात् व्यतिरेक अलङ्कार जिसमें उपमानसे उपमेयका आधिका वर्णित है, व्यङ्ग्य है ।

पुरा—पूर्वकालमें कवियोंकी गिनती होनेपर कनिष्ठिका कालिदासके लिये उपयुक्त हुई । अत्रतक कालिदासके तुल्य कवियों न होनेसे अनामिका नाम सार्थक हुआ । गिरने अपनी अगुलीसे बरकाका सिर काटा इसलिये शून्य अपवित्तु हुई उसको पश्चित्तु करनेके लिये धार्मिक विधियोंमें अङ्गुलीमें अङ्गुली पण्डनी पहनी जाती है । अङ्गुष्ठ, तर्जनी वा पदेष्ठिनी, मध्यमा, अनामिका, और कनिष्ठिका ये अङ्गुठिसे लेकर क्रमसे सब अङ्गुलियोंको नाम है ।

यास्यद्य—यास्यति—जायगी, न उद गयी न जा रही है । वद जाने दे है तो भी मैं अत्यन्त व्याकुल हूँ । सपुष्टम्—सम्पक स्पृष्टम् । कलुष —

१ जो कल वा अव्यक्तमधुर शब्दोंके अभिन्न नहीं है , २ जो कलाश्रीको नहीं जानते ।

कृतान्त —यम । मनाक् ( अव्य )—घोड़ा ।

लोभश्चद०— लोभ अग्निके समान है, चुगली खाना पाप करनेके समान है—इत्यादि ।

विद्याया व्यसनम्—व्यसन—आसक्ति ।

भवन्ति नम्रा०—पहिले तीन पादोंमें विशेष वाते कही गयी है, जिनका समर्थन चतुर्थ पादमें सामान्यसे किया गया है । इस प्रकार जब सामान्यसे विशेषका, वा विशेषसे सामान्यका समर्थन किया जाता है तो अर्थान्तरन्यास अलङ्कार होता है ।

त्रय सोऽर्थान्तरन्यासो वस्तु प्रस्तुत्य किञ्चन ।

तत्साधनसमर्थस्य न्यासो योऽप्यस्य वस्तुन ॥

अर्थान्तरन्यास वह अलङ्कार है जिसमें कवि कोई वात कह कर उसके समर्थनमें समर्थ दूसरी वात कहता है ।

पूर्वावपरार्थभिन्ना—दिनके पूर्वभागमें क्हाया छोटी २ होती जाती है, इसी प्रकारकी खलोंकी मितृता होती है, दिनके उत्तर भागमें क्हाया बड़ी २ होती है , इसी प्रकारकी सज्जनोंकी मितृता होती है ।

तद्वद्वा —उत्तम मित्रके लक्षणोंको जाननेवाले । अनुविधेयम्—अनुसरणीयम् । उद्विष्टम्—उपदिष्टम् । असिधाराव्रतम्—असिधाराचङ्कमणवद् दुष्करम्—तलवारके धारपर चलनेके समान कठोर । 'एकस्यामेव शय्याया मध्ये खड्ग निधाय स्त्रीपुंसौ यत्र ब्रह्मचर्येण शयाते तदेसिधाराव्रतम्'—यह दिनकर टीकाकारकी परिभाषा है ।

सम्भ्रमविधि —अतिथिके सत्कार करनेके विषयमें घबड़ाहट । सदसि कथन चाप्युपकृते —सभामें अपने ऊपर किये गये उपकारोंका कहना । अनुत्पन्न —गर्वका अभाव । निरभिभवसारा —निर्गत अभिभव ।

है कि वे जिस किसीको देखें उसीकी मिथ्यास्तुति न करें । यह स्वाभिमानका उपदेश करता है ।

आद्रयन्ति—आर्द्रसे नामधातु—गीला करते हैं ।

यद्दृक् सुदुरीक्षसे—यह भी श्रयोक्तिका उदाहरण है । इससे कवि स्वाभिमानो तथा सन्तोषी पुरुषका वर्णन करता है ।

निर्दोवारिकनिर्दयोक्तपदसमूह = निर्गत दोवारिक (द्वारपाल) — यद्दृक् तत्र निर्दोवारिकम् । निर्दया चासा चक्षिण्य निर्दयोक्ति । निर्दयोक्ता अपदसमूहान्दयोक्तपदसमूह—निर्दोवारिक च तन्निर्दयोक्तपदसमूह च निर्दोवारिकनिर्दयोक्तपदसमूह—परमेश्वरके भवनपर कोई द्वारपाल नहीं जो लोगोंकी भीतर आनेसे रोके और न वहाँ कोई ऐसा आदमी है जो कठोर वचन कहे ।

श्रीवत्सङ्ग—श्रीवत्स चिह्नसे युक्त । श्रीवत्स—उरमि रोमावर्त—वक्षस्थलका केशोका भवरा । भागवतमें कथा है कि यह भगुके छात्र मारनेका चिह्न है । एकवार भगुको यह जाननेकी इच्छा हुई कि ब्रह्मा, विष्णु, तथा शिव इनमें सबसे श्रेष्ठ कौन है । भगु इन तीनोंके यहाँ गये और उनके सामने श्रवितृप क्रिया । ब्रह्मा तथा शिव उस श्रवितृपको न सह सके । इसके अनन्तर भगु विष्णुकी यहाँ गये और उनको धृदयपर लात मारी । भगवान् विष्णु कुछ न बोले । यही श्रीवत्स चिह्न है ।

दृक्कटिपतम्—सनसे कलित । यह श्लोक भानसिक पूजाका वर्णन करता है ।

भेदप्रतिपत्ति—भेदका ज्ञान । मैं उनको भिन्न नहीं समझता ।

रामो राजमणि ०—इस श्लोकमें रामशब्दको सत्य विभक्तियोंके एकवचनके रूप दिखाई देने हैं ।

कहू कि 'जाओ' तो मेरा वचन प्रेमशून्य होगा, यदि कहू - कि 'ठहरो' तो इससे तुम्हारे ऊपर अपनी प्रभुता प्रकट होगी, यदि कहू कि 'जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो' तो यह उपेक्षा दिखायेगा, और यदि कहू कि 'तुम्हारे बिना मैं जी नहीं सकता' तो यह कदाचित् संभव वा असंभव समझा जायगा ।

श्मशानम्—श्मान श्वा शिरते श्नेति श्मशानम् ।

बाले नाथ—यह पतिपत्नीका संवाद है ।

पति—बाले । पत्नी—नाथ । पति—विमुञ्च मानिनि रुधम् । पत्नी—

रोषाग्मया कि कृतम् । पति—खेदोऽस्मासु । पत्नी—न मेऽपराधति—मयि ।

पति—तत्कि रोदिषि—वचसा ? पत्नी—कस्याऽग्रतो रुद्यते ? पति—नश्वेत

न्मम । पत्नी—का तशोस्मि ? पति—दयिता । पत्नी—नास्मीत्यतो रुद्यते ।

श्रम्वा कुप्यति—शिवपुत्र पशुख कार्तिकेय शिवसे कहते हैं । श्रम्वा

—त्यज्यताम्—हे पिता जी, माताको कोप आता है, इसलिये इस सिरपर

रक्खी हुई गङ्गाको छोड़िये । आपको मातासे गङ्गा अधिक प्रिय है और

आपने उसे सिरपर धारण किया है । यही कारण है कि पावतीको क्रोध

आता है । इसलिये गङ्गाको छोड़िये । शिव कहते हैं—विद्वन् परमुख—

वद । वह मुझपर अत्यन्त अनुरक्त है, वह क्या लाय ? विशुद्धवदन—

जिसका मुख बढ़ गया था । अपने हृ मुखोंसे कार्तिकेयने कहा—अप्रोधि

वारिधि । वह समुद्रमें जाय । अपने हृ मुखोंसे वह हृ समुद्रवाचक

पदोंका प्रयोग करते हैं ।

काष्ठादग्नि०—यह तथा इसको आगेके दो श्लोक भास कविके नाटकोंसे

लिये गये हैं । यस्या न—शकुन्तलाके 'पातु न प्रथम' को साथ मिलान

करो । वीजन्ति । पचाद्यजन्त से क्विप् हुआ है, नामधातु । वीजयतीति

वीज ( इस प्रकार वीज् वीज चु० से बना हुआ सन्नाशब्द है ) । वीज

इवाचरतीति वीजति ( नामधातु ) । इसका अर्थ 'पखा भूलता है' है ।

रे रे चातक०—इस श्रमोक्तिसे कवि अपने पाठकोंको उपदेश करता



## परिशिष्ट ( क ) ।

कृ धातुके रूप ।

कृ—पर (कर्तरि)—करोति (लट्), करोतु (लोट्), अकरोत् (लङ्), कुर्यात् (लिट्), चकार (लिट्), कर्ता (लुट्), करिष्यति (लृट्), अकरिष्यत् (लृङ्), अकार्षीत् (लुङ्), क्रियात् (आशीर्लिङ्) ।

कृ—आत्मने (कर्तरि)—कुसते, कुसताम्, अकुसत, कुर्वीत, चक्रे, कर्ता, करिष्यते, अकरिष्यत्, अकृत, कृषीष्ट ।

कृ—( कर्मणि )—क्रियते, क्रियताम्, अक्रियत, क्रियेत, चक्रे, कर्ता—कारिता, करिष्यते—कारिष्यते, अकरिष्यत्—अकारिष्यत्, अकारि, कृषीष्ट—कारिषीष्ट ।

कृ—खिजन्त तथा सन्नन्तके रूप ३१२ वें पृष्ठमें दिये गये हैं ।

कृ—( यङ् ) चिकीयते इत्यादि, यङ्लुगन्त—चर्करोति—चर्कति—चरिर्कति—चरोर्कति ।

कृदन्त—कुर्वत् ( शतृ पर ), कुर्वीण ( ज्ञानच्—द्वात्म ), क्रियमाण ( कर्मणि ज्ञानच् ), कृत ( निष्ठा—क्त ), कृतवत् ( कर्तरि निष्ठा—त्तवत् ), करिष्यत् ( भविष्यति शतृ ), करिष्यमाण ( भवि आत्म ज्ञानच् ), कृत्वा ( अथय कृदन्त ), कार कारम् ( ङमुल् ); कर्तुम् ( तुमुन् ), चकृवम् ( क्लृप् ), चक्राण ( आत्म कानच् ), कार्य ( ष्यत् ), कारित—(खिजन्त से क्त ), कारयत् ( खिजन्त—शतृ ), कारयित्वा, कारयितुम्, चिकीर्षत्—चिकीर्षमाण, इत्यादि ।

ऊपर दिये हुए रूप केवल 'कृ' के हैं । इनको देखनेसे विद्यार्थियोंको साहित्यमें आनेवाले रूपोंके पहिचाननेमें सुगमता होगी ।

लकारों के प्राचीन नाम—भवन्ती ( लट् ), परोचा ( लिट् ), अनयतनी ( मृता ) वा ह्यस्तनी ( लङ् ), अयतनी ( लृङ् ), भविष्यन्ती ( लृट् ), अनयतनी ( भाविनी ) वा अरुनी ( लुट् ) अतिसर्गी ( लोट् ), विधायिका ( लिङ् ), आशी ( आशीर्लिङ् ), अतिपातिका ( लृङ् ), पवमी तथा सपमी ये भी लोट् तथा लिङ् के नाम हैं । क्योंकि पाणिनिके लकारोंके क्रमसे यह पांचवां तथा सातवां लकार है—लट्, लिट्, लृट्, लृङ्, लोट्, ( छन्दोमात्रगीचर—केवल वेदमें ), लोट्, लङ्, लिङ्, लुङ्, लृङ् ।

## परिशिष्ट (ख) ।

### पाणिनीय पद्धति ।

- संस्कृत व्याकरणोंमें पाणिनिका नाम प्रसिद्ध है । पाणिनिका व्याकरण, जो आठ अध्यायोंमें है, अष्टाध्यायीके नामसे प्रसिद्ध है । अष्टाध्यायीकी टीकाओंमें भट्टोजीदीक्षितकी सिद्धान्तकोमुद्री उद्धृत प्रचलित है । संस्कृत व्याकरणके उत्तम ज्ञानके लिये सिद्धान्तकोमुद्रीका पढ़ना आवश्यक है । सिद्धान्तकोमुद्रीका अर्त्तप राघुसिद्धान्तकोमुद्री है । इस ग्रन्थको पढ़नेकी इच्छा रखनेवालोंके लिये मार्ग सुगम करना ही इस परिशिष्टका उद्देश है ।

पाणिनिके नियम सक्षिप्त है और बहुत अर्थका जोष कराते है । ये सूत्र कहते हैं । अतिसक्षिप्त होनेके कारण इनका कष्ट करना सुगम है । और इस कारण ये व्याकरणका पढ़ना सुगम बनाते है । 'संस्कृत-शिक्षिका' पढ़ते समय इन सूत्रोंका अभ्यास करनेसे व्याकरणके नियमोंका मनपर संस्कार दृढ़ होगा । सूत्रोंके समझनेके लिये कुछ सञ्ज्ञाओं और परिभाषाओं ( मनुष्याख्यान ) का ज्ञान होना आदन्त आवश्यक है । पाणिनिके व्याकरणके मूलमूल अधोलिखित चौदह मातृशब्द ( जिसे प्रास ) सूत्र है —

अइउः । ऋलृक् । एओह् । ऐश्रीच । इयवरट् । लण् । लमङ्-  
यनम् । अमञ् । घटघष् । लङ्गडदश् । खफङ्ठथचटतर् । कपप् ।  
शषसर् । हल् ।

इन चौदहों सूत्रोंके अन्तिम अक्षर तथा लण् में ल का अ इत् कहते हैं । इस प्रकार ण्, क, ङ् इत्यादि इत् है । च, प, इत्यादि व्यञ्जनोंके साथ का अ अक्षरोंके उच्चारणमें सुगमता होनेके लिये है । इन सूत्रोंके किसी अक्षरको इत् वर्णके साथ मिलानेसे अक्, अच, अल, अल्, इत्यादि निकलते हैं । ये प्रत्याहार कहते हैं । इनसे लेकर इत् तकके वर्णों का ( इत् छोड़कर ) बोध होता है । से क् को ह्ये



से क्तकने सब वर्णों (अ, इ, उ, ऋ) का बोध होता है । अच् से सब स्वरोंका बोध होता है । 'हयवरट्' को ह से 'हल्' को ल् तक हल् प्रत्याहार है, जिससे सब व्यञ्जनोका बोध होता है ।

स्वर तीन प्रकारके है । दृक्, दीर्घ, श्रुत । दूरसे किसीको पुकारनेमें सम्बोधनका अन्तिम स्वर श्रुत होता है । इनमें प्रत्येक स्वर दो प्रकारका होता है—अनुनासिक और अनुनासिक । इस प्रकार स्वर छ प्रकारके है । उदात्त, अनुदात्त, तथा स्वरित ये भी तीन स्वरके भेद है, जो वेदमें पाये जाते है । इस रीति से अ, इ, उ इन में प्रत्येकके अठारह भेद है । ऋ को भी अठारह भेद है । लृ को दीर्घ नहीं होता, इस लिये उसको १२ भेद है । ऋ तथा लृ ये सवर्ण है, और इनके ३० प्रकार है । ए, ऐ, ओ, तथा औ को ह्रस्व नहीं होता, इस लिये इनमें प्रत्येक १२ प्रकारके है ।

ऊपर दिये हुए विषयको पढ़नेसे यह मालूम होगा कि जब प्रत्याहार किसी स्वरका बोध कराता है तो अपने सब प्रकारोंका बोध कराता है । परन्तु यदि उस स्वरके बाद 'त्' हो तो उसीका बोध होता है जिसको बाद 'त्' है । अक् फटनेसे सब प्रकारके अ, इ, उ, ऋ, तथा लृ का बोध होता है । अत् से सब प्रकारके ह्रस्व अ, आत् से दीर्घ आ को सब प्रकारोंका बोध होता है ।

स्थानानि ( उच्चारणके इन्द्रिय ) १० वा पृष्ठ देखो ।

अकुहविसर्जनीयाना कण्ठ ( अ, कु-कवर्ग, ह्, तथा विसर्ग इनके कण्ठ स्थान है, अर्थात् ये कण्ठस्थानीय है ) ।

इचुयशानां तालु ( इ, चु—चवर्ग, य्, तथा श् इनका तालु स्थान है, अर्थात् ये तालुस्थानीय है ) ।

ऋदुरषाणा मूर्धा ( ऋ, टु—टवर्ग, र्, तथा ष् इनका मूर्धस्थान है अर्थात् ये मूर्धस्थानीय है ) ।

लृलुलसानां दन्ता ( लृ, लु-लवर्ग, ल्, तथा म् इनका दन्तस्थान है अर्थात् ये दन्तस्थानीय है ) ।

उपध्मानौषानामोष्ठौ ( उ, पु पत्र्ग, तथा उपध्मानौष ~ इत्का  
ओष्ठस्वान है, अर्थात् ये आष्ठस्वानीय है ) ।

लमडलनाना नासिका च ( ज्, सु, इ, रा, न इनका नासिका स्वान भी  
है, अर्थात् ये नासिकास्वानीय भी है ) ।

एदौतो कण्ठतालु ( ए तथा ऐ का + कण्ठ तथा तालु स्वान है ) ।

ओदौतो कण्ठोष्ठम् । ( ओ, ओ का कण्ठ तथा ओष्ठ स्वान है ) ।

वकारस्य दन्तोष्ठम् ( व् का दन्त तथा ओष्ठ स्वान है ) ।

जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम् ( जिह्वामूलीय का स्वान जिह्वाका मूल है ) ।

नासिकानुस्वारस्य ( अनुस्वारका नासिका स्वान है ) ।

### सन्धिनियमा ।

१। प्रति + उत्तरम् = प्रत्युत्तरम्, मधु + अरि = सध्वरि, पितृ +  
अर्थ = पितृथ, लृ + आकृति = लाकृति ।

§ इको यर्थाच्च । ६।१।७७। इक्—इ, उ, ऋ, लृ—के स्वानमें यर्  
अर्थात् म्, व, र, तथा ल् होते हैं, यदि उनमें आगे अच् वा खर हो ।  
२६ वे ष्टुमें २रा नियम देखी ।

२। दैत्य + अरि = दैत्यारि, ओ + इंश = ओंश, रघु + उत्तम =  
रघूत्तम, होतृ + ऋकार = होतृकार, होतृ + लृकार = होतृकार ।

० क के पूर्व अर्धविसर्गसदृश चिह्नको जिह्वामूलीय, तथा प के पूर्व अर्धविसर्गसदृश  
चिह्नको उपध्मानौष कहते हैं । राम + करोति ~ राम करोति, वा राम ~ करोति,  
राम + पाति = राम पाति, वा राम ~ पाति । जिह्वामूलीय तथा उपध्मानौषक लिखनेका  
धरार कम है ।

† यदि 'ओष्ठ' के पूर्व 'थ' हो, तो वह थ तथा श्री मितकर श्री वा श्री होता  
है । जैसे—कण्ठीष्ठम्, वा कण्ठीष्ठम् ।

§ षटाध्यायिके प्रति अध्यायमें चार पाठ हैं और पादोंमें मूत्र है । यह उठ  
रगदहे प्रथम पादका ८७ वां सूत्र है । इसी प्रकार सूत्रोंके आगे दिये हुए षट्ठीको  
पदमग्न चाहिये ।

से क् तक्रके सब वर्णों (अ, इ, उ, ऋ) का बोध होता है । अच् से सब स्वरोंका बोध होता है । 'ह्रस्वरट्' के ह से 'हल्' के ल\_तक्र हल् प्रत्याहार है, जिससे सब व्यञ्जनोंका बोध होता है ।

स्वर तीन प्रकारके हैं । ह्रस्व, दीर्घ, म्रुत । दूरसे किसीको पुकारनेमें सम्बोधनका अन्तिम स्वर म्रुत होता है । इनमें प्रत्येक स्वर दो प्रकारका होता है—अनुनासिक और अननुनासिक । इस प्रकार स्वर छ प्रकारके हैं । उदात्त, अनुदात्त, तथा स्वरित ये भी तीन स्वरके भेद है, जो वेदमें पाये जाते हैं । इस रीति से अ, इ, उ इनमें प्रत्येकके अठारह भेद है । ऋ के भी अठारह भेद है । लृ को दीर्घ नहीं होता, इस लिये उसके १२ भेद है । ऋ तथा लृ ये सवर्ण हैं, और इनको ३० प्रकार है । ए, ऐ, ओ, तथा औ को ह्रस्व नहीं होता, इस लिये इनमें प्रत्येक १२ प्रकारके है ।

ऊपर दिये हुए विषयको पढ़नेसे यह मालूम होगा कि सब प्रत्याहार किसी स्वरका बोध कराता है तो अपने सब प्रकारोंका बोध कराता है । परन्तु यदि उस स्वरके बाद 'त्' हो तो उसीका बोध होता है जिसके बाद 'त्' है । अक् ऋकेसे सब प्रकारके अ, इ, उ, ऋ, तथा लृ का बोध होता है । अत् से सब प्रकारके ह्रस्व अ, आत् से दीर्घ आ के सब प्रकारोंका बोध होता है ।

स्थानानि ( उच्चारणके इन्द्रिय ) १० वा पृष्ठ देखो ।

अकुहविसर्जनीयाना कण्ठ ( अ, कु-जवर्ग, ह्, तथा विसर्ग इनका कण्ठ स्थान है, अर्थात् ये कण्ठस्थानीय है ) ।

इक्षुयशाना तालु ( इ, क्षु—क्षवर्ग, य्, तथा श् इनका तालु स्थान है, अर्थात् ये तालुस्थानीय है ) ।

ऋदुर्षाणा मूर्धा ( ऋ, टु—टवर्ग, र्, तथा ष् इनका मूर्धस्थान है अर्थात् ये मूर्धस्थानीय है ) ।

लतुलसाना दन्ता ( ल, तु तवर्ग, ल्, तथा स् इनका दन्तस्थान है अर्थात् ये दन्तस्थानीय है ) ।

उपध्मानोयानामोष्ठौ ( उ, पु-पञ्चर्ग, तथा उपध्मानोय ~ इनका ओष्ठस्वान है, अर्थात् ये आष्ठ्वानोय है ) ।

जमडखनाना नासिका च ( ज, म, ड, ण, न इनका नासिका स्वन भी है, अर्थात् ये नासिकास्वानोय भी है ) ।

एदोतो कण्ठतात् ( ए तथा ऐ का + कण्ठ तथा तालु स्वन है ) ।

ओदोतो कण्ठोष्ठम् ( ओ, औ का कण्ठ तथा ओष्ठ स्वन है ) ।

वकारस्य दन्तोष्ठम् ( व् का दन्त तथा ओष्ठ स्वन है ) ।

जिह्वामूलोपस्य जिह्वामूलम् ( जिह्वामूलीय का स्वन जिह्वाका मूल है ) ।

नासिकानुस्वारस्य ( अनुस्वारका नासिका स्वन है ) ।

### सन्धिनियमा ।

१ । प्रति + उत्तरम् = प्रत्युत्तरम्, मधु + अरि = मधुअरि, पितृ + अर्थ = पितृर्थ, लृ + आकृति = लाकृति ।

§ इको यर्थाच्च । ६।१।७७॥ इक-इ, उ, नृ ल-के स्वनमें यत् अर्थात् य्, व्, र, तथा ल् होते हैं, यदि उनके प्रागे अच् वा स्वर हो । २८ वे प्रथमें २१ नियम देखो ।

२ । दैत्य + अरि = दैत्यारि, श्रौ + इश = श्रौश, रघु + उत्तम = रघुत्तम, होतृ + ऋकार = होतृकार, होतृ + लृकार = होतृकार ।

० क के पूर्व अर्धविसर्गसदृश चिह्नको जिह्वामूलीय, तथा प के पूर्व अर्धविसर्गसदृश चिह्नको उपध्मानोय कहते हैं । राम + करोति = राम करोति, वा राम - करोति, राम + पाति = राम पाति वा राम ~ पाति । जिह्वामूलीय तथा उपध्मानोयके नियमोंका इंचार कम है ।

† यदि 'ओष्ठ' के पूर्व 'च' हो, तो वच् च तथा चो निम्नकर 'ओ' वा 'ओ' होता है । जैसे—कण्ठीहम वा कण्ठीहम् ।

§ अष्टाध्यायीके प्रति अध्यायमें चार पाठ हैं और पाठोंमें भूष है । यह इ अध्यायके प्रथम पादका ८० वां सूत्र है । इसी प्रकार सूत्रोंके आदे दिये रूप चर्चा समझना चाहिये ।

अक सवर्णं दीर्घ । ६।१।१०१॥ सवर्ण ( समान ) अच् आगे रहनेपर अच् को दीर्घ एकादेश होता है । १८ वे पृष्ठमें ६ वा नियम देखो ।

३ । उप + इन्द्र = उपेन्द्र , परम + इंश्वर = परमेश्वर , रसा + ईश = रमेश , चन्द्र + उदय = चन्द्रोदय , गङ्गा + उदकम् = गङ्गोदकम् , कृष्ण + ऋद्धि = कृष्णर्द्धि , तव + लृकार = तवलृकार —

अदेह् गुण । १।१।२॥—अत्-अ तथा एह्—ए, ओ गुण कहाते हैं । ३ वा पृष्ठ देखो । आइ गुण । ६।१।८७॥ अक्षरके आगे यदि अच् हो तो उन दोनोंके स्थानमें एज गुण आदेश होता है । १८ वे पृष्ठमें ८ वा नियम देखो ।

४ । कृष्ण + एरुत्वम् = कृष्णैरुत्वम् , परम + ऐश्वर्यम् = परमैश्वर्यम् , गङ्गा + ओघ = गङ्गोघ , मघा + ओघाघ वा ओपधि = महोपधि ।

वृद्धिरादेच् । १।१।१॥ आत्—आ, तथा ऐच्-ऐ, ओ वृद्धि कहाते हैं । ५ वे पृष्ठमें ११ वा नियम देखो । वृद्धिरेचि । ६।१।८८॥ ( आत्-एचि वृद्धि )—यदि अवर्णके बाद एच् हो तो उन दोनों स्वरोके स्थानमें एक वृद्धि आदेश होता है ३५ वे पृष्ठमें ३रा नियम देखो ।

५ । हरे + ए = हरये , विष्णो + ए = विष्णवे , ने + अक = नायक , पो + अक = पावक —

एवोऽपवायाव । ६।१।७८॥ अच् आगे रहनेपर एच्के स्थानमें अय्, अत्र्, आय्, आव्, ये आदेश होते हैं । २४ वे पृष्ठमें ५वा नि० देखो ।

६ । हरे + एहि = हर एहि वा हरयेहि , विष्णो + इह = विष्ण इह वा विष्णविह , श्रिये + उद्यत = श्रिया उद्यत वा श्रियायुद्यत , गुरो + अपि = गुरा अपि वा गुरावपि—

सुतिङन्त पदम् । १।४।१४॥ सुप् ( कारक विभक्तिया ) वा तिङ् ( लकारोके प्रत्यय ) जिनके अन्त में हों, वे पद कहाते हैं ।

१४ वा पृष्ठ ४या नियम देखो ।

लोप शाकल्यस्य । ६।३।१६॥ शाकल्यचार्यके मतसे, पदके अन्तमें

रहनेवाले अय्, आय्, अय्, आव् ( ए, ऐ, औ, तथा औ के आदेशके ) प वा व् का विकल्पसे लोप होता है ।

२४वे पृष्ठमें ६ वा नियम देखो ।

७ । ईदूवेद्वद्विवचन प्रसृष्टम् । १।१।११॥ ईकारान्त, ऊकारान्त, तथा एकारान्त द्विवचन प्रसृष्ट कहता है । २६ वा पृष्ठ वां नियम ।

८ । एहि कृष्ण अतु गौक्षरति वा एहि कृष्णाऽतु गौक्षरति ( सर्व् मृतो विकल्पते )—कपी + आगच्छत = कपी आगच्छत , हरी + एतौ = हरी एतौ , विष्णू + इमौ = विष्णू इमौ पचते + इमौ = पचते इमौ , अमी + ईशा = अमी ईशा —

मृतप्रसृष्टा अचि नित्यम् । ६।१।१२५ ॥ स्वर आगे रहनेपर मृत और प्रसृष्ट को नित्य प्रकृतिभाव होता है , अर्थात् इनमें कोई सन्धिकार्य नहीं होता । २६ वा पृष्ठ नियम ५, तथा ६५ वा पृष्ठ टिप्पणी १ में देखो ।

९ । ह्यनुभव वा ह्यनुभव , कर्ता वा कर्ता , वर्तमान वा वर्तमान —

अचोरहाभ्या ह् । ६।४ ४६ ॥ अच्से पर रहनेवाले र् वा ङ् के बादके यर् को विकल्पसे द्वित्व होता है । ७१ पृष्ठ २ नियम ।

१० । विम्ब + ओष्ठ = विम्बोष्ठ वा विम्बौष्ठ , स्थूल + ओतु = स्थूलोतु वा स्थूलोतु —

ओत्थोष्ठयो समासे वा ( वार्तिक )—समासमें अ वर्णके बाद यदि ओतु वा ओष्ठ आये तो पर का ( ओतु वा ओष्ठ का ) एव विकल्पसे होता है ।

११ । हरे + अय = हरेऽय , विष्णो + अय = विष्णोऽय—

एङ् पदान्तादति । ६।१।१०६ ॥ अ आगे रहनेपर पदान्तमें रहनेवाले ङ् को पूर्वङ् एका आदेश होता है , अर्थात् अ का लोप होता है । ३३वां पृष्ठ नियम ४ ।

## व्यञ्जनसन्धि ।

१२ । वाक् + ईश = वागीश , चित् + रूपम् = चिद्रूपम्—  
भला जशोऽन्ते । ८ । २ । ३८७ ॥ पदके अन्तमें रहनेवाले भल् को  
जश् होता है । ७१ पृष्ठ, नियम ३ ( अ ) ।

१३ । हरिस् + शेते = हरिशेते , रामस् + चिनोति = रामश्चिनोति ,  
सत् + चित् = सच्चित् , सत् + जन = सज्जन , श्रौत् + जयति = श्रौ-  
जयति—

क्षोद्युना श्चु । ८ । १४१० ॥ स् तथा त्त्वर्ग को श् तथा च्त्वर्ग का योग  
रहनेपर श् तथा च्त्वर्ग होता है । २४ पृष्ठ नि ७ ।

१४ । रामस् + षष्ठ = रामाषष्ठ , तत् + टीका = तट्टीका—ष्टुना ष्टु ।  
८ । १४११ ॥ स् तथा त्त्वर्ग को ष् तथा ट्त्वर्ग का योग रहनेपर ष् तथा ट्  
वर्ग होता है । ३० पृष्ठ, नियम ६ ।

१५ । तत् + मरणम् = तद्मरणम् वा तन्मरणम् , एतत् + मुरारि  
= एतद्मुरारि वा एतमुरारि , तत् + मात्रम् = तन्मात्रम् , चित् +  
मयम् = चिन्मयम् , वाक् + मयम् = वाङ्मयम्—

यरोऽनुनासिकोऽनुनासिको वा । ८ । ४१४५ ॥ अनुनासिक आगे रहनेपर  
पदके अन्तमें रहनेवाले यर् को अनुनासिक विकल्पसे होता है । प्रत्यये  
भाषाया नित्यम् । ७१ पृष्ठ नि ३ ( व ), ३ ( क ) ।

१६ । तत् + लय = तल्लय , विद्वान् + लिखति = विद्वालिखति—  
तोर्लि । ८ । ४१६० ॥ ल आगे रहनेपर तवर्गको परसवर्ण होता है ।

१२९ वा पृष्ठ देखो ।

१७ । उद् + स्थानम् = उत्थानम् , उद् + काम्नम् = उत्तम्नम् /  
उत्थानम् तथा उत्थत्तम्नम् भी होता है पर प्रयोगमें कम आता है ।

उद् स्थास्तम्नो पूर्वस्य । ८ । ४१६१ ॥ उद् पूर्वके स्था तथा स्तम्-  
धानुको पूर्वसवर्ण होता है । दूसरे सूत्रसे स्था तथा स्तम् को स् को उसके

पूर्व रहनेवाले वर्णका सवर्ण वर्ण अर्थात् य होता है । दूसरे सूत्रसे य का विकल्पसे लोप होता है । ६४ पृष्ठ, टिप्पणी देखो ।

१८ । तत् + दितम् = तद्दितम् वा तद्धितम्, वाक् + हरि = वाग्हरि वा वाग्घरि —

भयो षोऽन्यतरच्चात् । ८।४।६२॥ भय परस्य हस्य ( पूर्वसवर्ण विकल्पेन )—भय् ( वर्गके पहिले ४ वर्ण ) से पर रहनेवाले ह् को विकल्पसे वर्गका चतुर्थ वर्ण होता है ( क्योंकि वर्गका चतुर्थ ह् का सवर्ण है, जो घाघ तथा महाप्राण है ) १०८ पृष्ठ, १२ नियम देखो ।

१९ । तत् + शिव = तच्छिव वा तच्छिव, तत् + श्लोक = तच्छ्लोक वा तच्छ्लोक, पर वाक् + श्योतति—

शश्लोकि । ८।४।६३॥ इत्वममीति वाच्यम् । भय से पर रहनेवाले श् को विकल्पसे ह् होता है, यदि उसके आगे अट् वा कात्यायनयो अनुसार अस् हो ९२ पृष्ठ, टिप्पणी देखो ।

२० । उद् + पतति = उत्पतति—

खरि च । ८।४।५५॥ ( भला खरि चर )—खर् आगे रहनेपर भल् को चर होता है । ११ वा पृष्ठ देखो ।

२१ । पुष्यम् + हरति = पुष्य हरति, त्वम् + करोषि = त्व करोषि वा त्वङ्करोषि, हरिम् + वदे = हरि वन्दे वा हरिवन्दे ।

मोऽनुस्वार । ८।३।२३॥ ( पदान्तस्य, हलि ) हल् आगे रहने पर पदान्त से रहनेवाले म् को विकल्पसे अनुस्वार होता है १४ पृष्ठ नियम ५ ।

२२ । प्रत्यङ् + आत्मा = प्रत्यङ्जात्मा, सुगण् + ईश = सुगण्यीश, सन् + अचुरत = सन्नचुरत —

डमो ङ्स्वादिचि डमुण नित्यम् । ८।३।३२॥ ५६ पृष्ठ, नि ५ ।

२३ । शार्ङ्गिन् + द्विभ्यि = शार्ङ्गिश्चिद्विभ्यि, कान् + चन = काचन, विडालान् + ताडयति = विडालास्ताडयति—



नप्रकृष्यप्रशान् । ८।१।७॥ २९ पृष्ठ, नि ३ । प्रशान् अपवाद है । प्रशान् + चिनोति = प्रशाञ्चिनोति, प्रशाञ्चिनोति नहीं ।

२४ । स्व + क्राया = स्वच्छाया ; अ + क्तिन्त् = अक्त्तिन्त्, चि + क्तेद = चिक्तेद—

हे च । ६।१।७३॥ कृ आगे रहने पर दृक्को तुक् आगम होता है ( तु जिसको 'स्तोषुना षु' से च् होता है ) १९६ पृष्ठ, १ टिप्पणी देखो ।

चच्छिद्यते—

दीर्घात् । ६।१।७५॥ कृ आगे रहनेपर दीर्घको भी तुक् आगम होता है । १९६ पृष्ठ, टिप्पणी १ देखो ।

लक्ष्मी + क्राया = लक्ष्मीच्छाया वा लक्ष्मीक्राया—

पदान्ताद्वा । ६।१।७६॥ पदान्तमें रहनेवाले दीर्घको विकल्पसे तुक् आगम होता है १९६ पृष्ठ, टिप्पणी १ ।

आ + क्रादयति = आच्छादयति , मा + क्तिन्त् = माक्त्तिन्त् ।

आङ्माडोश्च । ६।१।७४॥ यह 'पदान्ताद्वा' का बाधक है । आ तथा मा को नित्य तुक् होता है १९६ पृष्ठ, टिप्पणी १ ।

### विसर्गसन्धि ।

२५ । मन + रथ = मनोरथ , मन + हर = मनोहर , वीर + अस्ति = वीरोऽस्ति । पृष्ठ १८ नियम ७, ८ तथा पृष्ठ २३ नियम ४ ।

२६ । शुक + उत्पतति = शुक उत्पतति , वाला + आगच्छन्ति = वाला आगच्छन्ति , देवा + जयन्ति = देवा जयन्ति । पृष्ठ १९ नियम ९, तथा १४ पृष्ठ, नियम २ ।

२७ । कपि + अस्ति = कपिरस्ति , मनो + अपत्यानि = मनोरपत्यानि , नि + रस = नीरस , नि + रोग = नीरोग २३ पृष्ठ, नियम २ तथा ३ ।

२८ । अश्व + चरति = अश्वश्चरति , जन + तरति = जनश्चरति , राम + टीकते = रामष्टीकते । पृष्ठ १३ नि १, तथा पृष्ठ २९ नियम ४ ।

२८। हरि + शेते = हरिश्चेते, वा हरि शेते, हरि + स्फुरति = हरिस्फुरति, हरि स्फुरति, वा हरिस्फुरति—

वा शरि । ८।३।३६॥ शर् प्रागे रहनेपर विसर्गको विसर्ग होता है अर्थात् वह कायम रहता है । ३५ पृष्ठ, नि १ ।

अपरे शरि वा विसर्गलोपो यत्कथं —यैसा शर् जिसके बाद खर हो, प्रागे रहनेपर विसर्गका विकल्पसे लोप होता है । राम + स्थाता, राम-स्थाता, वा रामस्थाता ।

३०। स + शम्भु = स शम्भु, एष + विष्णु = एष विष्णु, पर एषक + रुद्र = एषको रुद्र, अस + शिव = अस शिव, वा असशिव, एष + अतु = एषोऽतु—

एतत्तदी सुलोपोऽकोरनञ् समासे हति । ६।१।१३२॥ हल प्रागे रटने पर ककाररहित एतद् तथा तद् के स् का लोप होता है, पर नञ् समासमें नहीं होता । (इसलिये एषको रुद्र और अस शिव) ३५पृष्ठ, नियम २ ।

### अन्तर्गत सन्धि ।

३१। पितृ + नाम् + पितृणाम्, कर + न = कर्ण, कृप् + न = कृष्ण, रामेण, रामाणाम्, रामान्—

रघाण्यां नो ख समानपदे । ८।४।१॥ एक ही पदमें र् तथा ष् के बाद आनेवाले न् को ख् होता है । १७ पृष्ठ, नि १।\* अथर्णोऽथ शतृ वाचरम् —अर् के बाद आनेवाले न् को ख् होता है । १७ पृष्ठ, नि १। अट्कुप्वाद्नुम्-अवायेऽपि । ७।४।२॥ अट्, कु—फवर्ग, पु—पवर्ग, आह् (उपवर्ग आ), नुम् (अनुस्वार) इनका व्यवधान होनेपर भी, अर्थात् अ, र्, वा ष तथा न् के बीचमें अट् इत्यादि रहनेपर भी न् को ख् होता है । पृष्ठ १७, नियम २ ।

\* पालिनिकी सूत्रोंकी न्यूनता कात्यायनने अपने वार्त्तिकसे पूर्ण की । वार्त्तिकके अन्तमें 'वाचम् वा 'कलत्रम्' आता है । इन दोनोंकी न्यूनता भाष्यकार पतञ्जलिने पूर्ण की, जिनके नियम इष्टि कहे जाते हैं । इष्टियोंके अन्तमें 'इष्यते' आता है ।

३२ । वाच् + सु = वाक् + सु -

चा कु । ७।२।३०॥ भल् आगे रहनेपर वा पदान्तमें सु—चवर्गको कु—चवर्ग होता है ५६ षु, नि २ ।

३३ । वाच् + भ्याम् = वाज् + भ्याम् = वाग्भ्याम्, वृध् + ध = वृद्ध् + ध = वृद्ध, लम् + ध = लब्ध, दुध् + ध = दुग्ध ।

भला जश् भशि । ८।४।५३॥ भग् आगे रहनेपर भल्को जश् होता है । १६ = षु, नि (आ) ।

३४ । वाक् + सु = वाक् + सु = वाक्त्, कमल् + सु = कमल् + सु = कमल्सु, वार् + सु = वार्सु, रामे + सु = रामेसु, घग्निषु वृष्, वधूपु; परन्तु रमासु ।

आदेशप्रत्यययो । ८।३।५६॥ \* इण् तथा कवर्गसे पर पदके अन्तमें रहनेवाले आदेश वा प्रत्यययो स् को मूर्धन्य अथवा घ् होता है । ५६ षु, नियम ४ ।

३५ । शास् + त = शिस् + त = शिष् + ट = शिष्ट, उचित, जयस् + इव = जकस् + इव = जकष् + इव = जक्तिव ।

शासित्वसिधसौना च । ८।३।६० ॥ इण् तथा कवर्गसे पर शास्, वष्, तथा घस् को स् होता है । १७२ षु, नियम (इ) ।

३६ । पुनर् + रमते = पुनारमते ।

रो रि । ८।३।१४॥ र् आगे रहनेपर र् का लोप होता है २३ षु, नियम ३ ।

द्वलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽण् । ६।३।१११॥ ङ् तथा र् को लोप करनेवाले वर्ण अर्थात् ङ् तथा र् आगे रहनेपर पूर्व अण् (अ, इ, उ) को दीर्घ होता है । १८७ षु, नि० (इ) ।

\* यहाँ इण् प्रत्याहार इ से लण् के तकका है, अथात् इ, उ, ऋ, ए, ऌ, ए, ओ, ँ, ओ, ङ, य, व, र, ल् ।

३७ । वुध् + त = वुध् + ध = ब्रह् + ध = वुधु । - -

भयस्तथोर्धोऽध । ८।२।४०॥ भय्से पर आनेवाले त् तथा य् को घ् होता है, पर धा धातुको त् वा य् को रही होता । १८६ पृष्ठ, नियम (आ)

३८ । लिह् + ति = लेह् + ति = लेट् + टि = लेटि, लेटा, लीट, ऊट —

लिह् + सति = लेह् + सति = लेट् + सति = लेक् + सति = लेक् + सति = लेक्षति—

ही ट । ८।२।३१॥ भूत् आगे रहनेपर वा पदान्तमें ह् को ट् होता है १८६ पृष्ठ, नियम (अ) ।

घटो क सि । ८।२।४१॥ घ् आगे रहनेपर प् तथा ट् को क् होता है १७४ पृष्ठ, नियम (ग) ।

३९ । दुह् + तास्मि = दोह् + तास्मि = दोघ् + धास्मि दोग् + धास्मि = दोरधास्मि, दोह् + थास्मि = दोघ् + थास्मि = धोघ् + थास्मि—

दादेर्धातीर्घ । ८।२।३२॥ भूल् आगे रहनेपर वा पदको अन्तमें दक्षारादि धातुको ह् को घ् होता है । १८७ पृष्ठ, नियम (ई) ।

रक्षाचो वशी भय् भयन्तस्य रध्वो । ८।२।३७॥ पृष्ठ १८८, नि (ए) ।

४० । द्रोघा, द्रोढा, रनेट् + सति = स्नेक् + सति इत्यादि = स्नेक्षति, मूढ वा सुग्ध—

वा द्रुह्मुष्ण्, हृष्णिहाम् । ८।२।३३॥ भूल् आगे रहनेपर वा पदान्तमें द्रुह्, मुह्, स्नुह्, तथा स्निह् को ह् को जिकल्पसे घ् होता है, पत्तमें ट् होता है । १८७ पृष्ठ, नि (उ) ।

४१ । नह् + ता = नध् + ता = नध् + धा = नद्धा, नत्सति, उपा-  
नद्धि —

नहो ध । ८।२।३४॥ भूल् आगे रहनेपर वा पदान्तमें नह् को घ् होता है । १८७ पृष्ठ, नियम (उ) ।

४२ । सट् + त = सट् + त = सट् + ध = सट् + ट = सोट, वोदुसु—

### पाणिनिकी सज्ञाओंके अर्थ ।

लट्—वर्तमान, लिट्—परोक्षभूत, लुट्—अनद्यतनभविष्यत्,  
लृट्—सामान्यभविष्यत्, लेट्—विधि (वैदिक); लोट्—ग्रान्ता,  
लङ्—अद्यतनभूत, लिङ्—विधि तथा आशीर्लिङ्, लुङ्—सामान्य-  
भूत, लड्—क्रियातिपत्ति ।

शिच्—प्रेरणाथक प्रत्यय, सन्—इच्छार्थक प्रत्यय, यङ्—पोन-  
पुन्यार्थक ( वार २ होनेके अर्थमें ) प्रत्यय ।

अजन्तोऽकारवान् वा यस्तास्यनिट् अलि वेडयम् ।

ऋदन्त इंदृङ् नित्यानिट् काट्यायो लिटि सेङ् भवेत् ॥

अजन्त वा रेसा धातु जिसमें अकार हो, जो तास् ( अनद्यतनभवि का प्रत्यय ) आगे रहने पर अनिट् होता है, यल् ( परोक्षभूतका य ) आगे रहने पर वेट् होता है, इस प्रकारका ऋकारान्त धातु नित्य अनिट् होता है, और कृ इत्यादि ( कृ, च्, भृ, दृ, स्तु, द्रु, स्तु, श्रु ) के सिवा अन्य धातु लिट् में सेट् होते हैं । २६२ पृष्ठ, नि ६, तथा २६३ पृष्ठ, नियम १०, ११ ।

संस्कृत व्याकरणोंमें धातु कुछ अनुबन्धोंके साथ दिये गये हैं, जैसे—  
शक्त्वा, मृड् मरणे, डुकृञ् करणे, गुप् रक्षणे, छिद्रिर् द्वधीकरणे,  
अमु अनुबन्धाने, नृतो गातृवर्त्तणे । इन धातुओंमें लृ, ड्, ज, क, इर्,  
उ तथा ईं ये अनुबन्ध हैं । लृ अनुबन्धवाले धातुओंमें नियमसे लुङ् का  
द्वितीय प्रकार होता है, इर् अनुबन्धवाले धातुओंमें विकल्पसे लुङ् का  
द्वितीय प्रकार होता है, क अनुबन्धवाले वेट् है, ड् अनुबन्धवाले  
आरम्भने, तथा ज अनुबन्धवाले उभयपदी होते हैं, उ अनुबन्धवाले धातु-  
ओंके अव्ययभूत कृदन्तमें विकल्पसे इ आगम होता है, ईं अनुबन्धवाले  
धातुओंमें त आगे रहनेपर इ आगम नहीं होता । यद्यपि धातुओंका उनके  
अनुबन्धोंके साथ याद करना परिश्रमका काम है परन्तु वह परिश्रम सफल  
है, क्योंकि विश्वार्थियोंको याद करना सुगम होता है । प्रधान धातु उनके  
अनुबन्धोंके साथ नीचे दिये जाते हैं —

१ । भ्वादि ।

वदि अभित्राशनस्तुयो ( वन्दते ) ।  
 स्पदि जिञ्जिच्चलने ( स्पन्दते ) ।  
 तुपूप् लज्जायाम् ( त्रेपिप्ते प्से ) ।  
 ताम्पू सद्ये ( चक्षमिध्वे चक्षन्ध्वे ) ।  
 क्रमु पाश्वित्तेपे ( क्रमित्त्रा-क्रान्त्वा,  
 क्रन्त्वा ) ।  
 ग्रमु अदने ।  
 गाङ् विलोडने ।  
 श्चु स्तुतां ।  
 खमु ध्वमु अमु अस्वस्व सने ।  
 रहु वर्तने ( वर्तित्वा—वृत्वा ) ।  
 वधु वृद्धौ ।  
 म्पू प्रस्रवणे ।  
 कृपू सामर्थ्ये ।  
 रमु क्रीडायाम् ।  
 अमु चलने ।  
 षद्लृ विशरखगत्यवसादनेषु ( लुङ्—  
 अषदत् ) ।  
 गुह् सवरणे ।  
 गम्लृ षट् गतो ( अगमत, अष्टपत् )  
 पत् गतो ।  
 दृशिर प्रेक्षणे ( अदर्शत्-अद्राक्षीत् )  
 डीङ् विद्यायसा गतो ( डयते ) ।  
 वैङ् पालने ।  
 अिङ् सेत्रायाम् ( अयति-ते ) ।

मज् भरणे ।

घृज् हरणे ।

शौज् प्रापणे ।

धृज् धारणे ।

२ । अदादि ।

चत्तिङ् व्यक्ताया वाचि ।

शौङ् स्वप्ने ।

पूङ् प्राणिसर्भविमोचने ।

पृज् स्तुतो ।

वृज् व्यक्ताया वाचि ।

सृज् शुद्धौ ।

सदिर् अश्रुविमोचने ( शरीरदीत्—  
 अषदत् ) ।

शामु अनुशिष्टो ।

३ । जुहोतयादि ।

हुभल् धारणपीपणयो ।

श्रोदाङ् गतो ।

डदाज् दाने ।

डुघाज् धारणपीपणयो ।

४ । टिवादि ।

दिवु क्रीडादिषु ।

तुसो उद्देशे ।

रुतौ गानुवित्तेपे ।

खनौ प्रादुर्भावे ।

शमु उपशमे ।

तमु काङ्क्षायाम् ।

दमु उपशमे ।  
 अमु तपसि खेदे च ।  
 अमु अनवस्थाने ।  
 क्षमू सङ्घने ।  
 क्षमु ग्लानौ ।  
 मदी द्रष्टे ।  
 अमु क्षेपणे ।

## ५ । स्वादि ।

पुञ् अभिपत्रे ।  
 चिञ् चयने ।  
 स्तृञ् आच्छादने ।  
 वृञ् वरणे ।  
 धुञ् कम्पने ।  
 शक्ञ् शक्तौ ।  
 आप्ल् व्याप्तौ ।

## ६ । तुदादि ।

उन्दी क्लेदने ।  
 दृङ् आदरे ।  
 धृङ् अवस्थाने ।  
 पृङ् व्यापामे ।  
 मुह् प्राणत्यागे ।  
 पङ् विहरणादिषु ।  
 मुच्लृ मोक्षणे ।  
 लुप्तृ क्लेदने ।  
 त्रिङ्ल लाभे ।  
 ७ । क्लेदने ।

## ७ । रुधादि ।

रुधिर आवरणे ।  
 क्लिदिर् द्वैधीकरणे ।  
 भिदिर् विदारणे ।  
 रिचिर् विरेचने ।  
 युञ्जिर् योगे ।  
 शिष्लृ विशेषणे ।  
 पिष्लृ मचूर्णने ।  
 अञ्ज् व्यक्तगादिषु ।

## ८ । तनादि ।

तनु विस्तारे ।  
 क्षणु क्षिणु क्षिप्तायाम् ।  
 मनु अवबोधने ।  
 वनु याचने ।  
 डुकृञ् करणे ।

## ९ । क्रयादि ।

डुकीञ् द्रव्यविनिमये ।  
 प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च ।  
 पूञ् पवने ।  
 स्तृञ् आच्छादने ।  
 वृञ् वरणे ।  
 धृञ् कम्पने ।  
 लूञ् क्लेदने ।  
 क्लिंशू विव्राधने ।

## १० । चुरादि ।

धूञ् कम्पने ।  
 प्रीञ् तर्पणे ।

# परिशिष्ट ( ग ) ।

## सुदन्त रूप ।

धातु	भू कृ	अय. भू कृ	तुम्
ज्ञा	ज्ञात	ज्ञात्वा	ज्ञातुम्
स्था	स्थित	स्थित्वा	स्थातुम्
दा	दत्त	दत्त्वा	दातुम्
आदा	आत-आदत्त	आदाय	आदातुम्
प्रदा	प्रत्त-प्रदत्त	प्रदाय	प्रदातुम्
धा	हित	हित्वा	धातुम्
पा	पीत	पीत्वा	पातुम्
दां क्रीडना	हीन	हित्वा	दातुम्
दा जाना	दान	दात्वा	दातुम्
नी	नीत	नीत्वा	नेतुम्
श्रु	श्रुत	श्रुत्वा	श्रोतुम्
कृ	कृत	कृत्वा	कर्तुम्
तु	तीर्ण	तीर्त्वा	तरितुम्-तरीतुम् ततुम्
तु	पूर्ण	पूर्त्वा	परितुम् परीतुम्-पर्तुम्
दृ	दृत्	दृत्वा	दृातुम्
श्री	गीत	गीत्वा	गातुम्
श्री	तृत्त ण	तृत्वा	त्रातुम्
हो	ज्ञान	ज्ञात्वा	ज्ञातुम्
गले	गलान	गलात्वा	गलातुम्
सो	सित	सित्वा	सानुम्



पच्	पक्क	पक्ता	पक्तुम्
पुच्	मुक्त	मुक्त्वा	मोक्तुम्
युञ्	युक्त	युक्त्वा	योक्तुम्
वृत्	वृत्त	वृत्त्वा-वर्तित्वा	वर्तितुम्
श्रद्	जग्ध	जग्ध्वा	श्रत्तुम्
खिद्	खिन्न	खित्त्वा	खेतुम्
क्लिद्	क्लिन्न	क्लित्त्वा	क्लित्तुम्
क्षुध्	क्षुद्ध	क्षुद्ध्वा	क्षीद्धुम्
तन्	तत्त	तत्त्वा तनित्वा	तनितुम्
मन्	मत	मत्त्वा	मन्तुम्
हन्	हत	हत्त्वा	हन्तुम्
खन्	खात	खनित्त्वा-खात्वा	खनितुम्
जन्	जात	जनित्त्वा	जनितुम्
लभ्	लब्ध	लब्ध्वा	लब्धुम्
गम्	गत	गत्त्वा	गन्तुम्
नम्	नत	नत्त्वा	नन्तुम्
यम्	यत	यत्त्वा	यन्तुम्
रम्	रत	रत्त्वा	रन्तुम्
क्रम्	क्रान्त	क्रामित्त्वा, क्रान्त्वा, क्रान्त्वा	क्रामितुम्
शम्	शान्त	शामित्त्वा, शान्त्वा	शामितुम्
पच्छ्	पृष्ट	पृष्ट्वा	पृष्टुम्
विष्	विष्ट	विष्ट्वा	वेष्टुम्
दृश्	दृष्ट	दृष्ट्वा	द्रष्टुम्
एज्	एष्ट	एष्ट्वा	स्रष्टुम्
नश्	नष्ट	नष्ट्वा, नष्ट्वा, नशित्त्वा	नष्टुम्
यज्	इष्ट	इष्ट्वा	यष्टुम्

घप्	उस	उपत्वा	वप्तुम्
वच्	उक्त	उक्त्वा	वक्तुम्
वह्	कठ	ऊङ्गा	योङुम्
घम्	उषित	उषित्वा	वक्षुम्
वङ्	उदित	उदित्वा	वदितुम्
व्यध्	विदु	विदूधा	व्यदुम्
प्रह्	सृहीत	सृहीत्वा	प्रहीतुम्
लिह्	लीढ	लीढा	लेढुम्
दुह्	दुग्ध	दुग्धा	दोग्धुम्
नह्	नद्ध	नद्धा	नद्धुम्
सह्	सोढ	सोढा, सहित्वा	सोढुम्-सहितुम्
भङ्	भग्न	भङ्गा, भङ्क्त्वा	भङ्क्तुम्
वन्ध्	बध्	बद्धा	बद्धुम्
चुर	चोरित	चोरयित्वा	चोरयितुम्
कृ-प्रै०	कारित	कारयित्वा	कारयितुम्
निविदु प्रै०	निवेदित	निवेद्य	निवेदयितुम्
प्रवगण्	अवगणित	अवगणय्य	अवगणयितुम्
विरच्	विरचित	विरचय्य	विरचयितुम्

धातु भू कृ  
 व्या—जीन  
 च्चि—चित्त चीण  
 शी—शयित  
 डी—डीन  
 लू—लून  
 क्ष—क्षाम  
 मस्ज्—मग्  
 मट्—मत्त  
 प्याय्—प्यान, पीन (पीन सुत्यम् ।  
 अन्यत्र प्यान पीन खँइ)  
 स्फाय्—स्फोत  
 ल्वर्—ल्वरित लूर्ण  
 फल—फुल्ल  
 दिव्—द्यूत द्यून ( विजिगीषाया  
 द्यूतम् )  
 धाव्—धौत  
 प्लिव्—प्लूत  
 सिव्—स्यूत  
 शुष्—शुष्क  
 मुह्—मुरध—मूढ  
 निर-वा—निर्वात य ( निर्वाणो-  
 ऽग्निर्मुनिश्च, निर्वातो वात ) ।  
 घ्रा—घ्रात-य  
 ह्यौ—ह्यौत य

धातु—अव्य भू कृ  
 प्र स्या—प्रख्याय  
 वि जि—विजित्य  
 प्र स्तु—प्रस्तुत्य  
 अघि इ—अधीत्य  
 अन्नु कृ—अनुकृत्य  
 वि स्तृ—विरस्त्य  
 अनु भू—अनुभूय  
 उद् तृ—उत्तीर्य  
 आहृ—आहूय  
 अनु मन्—अनुमत्य  
 नि हन्—निहत्य  
 आ गम्—आगम्य, आगत्य  
 नि यम्—नियम्य, नियत्य  
 प्र णम्—प्रणम्य, प्रणत्य  
 वि रम्—विरम्य, विरत्य  
 अप वृच्—अपोह्य  
 प्र वच—प्रोच्य  
 उप वस्—उपोष्य  
 अनुबन्ध्—अनुबन्ध्य  
 सम् शी—सशय्य  
 कर्त्तरि भूतकृदन्त ।  
 गम्—गतवत्  
 कृ—कृतवत्  
 परोक्षभू कृदन्त ।  
 दा—ददिवस्

पत्—पतिषत्  
 कृ—वक्रुवत्—चक्राय (आ)  
 घृ—जड्ववत्—जहाय (आ)  
 नो—निनीवत्—निन्यान (आत्म)  
 क्षु—तुष्टुवत्—तुष्टुवान (आत्म)  
 वर्तमान कृदन्त पर  
 भ्वा गम्—गच्छत्—गच्छन्ती (स्त्री)  
 दृश्—पश्यत्—पश्यन्ती  
 दा—यच्छत्—न्ती  
 गुह्—गूहत्—न्ती  
 सद्—सीदत्—न्ती  
 पुष्—पुष्यत्—न्ती  
 वृष्—वृष्यत्—न्ती  
 सो—स्यत्—न्ती  
 शम्—शाम्यत्—न्ती  
 श्म—श्म्यत्—न्ती, श्म्यत्—  
 न्ती, श्मत्—न्ती  
 शिच—शिञ्जत्—ती—न्ती  
 इष्—इच्छत्—ती—न्ती  
 प्रच्छ्—पृच्छत्—ती—न्ती  
 मञ्ज्—मञ्जत्—ती—न्ती  
 व्रश्—वृश्जत्—ती—न्ती  
 मञ्ज्—मञ्जत् ती न्ती  
 स्रज्—स्रजत् तो न्ती  
 सद्—सीदत् ती न्ती  
 कृ—किरत्—ती—न्ती

चु चुर्—चोरयत्—न्ती  
 पीड्—पीडयत्—न्ती  
 स्पृह्—स्पृहयत्—न्ती  
 आत्मने ।  
 भ्वा वृत्—वर्तमान ना ( स्त्री )  
 वृध्—वर्धमान ना  
 रम्—रममाण-णा  
 गुह्—गूहमान-ना  
 त्रै—त्रायमाण णा  
 दि जत्—जायमान ना  
 विद्—विद्यमान—ना  
 बुध्—बुध्यमान ना  
 युध्—युध्यमान ना  
 दीप्—दीप्यमान ना  
 तु सृ—स्रियमाण-णा  
 व्यापृ—व्यापियमाण णा  
 दृ—द्रियमाण णा  
 धृ—ध्रियमाण णा  
 च्चु मन्त्—मन्त्रयमाण-णा  
 मर्ष्—भर्षयमान ना  
 तर्ज्—तर्जयमान-ना  
 परस्मै ।  
 श्र या—यात्—ती न्ती  
 श्म—श्मत्—ती  
 इ—यत्—ती  
 नु—नुयत्—ती

द्रू—द्रुवत्-ती  
 स्तु—स्तुवत्-ती  
 शास्—शासत्-ती  
 जत्—जत्तत्-ती  
 ह्व—ह्वत्-ती  
 जागृ—जाग्रत्-ती  
 आत्मने ।

आस्—आसीन-ना  
 अधिह—अधीयान-ना

द्रू—द्रुवाण-णा  
 शी—शयान ना  
 स्तु—स्तुवान-ना  
 ईश—ईशान ना  
 चत्—चक्षाण-णा  
 वस्—वसान-ना

परस्मै ।

जु ह्यु—जुह्वत्-ती  
 ह्य—(ह्योढना) जहत-ती  
 भी—विभ्यत्-ती  
 द्य—ददत्-ती  
 ही—जिह्रियत्-ती  
 भृ—विभ्रत्-ती  
 निज्—नेनिजत्-ती  
 आत्मने ।

ह्य ( जाना )—जिहान ना  
 म्—मिमान ना

दा—ददाम ना  
 भृ—विभ्राण-णा  
 निज्—नेनिजान ना  
 परस्मै ।

स्वा चि—चिन्वत्-ती  
 प्राप्—प्राप्नुवत्-ती  
 श्रु—श्रुवत्-ती  
 वृ—वृण्वत्-ती  
 आत्मने ।

चि—चिन्वत्-ना

अश्र्—अश्रुवान-ना  
 वृ—वृषवान ना  
 परस्मै ।

रु रुध्—रुन्धत्-ती  
 अञ्ज्—अञ्जत्-ती  
 क्खिड्—क्खिन्दत्-ती  
 हिस्—हिसत्-ती  
 आत्मने ।

रुध्—रुन्धान ना

इन्ध—इन्धान ना

क्खिड्—क्खिन्दान ना

मुज् ( खाना )—मुञ्जान-ना  
 परस्मै ।

तना तन्—तन्वत्-ती  
 कृ—कुर्वत्-ती  
 क्षण्—क्षण्वत्-ती

आत्मने ।

तद्—तद्धान-ना

कृ—कुर्वाण-णा

घञ्—घञ्धान ना

परस्मै ।

क्रया क्री—क्रीणत्-ती

ग्रह्—ग्रह्णत्-ती

मुष्—मुष्णत्-ती

ञा—ञानत्-ती

वन्ध्—वन्धत्-ती

आत्मने ।

क्री—क्रीणान ना

ग्रह्—ग्रह्णान ना

ञा—ञानान-ना

भवि कृदन्त ।

कृ—करिष्यत्-ती न्ती

गम्—गमिष्यत्-ती न्ती

शी—शयिष्यमाण-णा

कृ—करिष्यमाण-णा



## शुद्धिपत्र ।

—०—

पृ०	प०	अशुद्ध	शुद्ध
१	१६	ऋ	ऋ
४	अन्तिम	स्मर + अ	स्मर् अ
६	१४	सुज्ञाना	सुभाना
६	२१	कृते	कूते
७	१	उपर	उपर
१०	१४	ऋ	ऋ
१०	१५	न	न्
१०	१७	कण्ठ	कण्ठ
१७	१४	रामाणाम	रामाणाम
१७	२३	णमै	ण् मै
८	हेडिंग	सकृत	सस्कृत
८	१	व्याघ्रभ्य	व्याघ्रेभ्य
८	८	वृक्षाट्	वृक्षाट्
१०	४	अर्थके	अर्थके
११	२०	हरीणाम	हरीणाम्
११	२६	भानुभ्याम्	भानुभ्याम्
७	४	पुष्पाणा	पुष्पाणा
८	८	मस	मस्





## शुद्धिपत्र ।

—०—

पृ०	प०	अशुद्ध	शुद्ध
१	१६	ऋ	ऋ
४	अन्तिम	स्मर + अ	स्मर् अ
६	१४	सुजाना	सुभाना
६	२१	कृते	कृते
७	१	उपर	ऊपर
१०	१४	ऋ	ऋ
१०	१५	न	न्
१०	१७	कण्ठ	कण्ठ
१७	१४	रामाणाम	रामाणाम
१७	२३	गर्मे	गर्मे
१८	हेडिंग	स्कृत	सस्कृत
१८	१	व्याघ्रभ्य	व्याघ्रेभ्य
१८	८	वृक्षाद्	वृक्षाद्
२०	४	अर्धके	अर्धके
२१	२०	हरीणाम	हरीणाम्
२१	२६	भानुभ्याम	भानुभ्याम्
२७	४	पुष्पाणा	पुष्पाणा
२८	८	मस	मस्

पृ०	प०	अशुद्ध	शुद्ध
२८	१६	मस	मस्
३२	२१	प	प्र
३२	२३	सर्वे ण	सर्वेण
३३	८	पलिङ्ग	पु लिङ्ग
३३	९	सव	सर्व
३५	१	उनको	उनको
३५	२३	देवतां	देवता
३७	६	कुलपते	कुलपतेः
३७	८	विघ्नघ्न	विघ्न
३७	२२	खश्वा	खश्या
३८	२०	वध्वीः	वध्वो
३९	७	अति क्ष्म	अतिसूक्ष्म
४०	१५	होतेते	होते
४१	हेडिग	अर	और
४३	”	और	और
४४	३	प्रनिदिन	प्रतिदिन
४५	अन्तिम	समास	समान
५३	२१	भगवन्ती	भगवन्ती
५६	१३	कसलके	कमलके
५८	१७	शै	शैल
५९	११	अव्यय	अव्यय

पृ०	प०	अशुद्ध	शुद्ध
५८	टिप्पणी	लक्ष्मीवत्	लक्ष्मीवत्
५८	२	भूमिमत्	भूमिमत्
५८	”	समाप्त	समाप्त
६०	५	स्त्रीलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग
६०	अन्तिम	प्रहर्तम्	प्रहर्तम्
६३	”	कृ—	कृ—
६४	७	लिले	लिये
६४	१६	मत्र	मैत्र
७५	१६	भ्वा	भ्वा
८३	४	विद्योतते	विद्योतते
८४	८	(ष्टरा)	(ष्टरा)
८४	१८, २०	कर्ता कर्ते	कर्ता कर्ते
८७	५	नृणा	नृणा
८०	५	जाता है	जाता है
८०	८	स्नानम्	स्नानम्
८५	ह्रिडि ग	ऋकारान्त	ऋकारान्त
८६	१	१७	१८
८६	१४	वन्तु	वन्तु
८८	१७	पूर्वके	पूर्वके
१००	८	३	३
१००	१७	देवायत्त	देवायत्त

पृ०	प०	अशुद्ध	शुद्ध
१०८	४	प्रेरणार्थक	प्रेरणार्थक
१०८	४	समासाद्य	समासाद्य
११०	३	(रत्नम्) पु	(रत्नम्) न
११०	१२	ब्राह्मण	ब्राह्मण
१११	टिप्पणी	प्रयह	प्रत्यह
११२	११	रत्नपरीक्षा	रत्नपरीक्षा
११३	१२२	पुष्—	पुष्—
११४	२	द्वि व	द्वि व
”	”	उ व	ब व
”	१८	स्नात्—	स्नात्—
११६	६	साधु	साधु
”	२०	(अङ्गम्)	अङ्गम्
११७	२०	वाल्मीकि	वाल्मीकि
११८	५	साध	साधुत्व
११८	२१	जाता है	आता है
१२०	४	किय	किया
१२०	१२	सेदिवद्भ्य	सेदिवद्भ्य
१२०	१६	सेदिवास	सेदिवास
२२१	१२	गरिष्ठ	गरिष्ठ
१२१	२०	बलिष्ठ	बलिष्ठ
१२२	२४	क्लेशान्	क्लेशान्

पृ०	प०	अशुद्ध	शुद्ध
१२३	१	तिष्ठन्ते	तिष्ठन्ते
१२४	७	भ्राष्ट	भ्राष्ट्र
१२५	२१	और	और
१२६	५	एकद्वि,	एक, द्वि,
१३१	२४	सुष्टु	सुष्टु,
१३४	अन्तिम	स्त्रिय	स्त्रिय
१३५	१८	अस्त्रि	अस्त्रि
१३५	२०	अस्तन्	अस्त्यन्
१३५	टिप्पणी	रजस्वला	रजस्वला
१४०	अन्तिम	शृणु	शृणु
१४३	७	पररमपद	परस्मैपद
१४५	२०	ध्रुवा	ध्रुवा
१४८	३	तुम्	तुम्
१४८	२०	दोरधु	दोग्धु
१५०	१५	अक्रोणायम्	अक्रोणायाम्
१५१	१८	सम्यक्सम्पद	सम्पत्सम्पद
१५३	१३	(ज व)	(ज व)
१५३	१५	ओजस्विता	ओजस्विता
१५४	१२	(सुयोधन)	(सुयोधन)
१५८	२१	<del>—</del>	ब्रवीत
१६३	२०		विद्धि

पृ०	प०	अशुद्ध	शुद्ध
१६४	१८	अगुठी	अगूठी
१६५	७	करण	कारण
१६७	१६	त्व	त्वा
१६८	१५	भ्रस्ज	भ्रस्ज्
१६८	१५	श्वस	श्वस्
१७५	१८	देवेन	दैवेन
१७८	टिप्पणी	प्रत्यग	प्रत्यय
१८३	॥	रुन्धम्	रुन्धम्
१८४	२०	भिन्ते	भिन्दताम्
१८४	२४	भिन्ते	भिन्दताम्
१८५	२	अभिन्ताम्	अभिन्ताम्
१८७	२२	दृह	द्रुह्
१८८	२२	दिवसे	दिवस
१८९	अन्तिम	अनुकूल	अनुकूल
१८२	टिप्पणी	रञ्ज	रञ्ज्
१८४	२२	मकारो	नकारो
१८७	४	—तृत—	—तृतृ—
१८७	१८	विभराम है	विभरामहै
२०२	१४	पाप	पाप
२०३	५	कत	कत
२०३	६	पुनदर्शनानि	पुनर्दर्शनानि

पृ०	प०	अशुद्ध	शुद्ध
२०८	- १२	यावनमल्यक्रामत्	यौवनमल्यक्रामत्
२११	- १	- शवतम	शततम
२१८	- १	अवयव	अवयवै
२१९	- ७	- अव्ययीभाव	अव्ययीभाव
२२१	- ५	अपर	अपर'
२२१	- ६	-- मध्याद्	मध्याद्.
२२१	- १३	कमलम	कमलम्
२२५	- हेडिंग	- तत्प रूप	तत्पुरुष
२२५	- १	- कौड	कौडै
२२६	अन्तिम	उत्पन्न	उत्पन्न
२२८	- २	सविज्ञान	सविज्ञान
२२८	- १५	इत्यादि	इत्यादि
२३३	- ६	(विहार)	(विहार)
२३४	- १३	- शब्दसंग्रहा	-शब्दसंग्रही
२४०	- १०	प्रजायन्त	प्रजायन्ते
२४०	- १६	च्छोतु—	च्छोतु—
२४१	- ३	रुदता	रुदती
२४४	- १	(परिचय)	(परिचय)
२४७	- ८	परिवत्तन	-परिवर्तन
२४७	- २४	- धातुको	धातुश्रीको
२४७	टि० ३	—	जदृदन्तै—



पृ०	प०	अशुद्ध	शुद्ध
२५०	३	लुट्	लृट्
२५०	८	लुड्	लृड्
२५१	७	वध	वध्
२५२	८	अनुनामिक	अनुनासिक
२५३	७	प्रकृत	प्रकृति
२५६	७	मारकी	मीरकी
२५७	२२	वटवृक्ष	वटवृक्ष
२६२	७	चिक्राथ	चिक्राय
२६२	१२	पप्रच्छ	पप्रच्छु
२६२	१७	जङ्गतुः	जङ्गतु.
२६३	७	अविकार	अविकारक
२६३	१४	र, व	र्, व्
२६६	१	गुण सन्निपाते	गुणसन्निपाते
२६६	१७	पररपर	परस्पर
२६७	५	वृत्ति	वृत्ति
२७०	१८	ऋकारान्त	ऋकारान्त
२७१	८	वच	वच्
२७३	३	पूर्व	पर
२७३	अन्तिम	ब्राह्म्या	ब्राह्म्या
२७५	२	शाखायै	शाखायै
२७५	३	वय	वयं

पृ०	प०	अशुद्ध	शुद्ध
२७८	१५	माला कारा	मालाकारा
२८२	२०	मिात	मिति
२८५	६	(स्त्री)	(स्त्री)
२८६	१५	दूर्धी	दुर्धी
२८१	हेडिग	द्वित	तद्वित
२८३	८	दर्शन	दर्शन
२८४	२	पड	पड्
२८४	५	परिष्वजे	परिष्वजे
२८८	३	अवादिष्टाम्	अवादिष्टाम्
२८८	१७	इष्टाम्	इष्टाम्
२८८	अन्तिम	अचानिय	अचानिपु
३०५	१३	न्यत	न्यत
३०६	११, १३	यतयस्य	यतयोऽस्य
३०६	१६	रत्युपाय	ऽर्युपाय
३०६	१६	तेनत्यन्तिक	तेनात्यन्तिक
३०८	२०	सद्गुण	सद्गुण
३०८	५	क्रया	चुरा
३१०	६	चितिधेनुरिव	चितिधेनुरिव
३१३	२४	रुद्रैच्छिन्ना	रुद्रैश्छिन्ना
३१४	१३	तावुभौ	तावुभौ
३१६	१७	कुरनेमे	करनेमें

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
३१८	५	उरु	उरु
३२१	१४	रोधस	रोधस्
३२३	७	तमाचाय ऋपभा	तमाचार्य ऋ
३२३	१५	अदृश्य तत्व—	अदृश्यत त्व—
३२७	१०	त्तद् ख	त्तद्दु ख
३२८	८	मुज्वलाकार	मुज्वलाकार
३३०	१२	बुद्धया	बुद्ध्या
३३१	५	सृक्णी	सृक्किणी
३३१	११	च्छ्रयता	च्छ्रूयता
३३२	१	भूत्तसेव	भूत्तमेव
३३२	४	सिह	सिह.
३३३	१७	मालिङ्गग्रय	मालिङ्ग्य
३३५	६	धम	धर्म
३३७	१५	लोकीच्छेद्य	लोकीच्छेद्य
३३८	४	सौम्य	सौम्य
३४०	११	तद्वन	तद्वन
	८	अध्रुव	अध्रुव
	१३	राचा	राजा
	१५	य	ये
३४८	१४	का नापदी	कानापदी
३४८	१८	या यामवस्था	या यामवस्थां

पृ०	पं०	शुद्धिपत्र	शुद्ध
३५०	१०	अशुद्ध	शुद्ध
३५१	५	धम	धर्म
३५१	८	नाश्रुते	नाश्रुते
३५२	८	वशी	वशी
३५५	३	मृत्यना	मृत्य ना
३५२	२३	चन्द्रोज्वला	चन्द्रोज्जला
३५७	२५	द्रमालय	द्रुमालय
३५८	२५	वक्तव्य	वैक्तव्य
३६०	१	दरत—	दूरत—
३६२	७	नुकत्या	नुहत्या
३६२	८	चाटन्	चाटून्
३६५	१७	नषां	नेषा
३६६	६	विधयं	विधेय
३७१	२२	अतिक्रान्तो	अतिक्रान्तो
३७८	११	प्रत्यभ्यज्ञास	प्रत्यभ्यज्ञासी
३८०	१६	सौर्ष्या०	सौर्ष्या०
३८१	२	पडु चनेवाला	पडु चनेवाला
३८३	५	मुनिके	मुनिके
३८८	१३	वाद्	वाद्
३८८	अन्तिम	शाकल्यस्य	शाकल्यस्य
३८९	१	य	य

पृ०	प०	अशुद्ध	शुद्ध
३१२	७	तुक	तुक्
३६३	२४	कत्तव्यम्	वत्तव्यम्
३६५	१	बुद्ध	बुद्ध
३६७	१६	आडपूर्वक	आडपूर्वक
४००	११	स्तृज	स्तृज

### त्रुटि ।

११ पृ०, प० १२ में 'य', 'व', इत्यादिके पूर्व 'वर्णों के अन्ति ३ वर्णों' अधिक पठना चाहिये ।

३५ पृ०, प० १७ में दूसरे नियममें 'जव स और एय' विसर्गके बाद' इत्यादि पठना चाहिये ।

४५ पृ०, प० ७ में पीतमम्बर यम्य स के बाद 'पीताम्बर जोडना चाहिये ।

१०७ पृ०, नियम ७ का प्रकार-पठना चाहिये ।  
ऋ को गुण वा वृद्धि होने को इर होता है, और यह ऋ ओष्ठस्थानीय वर्णके बाद आता है तो उसको होता है ।

